UNIVERSAL LIBRARY
OU_176237
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

OUP—707—25-4-81—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H320 V6ZS Accession No. P.G.H629

Author विद्यालंकार प्राणनाथ.

Title शासनपद्धति 1929.

This book should be returned on or before the date last marked below

Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd
Benares-Branch

शासनपद्धति

(संशोधित और परिवर्द्धित)

लेखक

प्राणनाथ विद्यालंकार

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२९

दूसरा संस्करण] [मूल्य [illegible]

निवेदन

इस पुस्तक में भूमंडल के मुख्य मुख्य स्वतंत्र राज्यों की शासन-पद्धतियों का विस्तारपूर्वक तथा अन्य स्वतंत्र राज्यों का साधारण वर्णन किया गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य यही है कि हिंदी-भाषा-भाषियों को इस बात का साधारण ज्ञान हो जाय कि फ्रांस, जर्मनी, प्रशिया, अमेरिका, स्विट्जलैंड, इँगलैंड तथा आस्ट्रिया-हंगरी में राज्य का कार्य किस प्रणाली पर चलता है और राजा अथवा राज्य और प्रजा में कैसा राजनीतिक संबंध है। दसवें परिच्छेद में इन सातों राज्यों को छोड़कर शेष स्वतंत्र राज्यों का भी सूक्ष्म वर्णन कर दिया गया है। इस प्रकार भूमंडल के समस्त स्वतंत्र राज्यों का वर्णन इस पुस्तक में आ गया है। यद्यपि यह विषय विशेष विस्तार के साथ लिखा जाता तो एक बड़ी भारी पुस्तक बन सकती है, यहाँ तक कि प्रत्येक राज्य के वर्णन की एक एक बड़ी पुस्तक अलग अलग हो सकती है, पर इतना विस्तार करना इस पुस्तकमाला का उद्देश्य नहीं है और न अभी इसकी आवश्यकता ही है। पहले किसी विषय का साधारण ज्ञान होना आवश्यक है और जन-समुदाय को इसी की आवश्यकता भी है। किसी विषय के गूढ़ रहस्यों के अध्ययन करनेवाले थोड़े ही लोग होते हैं। उनके लिये इस पुस्तक-माला का प्रकाशन नहीं हो रहा है।

इस पुस्तक में जिन जिन स्वतंत्र राज्यों की शासन-पद्धतियों का वर्णन दिया गया है, उनमें से कुछ स्वतंत्र राज्य ऐसे हैं जिनके उपनिवेश, अधीन राज्य, करद राज्य अथवा रक्षित राज्य भी हैं। इन स्वतंत्र राज्यों के इस अंग का वर्णन पुस्तक के ग्यारहवें परिच्छेद में किया गया है। इस विषय की गिनती मूल वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं के रूप में की जा सकती है; परंतु जनसमुदाय के लिये यह जान लेना भी आवश्यक है कि किस किस स्वतंत्र राज्य के कितने उपनिवेश आदि हैं और उनका शासन किस प्रकार हो रहा है। अतएव इस विषय का वर्णन भी संक्षेप में कर दिया गया है। आशा है, यह पुस्तक उपयोगी और रोचक सिद्ध होगी जिससे ग्रंथ-कर्ता अपना परिश्रम सफल समझेगा।

ग्रंथकर्ता।

विषय-सूची



शासन-पद्धति

पहला परिच्छेद

प्रस्तावना

भिन्न भिन्न देशों की शासन-पद्धति का समझना अत्यंत कठिन हो जाता है जब तक कि उन देशों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक दशाओं का परिज्ञान न हो। यह हम लोगों के अभाग्य की ही बात है कि हिंदी में अभी तक बहुत से युरोपीय देशों के इतिहास भी नहीं लिखे गए हैं।

पूर्ववचन

युरोपीय सभ्य देशों में आजकल प्रायः प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्यप्रणाली का ही प्रचार है। विस्तृत भूमिभागवाले देशों में सफलता से यही रीति चल सकती है। प्राचीन काल के यूनानी राष्ट्रों में प्रजा-सत्तात्मक राज्यप्रणाली की ही प्रधानता थी। आजकल उस प्रणाली का अवलंबन करना कठिन है। इसमें संदेह भी नहीं है कि प्रजासत्तात्मक राज्यप्रणाली के सिद्धांतों को यथासंभव ग्रहण करना तथा उन्हीं पर चलना प्रतिनिधि-

सत्तात्मक राज्यप्रणालीवाले देशों का उद्देश्य है। दिन पर दिन सभ्य देशों में राजकार्य में जनता का हाथ बढ़ाया जा रहा है। कई देशों में तो स्त्रियों को भी सम्मति देने का अधिकार प्राप्त हो गया है। स्विट्ज़लैंड ने किस प्रकार आदर्श राज्य का पद ग्रहण किया है, यह हम आगे चलकर सविस्तर लिखेंगे; परंतु यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि स्विट्ज़लैंड की शासन-प्रणाली प्रजासत्तात्मक राज्य के सिद्धांतों के अति समीप तक पहुँचती है। इसका कारण वहाँ पर जन-सम्मति-विधि तथा शक्ति-संविभाग के सिद्धांतों का अवलंबन ही कहा जा सकता है।

शासन-पद्धति की दृष्टि से युरोपीय राष्ट्र अमेरिका के बहुत ही कृतज्ञ हैं। राष्ट्रसंघटन का निर्माता अमेरिका ही है। जर्मनी, फ्रांस, स्विट्ज़लैंड आदि देशों को अमेरिका ने शासन-पद्धति के विषय में बहुत कुछ शिक्षा दी है। स्विट्ज़लैंड ने तो अमेरिका को देखकर ही अपनी शासन-पद्धति का निर्माण किया है।

जर्मनी की शासन-पद्धति विचित्र ढंग की है। यही कारण है कि इस पुस्तक में जर्मनी पर विशेष विस्तार से लिखा गया है, क्योंकि बिना ऐसा किए उसकी शासन-पद्धति को समझना पाठकों के लिये कठिन हो जाता। महासमर के उपरांत युरोप के कई देशों की शासन-प्रणाली में बहुत रद्दोबदल हो गया है। उनमें से जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, रूस प्रभृति देश

विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी शासन-पद्धति को ठीक तरह से समझने के लिये इनकी पुरानी शासन-पद्धति का भी ज्ञान होना आवश्यक है। अतः हमने नवीन शासन-पद्धति का वर्णन करने के साथ साथ महासमर के पहले की शासन-प्रणाली पर भी कुछ लिखना आवश्यक समझा है।

युरोपीय देशों के अतिरिक्त एशिया के एक प्रधान देश चीन में भी हाल ही में बहुत परिवर्तन हुए हैं। बरसों से यहाँ क्रांति मची हुई थी। पहले यहाँ एक-सत्तात्मक राज्य था। १२ फरवरी सन् १९१२ को यहाँ प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की स्थापना हुई। किंतु महासमर छिड़ने के बाद जापान ने यहाँ के अनेक राजकार्यों में बहुत कुछ अधिकार प्राप्त कर लिया था। अब चीन पूर्ण स्वतंत्र है और यहाँ भी स्वतंत्र प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य है।

इतना पूर्ववचन करके अब मैं प्रजासत्तात्मक राज्य तथा प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य आदि आवश्यक बातों पर प्रकाश डालने का यत्न करूँगा जिससे भिन्न भिन्न देशों की शासन-पद्धति का समझना बिलकुल सहज हो जाय।

प्रजासत्तात्मक राज्य तथा प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य

प्राचीन तथा नवीन प्रजासत्तात्मक राज्यों में बड़ा भारी अंतर है। प्राचीन राज्य जहाँ प्रजा द्वारा स्वयं चलाया जाता था, वहाँ नवीन राज्य प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है।

यही कारण है कि इस पुस्तक में प्राचीन प्रजा-सत्तात्मक राज्य के लिये 'प्रजासत्तात्मक राज्य' पद तथा नवीन प्रजासत्तात्मक राज्य के लिये 'प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य' पद प्रयुक्त किया गया है। प्राचीन प्रजा-सत्तात्मक प्रणाली छोटे छोटे राष्ट्रों में ही सफलता से काम में लाई जा सकती है, परंतु बड़े बड़े विस्तृत भूमिभागवाले राष्ट्रों में नवीन प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य ही प्रयुक्त हो सकता है। प्राचीन प्रणाली की ऐसे राष्ट्रों में गति नहीं है।

प्रजासत्तात्मक राज्य

एथेंस नामक यूनानी नगर ही प्राचीन राज्य को समझने के लिये अनुशीलन के योग्य है। एथेंस में राजकार्य चलाने के लिये दो सभाओं द्वारा कार्य होता था—(१) लोकसभा और (२) अंतरंग सभा (Senate)।

बीस वर्ष की अवस्था से अधिक अवस्थावाला प्रत्येक नागरिक लोकसभा का सभ्य होता था। दासों को यह अधिकार प्राप्त न था। एथेंस का प्रत्येक नगरनिवासी अपने आपको राज्य का एक अंग समझता था। नागरिकों की बहुसम्मति से ही संपूर्ण राजकार्य होते थे। सबको व्याख्यान देने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। व्याख्यान देकर ही एथेंस में कोई व्यक्ति जन-सम्मति अपनी ओर कर सकता था। उस प्राचीन युग में पत्रों का साम्राज्य प्रारंभ न हुआ था। पेरिक्लीज़ जैसे योग्य पुरुष जहाँ एथेंस के नागरिकों को अपनी वक्तृता की शक्ति से मोहित कर उन्हें उचित मार्ग पर चलाते

थे, वहाँ ऐसे भी कई एक दुष्ट पुरुष विद्यमान थे जो इसी शक्ति से जनता को हानि पहुँचाया करते थे।

सोलन ने राजकार्य को समुचित रीति पर चलाने के लिये एथेंस में लोकसभा का निर्माण किया था। लोक-सभा का मुख्य कार्य मुख्य शासक चुनना तथा राजकार्य को उचित विधि पर चलाने के लिये नियमों के विषय में सम्मति देना था। राज्य के अधिकारों को बड़े बड़े व्याख्याता लोकसभा द्वारा प्रायः कुचलवा दिया करते थे। सारांश यह है कि उस युग में लोकसभा ही राजकार्य में सीधे तौर पर सब कुछ थी। यहाँ हमें यह बतला देना चाहिए कि लोकसभा के अधिकारों के संबंध में निम्नलिखित कार्य कहे जा सकते हैं—

(१) राजदूतों को नियत करना।

(२) विदेशी राष्ट्रों के संदेशों को सुनना।

(३) युद्ध या शांति का निर्णय करना।

(४) सेनापतियों का नियत करना।

(५) सैनिकों की तनखाहें निश्चित करना।

(६) विजित नगरों का प्रबंध आदि करना।

(७) नवीन देवताओं को उपासना के लिये मानना।

(८) धार्म्मिक उत्सव करना।

(९) नागरिकों को अधिकार आदि देना।

(१०) राष्ट्र के आय व्यय को देखना (३५ या ३६ दिन में एक बार)।

(११) मुद्रा निर्माण करना।

(१२) कर लगाना।

(१३) सड़कें, मकान, मंदिर, पुल आदि के बनाने में अपनी सम्मति देना।

(१४) विशेष विशेष संदिग्ध विषयों में न्यायालय विभाग का कार्य भी करना।

सोलन ने लोकसभा की शक्ति को ठीक मार्ग पर चलाने के लिये 'अंतरंग सभा' का भी निर्माण किया था। अंतरंग सभा के सभ्य प्रायः अच्छे अच्छे धनाढ्य तथा बड़े बड़े विद्वान् होते थे। परंतु क्लिस्थनीज़ के काल से यह बात बदल गई। अंतरंग सभा इसकी अपेक्षा कि लोकसभा को अपने पीछे चलाती, स्वयं ही उसके पीछे चलने लगी। यह पहले लिखा जा चुका है कि एथेंस में एक मुख्य शासक लोकसभा द्वारा चुना जाता था। इस मुख्य शासक को हम आगे चलकर प्रधान के नाम से लिखेंगे।

एथेंस में भिन्न भिन्न अभियोगों के निर्णय के लिये भिन्न भिन्न न्यायालय थे। सब से बड़े न्यायालय के ६००० सभ्य थे। छोटे छोटे न्यायालयों में किसी के १०० सभ्य थे तो किसी के १०००। पाठक स्वयं ही समझ सकते हैं कि जिस न्यायालय में इतने इतने सभ्य हों, वह कहाँ तक न्याय कर सकता है। न्याय कोई ऐसी चीज नहीं है जो बहु-सम्मति से प्राप्त हो सके। इतने बड़े न्यायालय की जो बुराइयाँ होती हैं, एथेंस ने वे सब की सब सहीं।

प्रजासत्तात्मक राज्यवाली जाति में शासन की अपेक्षा स्वतंत्रता का प्रेम बेशक अधिक होता है। एथेंसवालों ने शिल्प में जो पूर्णता प्राप्त की थी, उसमें उनकी स्वतंत्रता ही काम कर रही थी।

प्रजासत्तात्मक राज्य की आलोचना

प्रजासत्तात्मक राज्य में समस्त जाति स्वयं अपने आप सीधी शासक होती है। जातीय सभा द्वारा जनता स्वयं उपस्थित होकर अपने शासन का कार्य स्वयं ही करती है। परंतु यह वहीं हो सकता है जहाँ राष्ट्र बहुत छोटा हो। बड़े बड़े राष्ट्रों में इस शासन-पद्धति को प्रचलित करना बहुत ही कठिन है।

प्रजासत्तात्मक राज्य में एक दूषण यह भी है कि योग्य योग्य व्यक्ति प्रजा को अपनी उँगलियों पर नचाते हुए उसकी संपूर्ण शक्ति अपने हाथ में ले लेते हैं। इससे जो हानि पहुँचती है, वह यूनान के इतिहास से सर्वथा स्पष्ट है।

थ्यूसीडाइडीज़ (Thucydides) ने एक बार कहा था—

"Athens was a democracy in name, but in reality it was under the rule of the first of its citizens."

(See Thucydides ii-69).

अर्थात्—"एथेंस में प्रजासत्तात्मक राज्य तो नाम मात्र का था, वास्तव में वहाँ उसके नागरिकों में से मुख्य नागरिकों का ही राज्य था"। अतः प्रजासत्तात्मक राज्य को सफलता से चला सकने के लिये प्रजा का आचार तथा विचार बहुत

ही उन्नत तथा दृढ़ होना चाहिए। इसके बिना यह संभव नहीं कि आदर्श शासन-पद्धति (प्रजासत्तात्मक) सफलता से चल सके। इसमें संदेह नहीं है कि प्रजासत्तात्मक शासन-पद्धति में नागरिकों की शासन-शक्ति उन्नत हो जाती है। उन्हें जातियों के नियमों तथा इतिहासों को देखना पड़ता है। उनके संकुचित विचार दूर हो जाते हैं। परंतु प्रश्न तो यह है कि शक्ति की मोहिनी मदिरा से उनकी रक्षा कैसे की जाय? जनता में दल बन जाते हैं जिनमें राज्य-भक्ति के स्थान पर वैयक्तिक ईर्ष्या द्वेष प्रबल हो उठते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जनता के दलों के नेता जनता को अपनी वक्तृता या लेखन शक्ति से वशीभूत करके एक दूसरे का गला कटवाते हैं। यही कारण था कि एथेंस की उन्नति क्षणिक रही; और जब उसका अधःपतन प्रारंभ हुआ तो फिर वह अपने आपको न सँभाल सका। प्रजासत्तात्मक राज्य का आधारभूत 'समानता' का सिद्धांत है। प्रत्येक नागरिक एक दूसरे के समान है, चाहे वह योग्य हो चाहे अयोग्य। इस समानता का ही यह परिणाम था कि जो व्यक्ति उन्हें हानिकर मालूम पड़ता था, उसे वे 'देशत्याग' का दंड दे देते थे जिससे वह एथेंस को छोड़कर अन्यत्र कहीं बस जाता था। सारांश यह कि प्रजासत्तात्मक राज्य वहीं सफलता से चल सकता है जहाँ राष्ट्र छोटा हो, उसके नागरिक आचार विचार में समुन्नत तथा दृढ़ हों, उनका जीवन

सादगी से परिपूर्ण हो तथा उनमें समानता का सिद्धांत काम कर रहा हो।

आजकल प्रजासत्तात्मक राज्य का चिह्न यदि कहीं मिल सकता है तो वह केवल स्विट्जलैंड में। प्रायः अन्य सभ्य देशों में प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य का ही प्रचलन है। प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य के भी सफलता से चल सकने के लिये जनता में विशेष विशेष गुणों की आवश्यकता होती है। प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की अनिच्छुक, शासन-भार से घबरानेवाली, उदासीन तथा आलस्य से परिपूर्ण जनता में यह शासन-पद्धति समुचित विधि पर नहीं चल सकती। मिल महाशय ने लिखा है कि कई जातियों का यह विचित्र स्वभाव होता है कि वे शासकों का अत्याचार चुपचाप सहन कर लेंगी, परंतु उसके विरुद्ध आवाज कभी न उठावेंगी। ऐसी जातियों में यदि यह शासन-पद्धति प्रचलित कर दी जाय तो यही परिणाम होगा कि वे अत्याचारी शासक को ही अपना शासक चुना करेंगी। स्थानीय प्रेम या मतमतांतरों के प्रेम से परिपूर्ण संकुचित विचारवाली जातियाँ भी ऐसी शासन-पद्धति का अवलंबन करने के अयोग्य हैं; क्योंकि ऐसा करने पर भिन्न भिन्न दलों के मत-मतांतर संबंधी झगड़ों का प्रवेश शासन में हो जायगा जिससे एक दूसरे दल का घात किया जाना स्वाभाविक ही है। कई जातियों में व्यक्तियों को दूसरों पर हुकूमत करने में ही आनंद

प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य

आता है। ऐसी जातियों में जब प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य का स्थापन किया जाता है, तब हुकूमत करने के इच्छुक व्यक्ति अपने आपको शासक के तौर पर चुनवा लेते हैं तथा अपने निचले अधिकारियों पर कठोरता का बाजार गरम कर देते हैं। सारांश यह है कि चाहे प्रजासत्तात्मक राज्य हो चाहे प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य हो, जातीय आचार की श्रेष्ठता सभी में आवश्यक है। इस बात का रहस्य तब बिलकुल प्रत्यक्ष हो जाता है जब कि हम भिन्न भिन्न सभ्य देशों की शासन-पद्धतियों का निरीक्षण करते हैं। अमेरिका तथा इँगलैंड की शासन-पद्धतियों को देखकर ही युरोप की अन्य जातियों ने अपनी अपनी शासन-पद्धतियाँ बनाई हैं। परंतु क्या कारण है कि सब देशों की शासन-पद्धतियाँ जिन जिन स्थानों पर एक दूसरे से मिलती भी हैं, वहाँ पर भी कार्य में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं? इँगलैंड की मंत्रिसभा की रीति पर फरांसीसी मंत्रिसभा क्यों न सफलता से काम कर सकी? इसी लिये कि दोनों जातियों का आचार-व्यवहार भिन्न भिन्न है। यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि जातीय आचार-व्यवहार के सदृश देश की भौगोलिक, प्राकृतिक तथा राजनीतिक स्थितियों का भी शासन-पद्धति पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। स्विट्ज़लैंड में 'जनसम्मति' विधि सफलता से चल सकी, अन्य देशों में नहीं। यह केवल इसी लिये कि वह पार्वतीय प्रदेश है, उसके राष्ट्रसंघटन के राष्ट्र छोटे छोटे हैं।

इँगलैंड तथा अमेरिका में न्यायालय विभागों को जो प्रधानता प्राप्त है, वह अन्य युरोपीय देशों में नहीं है; क्योंकि इँगलैंड तथा अमेरिका को शत्रुओं से इतना डर नहीं है जितना युरोपीय महाद्वीप के भिन्न भिन्न राष्ट्रों को है *।

प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य में शासन प्रजा के ही हाथ में होता है, परंतु कुछ एक प्रतिनिधियों द्वारा, न कि प्रत्यक्ष। इससे जहाँ लाभ हैं, वहाँ हानियाँ भी हैं। जनता में सब के सब व्यक्ति उन्नत विचार तथा आचार के तो होते ही नहीं हैं। शासन का कार्य इतना सहज नहीं है कि उसे सभी कर सकें। इस दशा में जनता के योग्य योग्य व्यक्तियों को शासन का भार दे देना लाभदायक ही प्रतीत होता है। इसमें संदेह नहीं है कि एकसत्तात्मक राज्य की अपेक्षा प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य बहुत ही अधिक उत्तम है। एकसत्तात्मक राज्य तो तभी कोई जाति प्रचलित कर सकती है जब कि वह शासन के कार्य को सब से अधिक सहज समझती हो।

राष्ट्र का तात्पर्य्य तथा स्वरूप

लोकतंत्र राज्य तथा प्रतिनिधि-तंत्र राज्य के भेद के सदृश ही राष्ट्र के स्वरूप तथा तात्पर्य का ज्ञान भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। फ्रांस, जर्मनी, इँगलैंड पृथक् पृथक् एक राष्ट्र हैं, राष्ट्र की रक्षा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है, राष्ट्र ही राजा का निर्वाचन करता है, अराजकता से राष्ट्र नष्ट हो जाता है, इत्यादि

---

* See Mill's Representative Government, Chap. IV.

अनेक वाक्य हैं जो कि राष्ट्र के स्वरूप के साथ संबद्ध हैं। राजनीति शास्त्र में राष्ट्र के तात्पर्य्य तथा स्वरूप को मुख्य स्थान दिया गया है। प्रत्येक प्रकरण तथा सिद्धांत किसी न किसी अंश में इससे जुड़ा हुआ है।

अँगरेजी भाषा में राष्ट्र के स्थान पर स्टेट शब्द प्रचलित है। स्टेट शब्द का व्यवहार अनेक अर्थों में होता है। स्वतंत्र रियासतों को राष्ट्र नाम से पुकारा जाता है। प्रदेश या जनपद, जनसंख्या, एकता तथा संघटन इन चार अर्थों में राष्ट्र शब्द का व्यवहार साधारणतया किया जाता है*।

महाशय वुड्रो विल्सन का विचार है—"किसी एक जनपद में रहनेवाले जनसमूह का नाम राष्ट्र है जो व्यवस्था तथा शांति के लिये संघटित हो"†। थियोडोर वूल्जे का मत है कि राष्ट्र नियमों के द्वारा संघटित जनसमाज का नाम है जो अपने अंगों के द्वारा एक विशेष भूमिभाग तक शासन करता हो‡। महाशय हालैंड राष्ट्र से उस जन-समूह का ग्रहण करते हैं जो किसी एक जनपद में रहता हो और बहु सम्मति के द्वारा राज्यकार्य्य चलाता हो§। प्रसिद्ध जर्मन राजनीतिज्ञ

* तंत्र तथा स्टेट शब्द का अर्थ तथा तात्पर्य्य एक ही है। देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २ अंक १।

† वुड्रो विल्सन—दी स्टेट।

‡ टी० वूल्जे—पोलिटिकल सायंस।

§ टी० ई० हालैंड—एलीमेंट्स आफ् जुरिसप्रूडेंस।

ब्लुंटूश्ली राष्ट्र को सजीव मानता है और यही कारण है कि वह राष्ट्र को मनुष्य-समाज का विराट् रूप समझता है*। सारांश यह है कि युरोप के राजनीतिज्ञों के अनुसार राष्ट्र शब्द प्रत्यक्ष रूप से ऐसे मनुष्य-समूह का बोधक है जिसका प्रत्येक मनका राज्य-नियम-रूपी सूत में पिरोया गया हो।

राष्ट्र, समाज, राज्य तथा जाति में भेद

समाज, राज्य तथा जाति से राष्ट्र का क्या भेद है, इसको स्पष्ट करने से राष्ट्र का तात्पर्य्य तथा स्वरूप बहुत ही अधिक स्पष्ट हो सकता है।

पूर्व में लिखा जा चुका है कि राष्ट्र का संबंध भूमिभाग से है। बिना भूमि या प्रदेश के कोई संघटित-समाज राष्ट्र नहीं बन सकता। समाज में यह बात आवश्यक नहीं है। मनुष्यों के समूह के साथ ही समाज शब्द का घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य-समूह संघटित हो चाहे असंघटित, वह समाज शब्द से पुकारा जा सकता है। मनुष्य-समाज के अध्ययन का तात्पर्य उसके धार्मिक, व्यावहारिक, चरित्र तथा शिक्षा विषयक कार्य्यों के अध्ययन से है। भूमि या प्रदेश के साथ समाज शब्द का कुछ भी संबंध नहीं है।

राष्ट्र का समाज के सदृश ही राज्य से भी भेद है। राष्ट्र शब्द का क्षेत्र राज्य शब्द के क्षेत्र से बहुत ही अधिक विस्तृत है। राज्य शब्द का तात्पर्य्य उस मनुष्य-समूह से है जिसके

---

* ब्लुंट्श्ली—दि थियोरी आफ दि स्टेट्।

हाथ में कुछ समय के लिये राष्ट्र की राजनीतिक शक्ति होती है। कभी कभी एक व्यक्ति के लिये भी राज्य शब्द का व्यवहार होता है। वस्तुतः राज्य राष्ट्र का ही एक अंग है। प्रतिनिधि-तंत्र राज्यों में राष्ट्र की राजनीतिक इच्छाओं को कार्य्य रूप में परिणत करना ही राज्य का मुख्य काम समझा जाता है।

जाति के साथ भी राष्ट्र का भेद है। जाति शब्द किसी पूर्ववर्ती संघटन को सूचित करता है, चाहे वह संघटन भाषा संबंधी हो और चाहे वंश संबंधी हो। राष्ट्र में ये दोनों बातें लुप्त हैं। आस्ट्रिया-हंग्री एक राष्ट्र था, यद्यपि उसमें अनेक जातियों का निवास था। बहुधा जाति शब्द राष्ट्र अर्थ को सूचित करने लगता है। फ्रांसीसी जाति तथा राष्ट्र अतिशय विभिन्न अर्थ नहीं सूचित करते। इसका मुख्य कारण यही है कि चिरकाल से एक ही राष्ट्र में रहते हुए भिन्न भिन्न जातियों ने अपना पुराना भेद भुला दिया और अपने आपको एक ही जाति में परिणत किया। पुराने जमाने में भी राष्ट्र तथा जाति का भेद बहुत प्रत्यक्ष नहीं था। रोम तथा स्पार्टा में जातीयता के साथ ही राजनीतिक अधिकारों का संबंध था। एक विशेष जाति के लोग ही राजनीतिक अधिकारों के अधिकारी समझे जाते थे। एक जाति के लोगों के संघ से ही राष्ट्र बनता था और इसी लिये राष्ट्र तथा जाति में कुछ भी भेद नहीं मालूम पड़ता था।

आजकल जनता का झुकाव इसी ओर है कि एक ही राष्ट्र में रहनेवाली भिन्न भिन्न जातियाँ फ्रांसीसियों के सदृश ही

एक जाति में परिणत हो जायँ। अमेरिका में यही बात हो रही है। आयलैंड तथा इटली इसी ओर पग बढ़ा रहे हैं; और समय आवेगा जब कि भारतवासी भी अपने पुराने जातीय भेदों को भुलाकर एक ही राष्ट्र में परिणत हो जायँगे।

आदर्श राष्ट्र

भिन्न भिन्न जातियाँ अपने पुराने भेदों को भुलाकर एक ही राष्ट्र में परिणत होती जाती हैं। क्या कोई समय आ सकता है जब भिन्न भिन्न राष्ट्र अपने भेदों को भुलाकर एक ही राष्ट्र में परिणत हो जायँ, "वसुधैव कुटुंबकम्" अर्थात् विश्व में रहनेवाले संपूर्ण प्राणी एक ही कुटुंब के सभ्य हैं, यह भाव संपूर्ण राष्ट्रों में प्रचलित हो जाय और समय उनको एक ही विश्व-राष्ट्र में परिणत कर दे?

संसार को एक ही राज्य में परिणत करके संघटित करने का यत्न आज से पूर्व बहुत लोगों ने किया था। इतिहास में सिकंदर, नेपोलियन तथा चंद्रगुप्त के नाम अतिशय प्रसिद्ध हैं। किंवदंतियाँ तथा गाथाएँ दक्ष, मांधाता, रघु, राम तथा युधिष्ठिर आदि महापुरुषों को भी इसी विषय में महत्त्व दे रही हैं। रोम का रोमन साम्राज्य स्थापित करना भी किसी से छिपा नहीं है। आजकल अँगरेजों का भी यही उद्देश्य मालूम पड़ता है।

दुःख जो है वह यही है कि पुराने जमाने से लेकर अब तक किसी ऐतिहासिक पुरुष अथवा जाति ने भ्रातृभाव को

सामने रखकर यह काम नहीं किया। साम्राज्यवाद तथा कीर्ति की लोलुपता ही इस ढंग के यत्न का मुख्य कारण रही। इस साम्राज्यवाद के मद में अंग्रेज एशिया की पराधीन जातियों के साथ जो व्यवहार कर रहे हैं, वह किसी से छिपा नहीं है।

परंतु उचित तो यही है कि संसार को एक कुटुंब समझकर एक विश्वव्यापी आदर्श राष्ट्र स्थापित किया जाय और जहां तक हो सके, किसी व्यक्ति तथा राष्ट्र की स्वतंत्रता का अपहरण न किया जाय।

शक्ति संविभाग

राजनीति विज्ञान के पिता मांटस्क्यू (Montesquieu) का कथन है—"यदि नियामक तथा शासक शक्ति किसी एक व्यक्ति या समूह के पास इकट्ठी हो तो जाति की स्वतंत्रता का नाश होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि जाति को इस बात का सदा भय बना रहेगा कि राजा या राष्ट्रसभा स्वेच्छाचारी नियम बनाकर स्वच्छंदता से उनका प्रयोग करेगी। इसी प्रकार न्याय संबंधी शक्ति को नियामक तथा शासन शक्ति से सर्वथा पृथक् न कर दिया जाय; तथा यदि उसे नियामक शक्ति का सहायक बना दिया जाय तो जो नियम बनानेवाला होगा, वही न्यायाधीश भी हो जायगा। इसका परिणाम यह होगा कि जाति के व्यक्तियों का जान-माल एक मात्र न्यायाधीशों के हाथ

मांटस्क्यू

में चला जायगा; और यदि कहीं न्याय संबंधिनी शक्ति को शासकों के ही हाथ में दे दिया जाय, तब तो अत्याचार का होना आवश्यक ही है; क्योंकि जो किसी व्यक्ति पर अपराध लगानेवाला होगा, वही उस व्यक्ति के अपराध का निर्णय करनेवाला भी होगा।"

ब्लुंट्श्ली

मांटस्क्यू के सदृश ही ब्लुंट्श्ली ने लिखा है—"किसी के हाथ में अत्यंत अधिक शक्ति दे देना राष्ट्र के लिये भयानक होता है। यदि ऊपर लिखी तीनों शक्तियाँ पृथक् पृथक् व्यक्तियों तथा समुदायों के हाथ में दे दी जायँ तो इससे राष्ट्र में जहाँ किसी की शक्ति अधिक नहीं होने पाती, वहाँ कार्य भी समुचित रीति पर चलता है। एक ही व्यक्ति या समुदाय तीनों कार्यों का इस योग्यता से संपादन नहीं कर सकता जैसा कि वह केवल एक ही कार्य कर सकता है। परमात्मा ने शरीर में आँखें देखने के लिये, कान सुनने के लिये तथा हाथ काम करने के लिये दिए हैं। जब परमात्मा ने शरीर के कार्य को उचित ढंग पर चलाने के लिये भिन्न भिन्न इंद्रियाँ दी हैं, तब राष्ट्र रूपी शरीर का कार्य भी अच्छी तरह से चलाने के लिये 'शक्ति-संविभाग' के सिद्धांत का ही अवलंबन करना ठीक मालूम पड़ता है* ।"

---

* See Bluntschli--The Theory of the State, Book VII, Chap. VII.

अठारहवीं सदी के लेखकों ने उपरिलिखित शक्ति-संविभाग के सिद्धांत को एक सार्वभौम त्रैकालिक तत्त्व मान लिया।

शक्ति-संविभाग सिद्धांत की विफलता

अमेरिका में जनतंत्र शासन-पद्धति का अवलंबन करते समय इसी सिद्धांत को यथासामर्थ्य काम में लाने का यत्न किया गया। १७८० की मैसाचूसट् की शासन-पद्धति की धाराओं में लिखा है—"इस राष्ट्र के राज्य में नियामक विभाग शासक तथा निर्णायक विभाग की, शासक विभाग नियामक तथा निर्णायक विभाग की, और निर्णायक विभाग नियामक तथा शासक विभाग की शक्ति को काम में न ला सकेगा। सारांश यह है कि यहाँ राज-नियमों का राज्य होगा, न कि व्यक्तियों का"। १७८७ की राष्ट्र संघटन की शासन-पद्धति में भी इसी सिद्धांत का प्रयोग किया गया है। मिल्टन मैडीसन तथा ग्रे का कथन है—"शासक, नियामक तथा निर्णायक शक्तियों का एक ही व्यक्ति या संघ के हाथ में होना, चाहे वह निर्वाचित, नियुक्त या वंशागत हो, स्वेच्छाचार तथा निरंकुश शासन का एक ज्वलंत उदाहरण है।" यह होते हुए भी सन् १७७६ तथा १७७७ की राष्ट्रीय शासन-पद्धतियों में तथा १७८७ के राष्ट्र संघटन की शासन-पद्धति में शक्ति-संविभाग-सिद्धांत का प्रयोग पूर्ण रूप से न किया जा सका। इसी से यह स्पष्ट है कि शक्ति-संविभाग सिद्धांत त्रैकालिक सत्य नहीं है। असल बात तो यह है कि तीनों ही शक्तियाँ एक

दूसरी पर निर्भर हैं। निर्णायक विभाग नियामक विभाग द्वारा पास किए गए कानूनों के अनुसार ही निर्णय करने के कारण उस पर पूर्णतया निर्भर है; और इसी प्रकार शासक विभाग नियामक विभाग के कानूनों का अवलंबन करने के कारण सर्वथा स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। यदि शासक विभाग तथा निर्णायक विभाग नियामक विभाग के कानूनों को न मानें तो नियामक विभाग क्या कर सकता है? सारांश यह है कि तीनों ही शक्तियाँ तथा तीनों ही विभाग एक दूसरे पर निर्भर हैं और एक दूसरे को स्वेच्छाचारी होने से रोकते हैं।

अमेरिका के सदृश ही फ्रांस ने भी यही सिद्धांत अनुभव किया। सन् १७८९ में उसने शक्ति-संविभाग-सिद्धांत का पूरी तरह से अवलंबन करना चाहा, परंतु वह सफल न हुआ।

उन्नीसवीं सदी में शक्ति-संविभाग-सिद्धांत का महत्त्व बहुत ही घट गया। इँगलैंड ने यह सिद्ध कर दिया कि इस सिद्धांत के विपरीत शासन-पद्धति होते हुए भी राज-कार्य्य उत्तम विधि पर चल सकता है और व्यक्तियों की स्वतंत्रता सुरक्षित रह सकती है। इँगलैंड में सचिव मंडल के हाथ में ही एक प्रकार से राष्ट्र की शासक तथा नियामक शक्ति है। यह होते हुए भी वहाँ जनता की स्वतंत्रता पूरे तौर पर सुरक्षित है। इँगलैंड के सदृश ही फ्रांस तथा इटली में भी शक्ति-संविभाग का सिद्धांत कार्य रूप में नहीं लाया जाता। फ्रांस में नियामक

शक्तिसंविभाग-सिद्धांत का प्रयोग

विभाग द्वारा प्रधान चुना जाता है। वस्तुतः उसका सचिव-मंडल ही जनता का प्रतिनिधि है और राष्ट्र का प्रत्येक प्रकार का कार्य चलाता है। इटली में दलों के सहारे राजा ही राष्ट्र का धुरा घुमाता है। लड़ाई से पहले जर्मनी में शक्तियों का संविभाग न था। प्रशिया के राजा के रूप में विलियम कैसर की शक्ति अपरिमित थी। अमेरिका में प्रधान नियामक सभाओं के द्वारा पास किए गए प्रस्तावों को रद्द कर सकता है। अपनी सूचनाओं के द्वारा वह बहुधा नियामक सभा में नए नए नियम भी पास करा लेता है। इसी के सदृश अमेरिका की नियामक सभा शासक शक्ति का प्रयोग भी करती है। शासकों की नियुक्ति तथा परराष्ट्रीय-संधियों की स्वीकृति के द्वारा अमेरिकन सेनेट एक प्रकार से शासक शक्ति को प्रयोग में लाती है। अमेरिकन न्यायाधीशों का निर्वाचन शासकों के द्वारा होता है और वह नियामक सभाओं के द्वारा पास किए गए नियमों को शासन-पद्धति की धाराओं के प्रतिकूल ठहराकर निरर्थक बना सकते हैं। सारांश यह है कि अर्वाचीन राष्ट्रों में शक्ति-संविभाग-सिद्धांत का महत्त्व बहुत कुछ लुप्त हो गया है।

शासक समिति

शासन-पद्धति के निर्माण काल में प्रायः इस बात का ध्यान रखा जाता है कि नियामक, शासक तथा निर्णायक तीनों शक्तियाँ किसी एक को अंतिम सीमा तक न बढ़ने दें और एक दूसरे की शक्ति को अपनी अपनी सीमाओं में बाँध रखें। यही कारण है कि इँगलैंड

में मुख्य न्यायाधीश शासक समिति द्वारा चुना जाता है; परंतु वही चुने जाने के अनंतर अपने चुननेवाले अधिकारियों पर अपना निर्णय दे सकता है। वहाँ न्यायाधीश को पदच्युत करना नियामक सभा के हाथ में है। यह अतिशय उत्तम प्रबंध इँगलैंड में ही संभव है, क्योंकि इँगलैंड को भयानक युद्धों की दिन रात चिंता नहीं करनी पड़ती। युरोप की अन्य जातियाँ इस प्रकार न्यायाधीश की शक्ति को महत्त्व देने में असमर्थ हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें दिन रात अपने आपको शत्रु से बचाने की ही चिंता रहती है। युरोप की प्रायः सभी जातियों में 'शासक-न्याय-समिति' की विधि प्रचलित है। इस समिति का संबंध जहाँ विशेषतः शासकों से है, वहाँ वह शासकों का शासन के ही रूप में निर्णय करती है। युरोप के देशों के शासक निर्भयता से अपना कार्य किया करते हैं, क्योंकि उन्हें इस बात का निश्चय होता है कि उनकी अपनी समिति समय पर उनकी रक्षा करेगी। चूँकि अमेरिका की स्थिति भी इँगलैंड के ही सदृश है, अतः वहाँ भी मुख्य न्यायालय शासन-पद्धति के विरुद्ध, राजनियमों को ठहरा सकता है तथा उनको कार्य में लाने से रोक सकता है। जातीय सभा की किसी नियम-धारा से यदि कोई राजनियम टक्कर खाता हो तो मुख्य न्यायालय उसे राजनियम ही नहीं समझता।

इँगलैंड में मंत्रिसभा की उपसमिति के सभ्य नियामक सभा के सभ्य भी होते हैं तथा वे नियमनिर्माण पर पर्याप्त प्रभाव भी

डालते हैं। परंतु अमेरिका में यह बात नहीं है। वहाँ की शासन-पद्धति के निर्माता शासकों के हाथ में परिमित शक्ति ही रखना चाहते थे; इसी लिये उन्होंने अमेरिका के प्रधान तथा उसकी मंत्रिसभा को जातीय सभा में बैठने से रोक दिया। प्रधान की शक्ति को जहाँ राष्ट्रसभा के द्वारा उन्होंने बहुत कुछ परिमित कर दिया है, वहाँ उसकी प्रधानता का काल भी बहुत ही थोड़ा रखा है। इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि इँगलैंड तथा अमेरिका की शासन-पद्धतियाँ एक दूसरी से सर्वथा भिन्न हैं। इसमें संदेह भी नहीं है कि दोनों ही देशों में नियम बनाते समय छोटी छोटी बातों तक का ध्यान रख लिया जाता है जिसमें शासकों को जहाँ अपनी बुद्धि से बहुत काम नहीं लेना पड़ता, वहाँ वे लोग स्वेच्छाचारी भी नहीं हो सकते। परंतु फ्रांस तथा इटली में यह बात नहीं है। वहाँ मोटे मोटे नियम बना दिए जाते हैं; और छोटे छोटे मामलों में शासकों को अपनी बुद्धि से ही काम लेना पड़ता है। इससे उनका कुछ कुछ स्वेच्छाचारी हो जाना स्वाभाविक ही है।

आजकल प्रायः नियामक सभाओं के 'स्वापन्न तथा अस्वापन्न' दो भेद किए जाते हैं। इँगलैंड की पार्लिमेंट (राजा + लार्ड सभा + प्रतिनिधि सभा) स्वापन्न नियामक सभा का उदाहरण है, क्योंकि इसकी नियामक शक्ति किसी नियम द्वारा प्रतिबद्ध नहीं है। परंतु संसार के अन्य सभ्य देशों की नियामक सभा की यह दशा नहीं है। अँगरेजी उपनिवेशों की निया-

मक सभाएं अस्वापन्न कही जा सकती हैं, क्योंकि उनकी नियामक शक्ति इँगलैंड की पार्लिमेंट द्वारा प्रतिबद्ध होती है। अमेरिका में भी नियामक सभा शासन-पद्धति संबंधी नियमों की धाराओं के परिवर्तन करने में जनता की ओर से कुछ परतंत्र है। जनता ने मुख्य न्यायाधीशों को यह शक्ति दे दी है कि वे यह बतावें कि अमुक अमुक राजनियम शासन-पद्धति के विपरीत तो नहीं हैं। यदि विपरीत हों तो उनके स्वीकृत करने में नियामक सभा स्वापन्न नहीं है। कई एक विद्वान् शासन-पद्धति के संबंध में प्रायः 'शिथिल या अशिथिल' शब्द भी व्यवहृत करते हैं। आंग्ल शासन-पद्धति शिथिल कही जाती है, क्योंकि उसके द्वारा शासन-पद्धति के आधारभूत नियमों का भी उसी शीघ्रता से परिवर्तन किया जा सकता है जैसे तुच्छ तुच्छ नियमों का। परंतु अमेरिकन शासन-पद्धति अशिथिल कही जाती है, क्योंकि वहाँ किसी प्रकार का शासन-पद्धति संबंधी सुधार जातीय सभा के दो-तिहाई सभ्यों की स्वीकृति के बिना नहीं किया जा सकता; और जातीय सभा में स्वीकृत हो जाने पर भी जब तक तीन-चौथाई राष्ट्र उस सुधार को न स्वीकार कर ले, तब तक वह काम में नहीं लाया जा सकता। स्विट्ज़लैंड में शासन-पद्धति संबंधी सुधार के लिये आवश्यक रूप से जनसम्मति लेनी पड़ती है। जर्मनी में भी जातीय सभा के २/३ सभ्यों की स्वीकृति की आवश्यकता पड़ती है।

नियामक जनसम्मति विधि

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि प्रतिनिधियों के निर्वाचन से भी लोकतंत्र शासन-पद्धति का सिद्धांत सुरक्षित नहीं रह सकता। जनता में श्रेणी संघर्ष का उपद्रव बहुत कुछ प्रतिनिधि तंत्र शासन-पद्धति तथा निर्वाचन के विशेष विशेष नियमों का ही परिणाम है।

लोकतंत्र शासन-पद्धति उसी समय पूर्ण समझी जा सकती है जब कि जनता निर्वाचन-नियम-निर्माण में पूरे तौर पर भाग ले सके। स्विट्जर्लैंड में अब तक कई राष्ट्रों में प्रत्यक्ष तौर पर नियम निर्माण होता है। छोटे छोटे राष्ट्रों में नगरों की जनता स्वयं उपस्थित होकर कानून पास करती है। वहाँ प्रतिनिधियों का सहारा नहीं लिया जाता।

तार तथा पत्र-प्रेषण के प्रचार से इस जमाने में फिर से प्रतिनिधि-तंत्र-शासन-शैली को लोकतंत्र-शासन-पद्धति के अनुसार बनाने का यत्न किया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये नियामक जनसम्मति का सहारा लिया गया है। नियामक सभा में पेश किए गए प्रस्तावों को संपूर्ण निर्वाचक मंडल के पास भेज दिया जाता है। वे लोग हाँ या न में अपनी सम्मति दे देते हैं। यदि प्रस्ताव के विरुद्ध बहुपक्ष हुआ तो वह प्रस्ताव राजनियम नहीं बनता। स्विट्जर्लैंड में शासन-पद्धति संबंधी धाराओं के मामलों में जनसम्मति लेना आवश्यक है। नियत संख्या के हस्ताक्षर कराकर वहाँ जनता

नियामक सभाओं में अपनी ओर से नए नए प्रस्ताव भी उपस्थित करती है। १८७४ से १८९६ तक स्विट्ज़लैंड में भिन्न भिन्न प्रस्तावों पर ३८ बार नियामक जनसम्मति ली गई थी।

आजकल अमेरिका की कई रियासतों में भी इसका प्रचार है। दृष्टांत स्वरूप न्यू इँगलैंड नामक अमेरिकन राष्ट्र में अब तक नागरिक समिति ही राष्ट्रीय नियम बनाती है। शासन-पद्धति संबंधी धाराओं के परिवर्तन के मामले में बहुत से राष्ट्रों में नियामक जनसम्मति का अवलंबन किया गया है। अर्वाचीन जर्मनी तथा रूस तो इसके विशेष रूप से भक्त हैं। राजनीतिज्ञों का अनुमान है कि सभी राष्ट्रों में यथासंभव इसका अवलंबन किया जायगा।

शासक विभाग

शासक विभाग का काम नियामक विभाग द्वारा स्वीकृत राजनियमों को प्रचलित करना है। कभी कभी शासक विभाग से प्रधान तथा उसके सहकारी वर्गों का भी तात्पर्य लिया जाता है।

शक्ति-संचय

नियामक तथा शासक विभाग का मुख्य भेद यह है कि नियामकों की संख्या अधिक होती है और मुख्य शासकों की संख्या बहुत ही थोड़ी होती है। यह इसी लिये कि शासन का काम तब तक सुगमता से नहीं चल सकता जब तक कि उद्देश्य एक न हो और राष्ट्र की इच्छाओं को एक दम कार्य में परिणत करने की सामर्थ्य न हो। ये दोनों बातें इस बात के लिये बाध्य करती हैं कि शासकों की संख्या अधिक न हो।

अमेरिका में राष्ट्र का मुख्य शासक प्रधान है। इँगलैंड में सचिव-मंडल को ही राष्ट्र का मुख्य शासक कहा जा सकता है। स्विट्ज़लैंड में सात सभ्यों की शासक समिति ही शासक का काम करती है।

भिन्न भिन्न राष्ट्रों में मुख्य शासकों के नियत करने के भिन्न भिन्न ढंग हैं। कई ऐसे राष्ट्र भी हैं जहाँ मुख्य शासक वंशागत होते हैं। परंतु आजकल सभ्य राष्ट्र वंशागत शासकों के पक्ष में नहीं हैं। युरोप में जहाँ कहीं वंशागत सम्राट् बचे हुए हैं, वहाँ उनकी शक्ति कुछ भी नहीं है। इँगलैंड, इटली, हंग्री तथा बेलजियम के राजाओं के हाथ में बहुत कम राजनीतिक शक्ति है।

मुख्य शासकों की नियुक्ति

वंशागत राजाओं तथा सम्राटों के सदृश ही बहुत से राष्ट्रों में मुख्य शासक जनता द्वारा चुना जाता है। अमेरिका में जनता ही प्रधान को चुनती है। यही बात फरांसीसी प्रधान तथा स्विस् शासक समिति के संबंध में है। इँगलैंड अपने अधीन देशों तथा उपनिवेशों के लिये मुख्य शासक का निर्वाचन स्वयं ही करता है।

प्रधान तथा मुख्य शासकों की शक्ति सब राष्ट्रों में एक सदृश नहीं है। लड़ाई से पहले रूस तथा जर्मनी के सम्राट् की शक्ति अपरिमित थी और इँगलैंड के सम्राट् की शक्ति कुछ भी नहीं थी। अमेरिका का प्रधान अति शक्तिशाली है। इसके विपरीत फ्रांस के प्रधान की शक्ति बहुत ही थोड़ी है।

प्रधानतंत्र तथा सचिव-तंत्र शासन-पद्धति

आजकल राजनीति शास्त्र के लेखक शासन-पद्धतियों को प्रधानतंत्र तथा सचिवतंत्र इन दो भेदों में विभक्त करते हैं। प्रायः यह देखने में आता है कि सचिवतंत्र शासनपद्धतिवाले देशों में मुख्य शासक की शक्ति कुछ भी नहीं होती। इँगलैंड का सम्राट् और फ्रांस का प्रधान इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इसके विपरीत प्रधानतंत्र शासन-पद्धतिवाले राष्ट्रों में प्रधान तथा राजा की शक्ति अपरिमित होती है। अमेरिका में यही बात है। लड़ाई से पहले प्रशिया के सम्राट् की शक्ति बहुत ही ज्यादा थी।

निर्वाचन तथा नियुक्ति को सामने रखते हुए यह कहा जा सकता है कि अमेरिका का प्रधान नियामक विभाग के द्वारा नहीं चुना जाता और बहुत ही अधिक शक्तिसंपन्न है। दोषारोपण (Impeachment) के द्वारा यही नियामक विभाग अमेरिकन प्रधान को राज-शक्ति से च्युत कर सकता है। सीनेट् को संधि तथा नियुक्ति का अधिकार है। परंतु प्रायः सीनेट् प्रधान के अनुसार ही काम करता है। अमेरिका का नियामक विभाग प्रधान को भिन्न भिन्न राजनीतिक कार्य्य करने के लिये बाध्य नहीं कर सकता। अमेरिकन सचिवों को प्रधान ही सीनेट् के सहारे नियुक्त करता है और स्वेच्छानुसार उनको पदच्युत कर सकता है। नियामक विभाग इस मामले में कुछ भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

इँगलैंड में राजा ही महामंत्री को विजयी दल में से चुनता है। चुने जाने के बाद महामंत्री अपना सचिव-मंडल बनाता है जो एक ओर राष्ट्र का शासन करता है और दूसरी ओर नियामक विभाग को वश में करके भिन्न भिन्न राज्यनियम पास करता है। आंग्ल-सचिव-मंडल की शक्ति तभी तक अपरिमित है जब तक नियामक विभाग उसके साथ है। जहाँ नियामक विभाग ने उसका साथ छोड़ा कि उसको अपना कार्य्य छोड़ देना पड़ता है। इँगलैंड में राजा की शक्ति कुछ भी नहीं है।

पूर्व में ही लिखा जा चुका है कि शासक विभाग से तात्पर्य्य मुख्य शासक से है। मुख्य शासक राजशक्तियों का राष्ट्र में प्रचार करने के लिये बहुत से राज्यसेवकों को नियुक्त करता है।

राज्यसेवक

भिन्न भिन्न विभागों के राज्यसेवकों के निरीक्षण तथा कार्य-निर्देश के लिये भिन्न भिन्न योग्य व्यक्ति मंत्री-पद पर नियुक्त किए जाते हैं।

इँगलैंड के राज्यसेवकों की संख्या लगभग ८०००० है। इन लोगों के पद स्थिर हैं। इनके ऊपर के मुख्य शासक ही समय समय पर बदलते रहते हैं। दृष्टांत स्वरूप इँगलैंड में अंतरंग सचिव (Home Secretary) के दो सहायक मंत्री होते हैं। एक स्थिर और दूसरा अस्थिर। स्थिर सहायक मंत्री अपने पद पर ज्यों का त्यों बना रहता है। परंतु अस्थिर

सहायक मंत्री सचिव-मंडल के बदलते ही इस्तीफा दे देता है। यही बात अन्य मुख्य मुख्य विभागों के संबंध में है।

अमेरिका में राज्यसेवकों की नियुक्ति तथा पदच्युति के मामले में चिरकाल से विचार हो रहा है। वहाँ बहुत ही थोड़े आदमी स्थिर राज्यसेवक होंगे। लगभग चार वर्षों के लिये ही भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न राजपदों पर नियुक्त किए जाते हैं। उनके पदच्युत करने के मामले में झमेला था। योग्य आदमी प्राय: अपने पद पर स्थिर तौर पर बने रहते थे। १८२९ के बाद से अमेरिका में यह प्रथा प्रचलित हुई कि प्रधान अपने अपने अनुगामियों तथा सहायकों को पारितोषिक के तौर पर उच्च उच्च राजपद दे देते थे। इसके विरुद्ध वहाँ लहर उठी और सन् १८८३ में वहाँ भी सिविल सर्विस एक्ट पास हुआ। अब परीक्षा के द्वारा ही भिन्न भिन्न विभागों पर मनुष्यों की नियुक्ति होती है। अमेरिका में सन् १९१० में ३७०००० राजकीय पद थे जिन पर परीक्षा के द्वारा २३४९४० व्यक्ति नियुक्त हुए थे।

अर्वाचीन राष्ट्रों की शासन-पद्धति

शासन-पद्धतियों का वर्गीकरण करते समय राजनीतिज्ञ लोग यही बात सबसे पहले अपने सामने रखते हैं कि किस किस राष्ट्र में स्वेच्छातंत्र राज्य (Despotic Government) है, और किस किस राष्ट्र में प्रतिनिधि तंत्र राज्य (Democratic Government) है। प्रथम भेद में राष्ट्र

की प्रभुत्व शक्ति एक के हाथ में और द्वितीय भेद में जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में रहती है। आजकल रूस की शासन-पद्धति बहुत ही विचित्र है। स्थानीय स्वराज्य तथा संघराज्य का वह विचित्र नमूना है।

आजकल प्रतिनिधि-तंत्र राज्य भी एक सदृश नहीं हैं। कहीं पर दिखावे के लिये राजा है और कहीं पर प्रधान। इँगलैंड परिमित एकतंत्र राज्य का और फ्रांस प्रधानतंत्र राज्य का नमूना है। संपूर्ण प्रतिनिधि-तंत्र राज्य सचिवतंत्र तथा असचिवतंत्र के दो भेदों में विभक्त किए जाते हैं। यह भी एकात्मक तथा राष्ट्रसंघात्मक तंत्रों के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

एकात्मक तथा राष्ट्रसंघटनात्मक प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य

अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, स्विट्जलैंड राष्ट्रसंघटनात्मक राष्ट्रों के उदाहरण कहे जा सकते हैं, और इँगलैंड एकात्मक राष्ट्रों का। अमेरिका में बहुत से स्वतंत्र राष्ट्र थे। वे सब मिलकर अमेरिका के राष्ट्र-संघटन में सम्मिलित हुए। इनमें उनकी वैय्यक्तिक सत्ता का लोप नहीं किया गया, पर साथ ही मुख्य राज्य (Central Government) के सम्मुख उनकी शक्ति भी बहुत ही अल्प है। उन्हें जो कुछ स्वतंत्रता प्राप्त है, वह केवल अपने ही राष्ट्र के लिये है। इँगलैंड में यह बात नहीं है। इँगलैंड एक देश है। वह राष्ट्रसंघटन नहीं कहा जा सकता, इसी लिये वह एकात्मक राष्ट्र कहा जाता है।

राष्ट्रसंघटन दो प्रकार का हुआ करता है। एक पूर्ण, दूसरा अपूर्ण। पूर्ण राष्ट्रसंघटन के परिज्ञान से अपूर्ण का भी परिज्ञान हो जायगा। अतः पूर्ण राष्ट्रसंघटन पर कुछ शब्द लिख देना मैं आवश्यक समझता हूँ।

पूर्ण राष्ट्रसंघटन के तीन मुख्य मुख्य गुण होते हैं—

(१) राष्ट्रसंघटन के सब राष्ट्रों को राष्ट्रसभा में समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो।

(२) प्रत्येक राष्ट्र की शक्ति परस्पर समान हो।

(३) नियामक तथा शासक सभाओं के अधिकार राष्ट्रों की सहमति के बिना बढ़ाए न जा सकें।

अमेरिका का राष्ट्रसंघटन पूर्ण समझा जाता है। राष्ट्र-संघटन के लक्षण पर ही आजकल बड़ा भारी वाद विवाद है। महाशय फ्रीमैन की सम्मति में तो छोटे बड़े राष्ट्रों के सम्मेलन को राष्ट्रसंघटन कहा जा सकता है, परंतु आजकल यह नहीं माना जाता। सीले महाशय तो 'राष्ट्रसंघटन' से ऐसे दो राज्यों का परस्पर मेल समझते हैं जिनमें एक स्थानीय राज्य (Local Government) का पक्ष लेता है और दूसरा मुख्य राज्य (Central Government) का। परंतु यह भी लक्षण स्वीकृत नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसके अनुसार दारा तथा जर्क्सिस के राज्य भी राष्ट्रसंघटन के उदाहरण कहे जा सकते हैं। कुछ भी हो, राष्ट्रसंघटन से हमारा तात्पर्य ऐसे राष्ट्रों के परस्पर संयोग से है जो राज्यनियम द्वारा समान

अधिकार रखते हैं तथा अपनी अपनी शक्ति और आवृत्ति में सर्वथा असमान हैं। परंतु इस लक्षण के अनुसार राष्ट्रसंघटन तभी संभव है जब कि राष्ट्र स्वयं ही अपने हितों तथा स्वार्थों की एकता के कारण परस्पर मिले हों। राष्ट्रसंघटन की राजसभा में राष्ट्रीय सभ्यों को अपने अपने राष्ट्रों की सम्मति देना ही उचित प्रतीत होता है, जैसा कि जर्मनी में था। अमेरिका तथा स्विट्जलैंड में यह बात नहीं है। राष्ट्रसभा के सभ्य प्राय: वहाँ अपनी ही सम्मति दिया करते हैं *।

आदर्श राज्य

प्रजासत्तात्मक राज्य के सिद्धांतों के अधिक समीप तक यदि किसी देश की शासनपद्धति पहुँचती है तो वह स्विट्जलैंड की है। स्विट्जलैंड को आजकल के युग में "आदर्श राज्य" के नाम से लिखा जाता है। यह क्यों? 'यह इसी लिये कि स्विट्जलैंड जहाँ प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की शैली पर चल रहा है, वहाँ 'जन-सम्मति-विधि' से प्रजासत्तात्मक राज्य की शैली पर भी चलता हुआ कहा जा सकता है। एथेंस में यद्यपि प्रजासत्तात्मक राज्य था, परंतु वह उसको सफलता से न चला सका। स्विस् जनता का स्वभाव और आचार व्यवहार इतना उच्च है कि उसको विफलता का कभी सामना ही नहीं करना पड़ा। इँगलैंड के सदृश ही स्विस् शासनपद्धति का विकास भी आत्मिक नहीं है।

---

* See Alston—Modern Constitutions, Chaps. II, III.

चिरकाल से स्विस् जनता स्वतंत्रता का भोग कर रही है। विचित्रता यह है कि एक स्विट्ज़लैंड ने ही सारे संसार में अपने आप को जन-सम्मति-विधि के योग्य भूमि सिद्ध किया है; और यही कारण है कि स्विट्ज़लैंड की शासन-पद्धति पर लिखते हुए इस पुस्तक में जन-सम्मति-विधि पर बहुत से पृष्ठ दिए गए हैं जिन्हें पाठकों को अत्यंत ध्यान से पढ़ना चाहिए।

निर्णायक विभाग

राज्य के अन्य विभागों के सदृश ही निर्णायक विभाग भी महत्त्वपूर्ण है। वैयक्तिक या संघीय अपराधों का, प्रचलित राज्यनियमों के अनुसार, निर्णय करना ही निर्णायक विभाग का काम है।

निर्णायक विभाग

सबसे उत्तम न्यायाधीश वही है जो राज्यनियमों को अच्छी तरह जाने। राज्यनियम चाहे बुरे हों और चाहे भले हों, न्यायाधीश का काम उनके अनुसार निर्णय करना ही है। बहुत से स्थलों में राज्यनियमों का प्रयोग करना कठिन होता है। अपने विवेक तथा विचार के द्वारा ही ऐसे स्थलों में न्यायाधीशों को निर्णय करना पड़ता है। इस ढंग के परवर्त्ती अभियोगों में राज्यनियमों के तौर पर ही काम में लाए जाते हैं। इँगलैंड तथा अमेरिका में यह बात विशेष रूप से है।

न्यायाधीशों का निष्पक्ष होना नितांत आवश्यक है। राजनीतिक आंदोलनों से न्यायाधीशों का पृथक् रहना ही उचित है। राज्य के अधिकारी किसी न्यायाधीश पर

उचित या अनुचित दबाव न डालें, इसके लिये आवश्यक है कि उनको तनख्वाह इतनी अधिक मिलनी चाहिए कि वे अभियोगों का निर्णय लोभ-रहित होकर कर सकें और घूस आदि प्रलो-भन उनको अपने कर्तव्य से च्युत न कर सकें। इँगलैंड तथा अमेरिका में इसी सिद्धांत के अनुसार काम किया गया है।

बहुत से ऐसे राष्ट्र भी हैं जिनमें निर्णायक विभाग अत्याचार का साधन है। भारतवर्ष में कलक्टर ही एक ओर से लोगों को अपराधी सिद्ध करता है और दूसरी ओर से उनके अपराधों का निर्णय करता है।

नियामक तथा शासक विभाग के साथ निर्णायक विभाग का संबंध विचारणीय है। यह प्रश्न आम तौर पर उठता है कि क्या निर्णायक विभाग नियामक तथा शासक विभाग को कर्तव्य-पथ पर चलने के लिये बाध्य कर सकता है? यदि दोनों विभाग राज्यनियम के प्रतिकूल काम करें तो क्या निर्णायक विभाग उनको उचित मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित कर सकता है? अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरिकन प्रधानतंत्र राज्यों में शासकों पर न्यायालय में मुकदमा चल सकता है। इसके विपरीत युरोप में शासक समिति का ही प्रचार है। शासकों का निर्णय शासक-समिति में ही होता है। साधारण न्यायालयों के क्षेत्र से वे बाहर हैं।

न्यायालयों का शासक तथा नियामक विभाग के साथ संबंध

राज्य के तीनों विभागों का उत्तरदायित्व तथा कार्य्यक्रम निर्वाचकों के साथ संबद्ध है। निर्वाचक-मंडल से तात्पर्य्य उन लोगों से है जो नियामक विभागों के लिये प्रतिनिधि चुनते हैं। ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरिका की शासनपद्धति का आधार निर्वाचकों पर है।

निर्वाचन

आजकल निर्वाचन का अधिकार प्रत्येक नागरिक को देने के लिये यत्न हो रहा है। इँगलैंड, अमेरिका, जर्मनी प्रभृति कई सभ्य देशों में स्त्रियों को भी निर्वाचन का अधिकार प्राप्त हो गया है। फ्रांस में भी सन् १९१९ में स्त्रियों को यह अधिकार देने का आंदोलन चला था, किंतु वह सफल नहीं हुआ। इँगलैंड में सन् १९१८ से स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त है, परंतु बहुत ही कम मात्रा में। यहाँ निर्वाचन की अधिकारिणी होने के लिये स्त्री की उम्र कम से कम ३० वर्ष होनी चाहिए और उसके पास कुछ खास जायदाद भी होना आवश्यक है।

नियामक विभाग

शासक, नियामक तथा निर्णायक विभागों में शासक विभाग का कर्म के साथ, निर्णायक विभाग का नियमज्ञान के साथ और नियामक विभाग का विवेक के साथ घनिष्ठ संबंध है। विवेक संबंधी कामों में जितने अधिक मनुष्य हों, उतना ही अच्छा है। परंतु इसका यह मतलब नहीं है कि अधिकता की कोई

नियमनिर्माण का कार्यक्रम

सीमा ही न हो। किसी काम में अपेक्षा से अधिक मनुष्यों के हो जाने पर वह काम बिगड़ जाता है। यह बात कई बार अनुभव की जा चुकी है। १७८९ की फरांसीसी नियामक सभा के १२०० सभ्य थे। अधिक संख्या होने के कारण काम उचित ढंग पर न चला। भिन्न भिन्न राष्ट्रों की नियामक सभा के सभ्यों की संख्या निम्नलिखित प्रकार थी—

अमेरिकन प्रतिनिधि सभा		...	...	४३५ सभ्य	
आंग्ल	,, ,,	...	...	६७०	,,
फरांसीसी	,, ,,	...	...	५९७	,,
जर्मन	,, ,,	...		३९७	,,
इटैलियन	,, ,,	...	...	५०८	,,
स्पेनिश	,, ,,	...	...	४०६	,,

उपरिलिखित अधिक संख्या के द्वारा राज्यनियमों का बनाना बहुत ही कठिन है। गवर्नर मारिस ने पैरिस की १७८९ की प्रतिनिधि सभा के विषय में लिखा था—"सभ्य लोग संख्या में अधिक होने के कारण कुछ भी वाद विवाद नहीं करते। उनका आधा समय तो शोर गुल में ही खर्च हो जाता है"। इससे बचने के लिये सभी सभ्य राष्ट्रों में भिन्न भिन्न विधियों के द्वारा नियम-निर्माण का काम किया जाता है।

नियामक सभा में संख्या के अधिक होने से नियम-निर्माण में बहुत सी भूलें हो सकती हैं। उन भूलों से बचने के

लिये बहुत से राष्ट्रों ने राज्यनियम संबंधी प्रस्तावों का तीन बार पास किया जाना आवश्यक रखा है। इससे वक्ता के जोशीले व्याख्यान के वश में होकर जनता राज्यनियम पास करने से रुक जाती है।

प्रस्ताव को तीन बार उपस्थित करने की विधि

इँगलैंड की प्रतिनिधि सभा में जो सभ्य राज्यनियम संबंधी किसी प्रस्ताव को पेश करना चाहता है, वह सबसे पहले अपने उद्देश्य की सूचना देता है। जब सभा के सभ्य उसके उद्देश्य से सहमत होकर अपनी अनुमति देते हैं, तब वह अपना प्रस्ताव पेश करता है। प्रस्ताव पेश होने के बाद वह छाप दिया जाता है और उसके दूसरी बार पेश होने की तिथि नियत की जाती है। सभा से अनुमति लेकर प्रवक्ता अर्थात् प्रतिनिधि सभा का प्रधान उस प्रस्ताव को दूसरी बार पेश करने के लिये सभ्य को अनुमति देता है। इसके बाद प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा की समिति में विवाद तथा संशोधन के लिये उपस्थित किया जाता है। जब वहाँ से वह पास हो जाता है, तब प्रतिनिधि सभा में तीसरी बार पास किया जाता है। इसके बाद स्वीकृति के लिये लार्ड सभा में उपस्थित किया जाता है।

प्रस्ताव के तीन बार पेश करने के स्थान पर कई राष्ट्रों में उपसमितियों के द्वारा काम लिया जाता है। अमेरिका की प्रतिनिधि सभा में साधारणतया दो बार प्रस्ताव पेश कर दिया जाता है। तीसरी

उपसमिति विधि

बार वह प्रतिनिधि सभा की स्थायी समिति में उपस्थित किया

जाता है। स्थायी समिति के सभ्यों का निर्वाचन प्रतिनिधि सभा का प्रधान ही करता है। बासठवीं कांग्रेस के समय में अमेरिकन प्रतिनिधि सभा की साठ से ऊपर उपसमितियाँ थीं। इनमें से मुद्रा समिति, बंक समिति, व्यापार समिति, अधिकार समिति, व्यवसाय समिति, पेंशन समिति, उपाय समिति आदि समितियाँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण थीं।

फ्रांस की प्रतिनिधि सभा नियमनिर्माण के कार्य्य को सुगमता से चलाने के लिये अपने आपको लाटरी के द्वारा ग्यारह भागों में विभक्त करती है। इन्हीं समितियों में से कुछ व्यक्तियों को चुनकर भिन्न भिन्न प्रस्तावों के लिये एक उप-समिति बना ली जाती है। यह विधि बहुत ही दोष-पूर्ण है; क्योंकि बहुधा प्रस्ताव के संशोधन तथा विचार के लिये विरोधी लोग उपसमिति में आ जाते हैं।

नियामक शक्ति को अत्यंत सावधानी तथा विवेक के साथ काम में लाने के लिये एक उपाय में सभी सभ्य जातियों ने

सभाद्वय विधि

अनुपम समानता प्रकट की है। यह उपाय नियामक शक्ति को दो सभाओं में विभक्त करना है। राजनीतिक भाषा में यह उपाय 'सभाद्वय' विधि या शैली के नाम से लिखा जाता है। यूनान आदि कुछ छोटे छोटे राष्ट्रों को छोड़कर सर्वत्र ही 'सभाद्वय' विधि का प्रचार है। अमेरिका, इँगलैंड तथा अँगरेजी उप-निवेशों में किस प्रकार से नियामक सभाएँ विद्यमान हैं, यह किसी

से छिपा नहीं है। सब से विचित्र बात तो यह है कि अफ्रिका में नीग्रो लोगों का हेटी (Haiti) नामक राष्ट्र भी इसी विधि से काम कर रहा है।

नियामक शक्ति को दो सभाओं में विभक्त करने का एक लाभ तो यह है कि नियम-निर्माण में शीघ्रता नहीं होने पाती। दूसरा लाभ यह भी कहा जा सकता है कि प्रस्तावों को विचारने के लिये पर्याप्त समय मिल जाता है। संसार की सभी राष्ट्र-सभाओं या लार्डसभाओं में प्राय: संकुचित विचार के व्यक्ति हो सभ्य होते हैं। इसका शायद यह कारण है कि द्वितीय सभा में प्राय: धनाढ्य भूमिपति तथा अनुभवी जन ही सभ्य होते हैं जो बहुत सुधारों को पसंद नहीं करते।

एक सभा के द्वारा नियम निर्माण करना बहुत ही बुरा है। महाशय लैकी (W. E. H. Lecky) का मत है कि मनुष्य-समाज में प्रचलित राज्यशैलियों में सबसे बुरी शैली एक सभा द्वारा नियम बनाने की है। निस्संदेह इसमें कुछ अत्युक्ति है। वास्तविक बात तो यह है कि एक सभा के द्वारा नियम बनाने में जल्द-बाजी हो जाती है और विवेक तथा दूरदर्शिता से बहुत ही कम काम लिया जाता है। व्याख्याताओं को स्वेच्छाचार का मौका मिल जाता है। इँगलैंड की लार्ड सभा कुलीनों की एक संस्था है। इससे घृणा करते हुए फरांसीसी राज्यक्रांति-कारियों ने १७९१ में एक सभा के द्वारा ही राज्य-नियम बनाना

एकसभाविधि के दोष

सोचा। यही भूल १८४८ की द्वितीय फरांसीसी रिपब्लिक में की गई। १८४८ की जर्मन पार्लिमेंट भी एक सभा द्वारा ही राज्यकार्य चलाना चाहती थी। अमेरिका में शुरू शुरू में एक सभा का राज्यकार्य के लिये अवलंबन किया गया। परंतु कोई राष्ट्र एक सभा के द्वारा नियम-निर्माण में समर्थ न हुआ। यही कारण है कि आजकल लगभग सभी बड़े राष्ट्रों में नियमनिर्माण का काम दो सभाओं के द्वारा ही होता है।

प्राय: प्रथम सभा का निर्माण वंशागत, नियुक्ति, निर्वाचन आदि सिद्धांतों पर किया जाता है। इँगलैंड तथा जापान में

प्रथम सभा का संघटन

प्रथम सभा के सभ्य प्राय: वंशागत ही होते हैं और कभी कभी उनमें कुछ नए व्यक्ति भी नियुक्त किए जाते हैं। १७९१ में थोपासपेन ने लिखा था—"यदि कोई मनुष्य वंश के कारण गणितज्ञ, न्यायाधीश, बुद्धिमान् तथा कवि नहीं हो सकता, तो वंश के कारण वह संपूर्ण जनता के लिये राज्य-नियम बनानेवाला ही क्यों हो?" कुछ भी हो, अभी तक वंशागत का तत्त्व सभी प्राचीन राष्ट्रों में विद्यमान है। इँगलैंड, स्पेन और जापान में लार्डसभा का आधार बहुत अंशों में वंश पर ही है। महा-युद्ध से पूर्व यही बात प्रशिया, आस्ट्रिया तथा हंग्री में भी थी।

बहुत से राष्ट्रों में वंशागत का तत्त्व हटा दिया गया है। फ्रांस, स्विट्ज़लैंड, इटली, नीदर्लैंड, डेनमार्क, बेल्जियम, नार्वे तथा स्वीडन आदि राष्ट्रों में प्रथम सभा का कोई

सभ्य वंशागत नहीं है। इटली में केवल राजवंश का एक आदमी प्रथम सभा में रहता है।

सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि निर्वाचन से भी योग्य मनुष्य नियामक सभाओं में नहीं पहुँचते हैं। प्रायः जनता के प्रिय लोग निर्वाचित होकर प्रथम सभा में पहुँचते हैं, चाहे वे योग्य हों और चाहे न हों। इटली ने इस मामले में कुछ सुधार किया है। वहाँ यह नियम है कि वे ही मनुष्य प्रथम सभा के लिये निर्वाचित हो सकते हैं जो उच्च पद पर रह चुके हों या किसी विषय में विशेष रूप से प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हों। यह सब होते हुए भी इटली की सीनेट् की शक्ति बहुत कम है; क्योंकि अनुभव से यही मालूम हुआ है कि बुद्धिमान् तथा विद्वान् लोग कार्यपटु नहीं होते।

राष्ट्रसंघवाले राष्ट्रों में प्रायः प्रथम सभा का निर्माण राष्ट्रीय प्रतिनिधियों के द्वारा ही किया जाता है। अमेरिका, मैक्सिको, क्यूबा, फ्रांस, बेल्जियम तथा आस्ट्रेलिया में यही बात है। अमेरिका में द्वितीय सभा जनता की प्रतिनिधि और प्रथम सभा राष्ट्र की प्रतिनिधि है। प्रत्येक राष्ट्र को राष्ट्रसभा में दो दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। क्यूबा में प्रत्येक राष्ट्र चार चार सभ्यों को राष्ट्रसभा में भेजता है। ब्रेजिल में राष्ट्रसभा के लिये तीन तीन प्रतिनिधि निर्वाचित करते हैं। युद्ध से पूर्व जर्मनी में बंदेराथ में भिन्न भिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि आते थे। प्रशिया को अन्य सब राष्ट्रों से अधिक सभ्य राष्ट्रसभा में

भेजने का अधिकार था। प्रशिया के १७ सभ्य राष्ट्रसभा में थे जब कि और राष्ट्रों के सभ्य एक से तीन चार तक थे।

प्रथम सभा में सभ्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष विधि से किया जाता है। फ्रांस में प्रतिनिधि सभा के सभ्यों का निर्वाचन जनता की ओर से होता है। प्रथम सभा के सभ्यों के निर्वाचन के लिये फ्रांस में निर्वाचक मंडल बनाया गया है जिसका संघटन भिन्न भिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। अमेरिका में सीनेट् या प्रथम सभा के सभ्य राष्ट्रीय नियामक सभाओं की ओर से निर्वाचित होते हैं और द्वितीय सभा के सभ्य जनता की ओर से चुने जाते हैं। अमेरिका में प्रथम सभा के सभ्य का समय छः साल है और प्रतिनिधि सभा के सभ्य का समय केवल दो साल है। फ्रांस में प्रथम सभा के सभ्य का समय ९ साल और द्वितीय सभा के सभ्य का समय ४ साल है। अमेरिका में प्रथम सभा के एक तिहाई सभ्य हर दो साल पीछे नए सिरे से चुने जाते हैं। फ्रांस तथा नीदरलैंड में प्रथम सभा के एक तिहाई सभ्य हर तीसरे साल नए सिरे से चुने जाते हैं। भिन्न भिन्न काल के बाद प्रथम सभा के कुछ सभ्यों का नए सिरे से निर्वाचन होने से फिर नियम-निर्माण का कार्य्य उत्तम विधि से होता है और उसमें स्वेच्छाचार का अंश किसी हद तक कम हो जाता है।

द्वितीय सभा का संघटन

---

*

दूसरा परिच्छेद

फ्रांस

फ्रांस में प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की उत्पत्ति

१८७० में फ्रांस और जर्मनी में परस्पर घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में फ्रांस बहुत ही बुरी तरह पराजित हुआ। नेपोलियन तृतीय अपनी संपूर्ण सेना के साथ जर्मनी के हाथ में कैद हो गया। ज्योंही इस हृदयविदारक घटना का समाचार फ्रांस पहुँचा, त्योंही वहाँ बड़ा विक्षोभ उत्पन्न हुआ। संपूर्ण जनता ने उसी समय सोच लिया कि आगे से अब एक राजा देश में शक्तियुक्त राज्य नहीं रख सकता। देश का शासन प्रतिनिधि-परिमित सत्तात्मक राज्यप्रणाली द्वारा ही होना उचित है। फ्रांस में इस शासन-पद्धति का अवलंबन विपत्काल में हुआ। यही कारण है कि बहुत से लिखित नियम वहाँ शासन-पद्धति में वर्तमान नहीं हैं। जब तक यह युद्ध चलता रहा, तब तक तो साम्राज्य का शासन जाति-संरक्षण सभा ही करती रही। परंतु ज्योंही युद्ध समाप्त हुआ, त्योंही सारे राज्य के प्रतिनिधियों को बुलाकर एक नई जातीय सभा का निर्माण हुआ जिसके हाथ में संपूर्ण साम्राज्य की बागडोर दे दी गई।

यहाँ पर यह नहीं भूलना चाहिए कि ऊपर लिखे सभी कार्य शीघ्रता में किए गए थे। इस दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, यदि जातीय सभा के अधिकारों का समुचित लेखा विद्यमान न हो। १८७१ में प्रसिद्ध लूइस फिलिप के मंत्री दीपर्स नामक महाशय इस सभा के सबसे पहले प्रधान चुने गए। कितने वर्ष तक उनकी प्रधानता रहे, यह निश्चित नहीं किया गया। दीपर्स ने संपूर्ण शासन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। साथ ही उसने यह भी प्रण किया कि मैं समय समय पर अपने कार्यों की सूचना जातीय सभा के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित करता रहूँगा। दो वर्ष तक वह कार्य चलाता रहा; पर जातीय सभा में परस्पर इतने विभिन्न दल थे कि कुछ विरोधी सम्मतियों के कारण दीपर्स ने कार्य छोड़ दिया। मार्शल मैकमाहन प्रधान चुना गया यह व्यक्ति जातीय सभा का सभ्य न था, अतः इसका मंत्रि-मंडल भी जातीय सभा के प्रत्येक कार्य का उत्तरदाता नहीं हुआ। इस समय तक फ्रांस का शासन चलता रहा; परंतु उस शासन को एक विशेष प्रकार का रूप देने के लिये उस समय कोई विशेष नियम नहीं बनाए गए थे। सबसे विचित्र बात यह थी कि जातीय सभा में राजा के पक्षपातियों की अधिकता थी जो एकराज्यात्मक राज्य के ही पक्षपाती थे। वे स्वयं भी ऐसे दो दलों में विभक्त थे जिनका मिलना असंभव था। एक दल काम्ट डि चैंबोर्ड का पक्षपाती था, दूसरा

काम्ट डि पैरिस का था। काम्ट डि चैंबोर्ड से उसके पक्षपातियों ने कुछ शर्तों का स्वीकृत करने की प्रार्थना की, परंतु उसने न माना। परिणाम यह हुआ कि वह फ्रांस का राजा न बन सका। साथ ही इस घटना से राजपक्षपातियों को यह पता लग गया कि इस अवसर पर फ्रांस में राजा का राज्य पुनः ले आना कठिन है। इसलिये वे लोग प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य के पक्षपातियों से मिलकर किसी एक शासन-प्रणाली के निर्माण में प्रवृत्त हुए। फ्रांस की शासनप्रणाली प्राचीन तथा नवीन विचारों का मेल कही जा सकती है। नवीन विचारों के अनुसार फरांसीसी शासनप्रणाली का नाम प्रतिनिधि सत्तात्मक है तथा उसके मुख्य शासक का चुनाव होता है; और प्राचीन विचारों के अनुसार सभा के प्रधान या मुख्य शासक का राज्यकार्य में जातीय सभा के सम्मुख अनुत्तरदायित्व है। नवीन तथा प्राचीन विचारों के अनुसार किसी एक प्रतिनिधि सत्तात्मक शासनप्रणाली का निर्माण कठिन है, जब कि देश में ऐसे प्रतिनिधियों की संख्या अधिक हो जो इस शासनप्रणाली के विरोधी हों और जो इसके निर्माण में इसलिये प्रवृत्त हों कि देश की दशा ऐसी नहीं है जिससे उनके वास्तविक विचार कार्य में परिणत हो सकते हों, साथ ही जो ऐसे समय की प्रतीक्षा में हों जब कि वे प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्यप्रणाली हटाकर देश में राजात्मक राज्य स्थापित करें। इस दशा में फ्रांस में प्रतिनिधिसत्तात्मक शासनप्रणाली के नियमों का

निर्माण न होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शासनप्रणाली संबंधी अभी तक तीन ही नियम क्यों पास हुए हैं जो स्वयं ही संक्षिप्त हैं। सारांश यह कि १८७५ की २४ या २५ फरवरी तथा १६ जुलाई के राजनियमों द्वारा प्रधान प्रतिनिधि द्वारा अंतरंग सभा तथा मंत्रिसभा का निर्माण निश्चित हो गया तथा उनका आपस में कितना संबंध है, शासन तथा नियम-निर्माण में एक दूसरे की कितनी शक्ति है, शासन में किस सभा का उत्तर-दायित्व जातीय सभा के सम्मुख है, इत्यादि इत्यादि बातों का निर्णय संक्षेप से कर दिया गया। समय समय पर १८७५ की नियम-धाराओं में परिवर्तन भी किया गया है; और यह परिवर्तन तभी होता है जब प्रतिनिधि सभा तथा अंतरंग सभा एक जातीय सभा के रूप में परस्पर मिलकर बैठती हैं।

१८८१ की २१ जून को जातीय सभा में वार्सेल्स से फ्रांस की राजधानी हटाकर पैरिस में लाई गई। १८८४ की १४ अगस्त को अंतरंग सभा के सभ्यों के चुनाव की विधियों का संशोधन किया गया। साथ ही फ्रांस की प्रति-निधिसत्तात्मक राज्यप्रणाली को सुरक्षित करने के लिये यह नियम पास किया गया कि भविष्यत् में फ्रांस की शासन-प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा। यह भी इस-लिये पास किया गया कि इस बात का फरांसीसी साम्राज्य की जनता को भय था कि शासनप्रणाली में सुधार करते करते

कहीं उसे ऐसा रूप न मिल जाय जिससे वहाँ पुनः एक राजा का राज्य स्थापित हो जाय। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि यद्यपि शासनप्रणाली के सुधार का अधिकार अंतरंग सभा तथा प्रतिनिधि सभा से पृथक् पृथक् छीन लिया गया, परंतु वे ही जातीय सभा के रूप में बैठकर शासनप्रणाली में जो चाहें, वह सुधार कर सकती हैं। सारांश यह कि जाति यदि शासनप्रणाली को भी बदलने पर उतारू हो जाय तो उसे रोकनेवाला कौन हो सकता है? फिर यदि दोनों सभाएँ ही पृथक् पृथक् रूप से नियमों में ऐसे परिवर्तन कर दें जिनका प्रभाव शासनप्रणाली पर पड़ता हो, तो उन्हें इस कार्य से कौन रोक सकता है? फरांसीसी न्याय-सभा का इस कार्य में हाथ नहीं है कि वह शासनप्रणाली संबंधी नियमों को उचित या अनुचित ठहरावे तथा उन्हें देश में प्रचलित होने दे या न होने दे। कुछ भी हो, यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि देश की शासनप्रणाली की स्थिरता या अस्थिरता में जातीय आचार का बड़ा अंश होता है। दोनों ही फरांसीसी राष्ट्रसभाएँ फरांसीसी जनता से बहुत भय करती हैं, अतः वे राज्यप्रणाली में कोई बड़ा परिवर्तन करने में अशक्त हैं। फ्रांस की अंतरंग सभा में लोग संकुचित विचार के हैं, उन्हें अधिक परिवर्तन पसंद नहीं है। अतः वे प्रतिनिधि सभा के साथ मिलकर जाति सभा के रूप में बैठना ही नहीं चाहते। इस प्रकार फ्रांस में मुख्य

न्यायसभा का कार्य और अंतरंग सभा के सभ्यों का संकुचित विचार परिवर्तन में बाधक होता है तथा दोनों ही सभाओं को जनता का भय बना रहता है। अतः वहाँ शासनप्रणाली में कोई बड़ा परिवर्तन होना सहज नहीं है।

फ्रांस की शासन-प्रणाली के पाँच अंग हैं—

(१) प्रतिनिधि सभा। (३) जातीय सभा।
(२) अंतरंग सभा। (४) प्रधान।
(५) मंत्रि-सभा।

अब हम आगे चलकर एक एक पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

प्रतिनिधि-सभा
The Chamber of Deputies.

फरांसीसी प्रतिनिधि सभा के सभ्यों का चुनाव संपूर्ण फरांसीसी साम्राज्य से किया जाता है। २१ वर्ष से अधिक अवस्थावाले प्रत्येक पुरुष को चुनने का अधिकार है। परंतु चुने जाने के लिये २५ वर्ष की अवस्था का होना अत्यंत आवश्यक है। फ्रांस में अभी तक स्त्रियों को मत देने का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ है। सन् १९१९ में इसके लिये कुछ आंदोलन भी हुआ था और प्रतिनिधि सभा ने यह प्रस्ताव पास भी कर दिया था कि स्त्रियों को भी मत देने का अधिकार प्राप्त हो, परंतु अंतरंग सभा ने इसे स्वीकृत नहीं किया। फल यह हुआ कि जहाँ आजकल इँगलैंड, अमेरिका, जर्मनी इत्यादि सभ्य देशों में स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त है, वहाँ फ्रांस

की स्त्रियाँ अभी तक उससे वंचित ही हैं। फ्रांस में राज्यापराधियों, दिवालियों, नौ-सेना तथा स्थल-सेना के कर्मचारियों, फ्रांस के प्राचीन राजवंश के व्यक्तियों, राज्य से वृत्ति लेनेवाले कुछ पदाधिकारियों (मंत्री तथा उपमंत्री को छोड़कर) का प्रतिनिधि सभा का सभ्य चुना जाना प्रतिषिद्ध है। यदि कोई राज्यकर्मचारी अपने आपको सभ्य चुनवाकर प्रतिनिधि सभा में आवेगा, तो वह पदच्युत कर दिया जायगा। प्रतिनिधि सभा के सभ्यों का चुनाव पंचवर्षीय होता है। इनकी संख्या वर्तमान काल में ५८४ है। इनमें से १० सभ्य उपनिवेशों के तथा ६ सभ्य अल्जीयर्स के होते हैं। शेष सबके सब सभ्य फ्रांस के ही होते हैं। फ्रांस में प्रतिनिधि सभा में प्रायः बहुत ही अशांति हो जाती है। प्रधान के लिये भी इस अशांति को दूर करना कोई सहज काम नहीं है। इस अशांति का कारण यह है कि जहाँ कई सभ्य अपेक्षा से अधिक समय तक बोलते रहते हैं, वहाँ अन्य सभ्य लोग आपस में भी इतनी बातें करने लगते हैं जो एक कोलाहल का रूप धारण कर लेती हैं। यद्यपि प्रधान नियम-भंग करने के कारण सभ्य को दंड दे सकता है, तथापि वह इस कार्य में इस साधन का प्रयोग प्रायः नहीं करता। यहाँ पर यह लिखना आवश्यक प्रतीत होता है कि शांति करने के लिये प्रधान जब सब साधनों को आजमा चुकता है, तब वह टोपी अपने सिर पर रखकर बैठ जाता है। इस पर भी जब

कोलाहल बंद न हो, तो वह एक घंटे के लिये अधिवेशन बंद कर देता है।

इस सभा के सभ्यों की संख्या ३१४ है। इनकी अवधि ९ साल की है। पहले यह नियम था कि केवल २२५ सभ्य ही ९ साल के लिये चुने जाते थे और ७५ जन्म भर के लिये। किंतु बाद में जन्म भर के लिये किसी को सभ्य बनाना लोगों को पसंद नहीं हुआ; और जैसे जैसे ये जन्म भर के सभ्य खतम होते चले, इनके बदले ९ साल की अवधि के ही सभ्य चुने जाने लगे। आजकल फ्रांस की अंतरंग सभा में जन्म भर के लिये सभ्य रहनेवाला कोई व्यक्ति नहीं है। अंतरंग सभा के सभ्यों का चुनाव राजकीय विभागों द्वारा होता है। फ्रांस में व्यक्तियों के संख्यानुसार ऐसे संघ बनाए गए हैं जिनको इस चुनाव में बड़ा भारी भाग दिया गया है। वे स्वयं अपने अपने सभ्य पृथक् पृथक् चुनकर भेजते हैं। अंतरंग सभा के सभ्य के लिये चालीस वर्ष से अधिक का वृद्ध होना आवश्यक है। आय-व्यय का बजट प्रतिनिधि सभा में तैयार होता है; पर अंतरंग सभा में उसका स्वीकृत होना आवश्यक है। अंतरंग सभा बजट में कर आदि कम कर सकती है, परंतु अब चाल ऐसी पड़ गई है कि बढ़ा नहीं सकती।

अंतरंग सभा
Senate.

अंतरंग सभा की स्वीकृति से प्रधान प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर नए सिरे से चुनाव के लिये प्रेरित कर सकता है।

यही अंतरंग सभा कभी कभी न्यायसभा का रूप धारण कर लेती है जब कि प्रधान मंत्रीविभाग की सम्मति से तथा जाति की रक्षा के लिये किसी व्यक्ति पर अभियोग चलाने के लिये ऐसा करना उचित समझे। यहाँ पर यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिए कि अंतरंग सभा का मंत्रिसभा पर कोई विशेष अधिकार नहीं है। अंतरंग सभा की सामर्थ्य में यह नहीं है कि वह मंत्रिसभा को अपनी सम्मति के न मानने पर च्युत कर सके। इसका परिणाम यह हुआ है कि देश की राजनीति की बागडोर मंत्रिसभा के हस्तगत हो गई है और अंतरंग सभा को उस राजनीति के अदलने बदलने का अधिकार नहीं है।

फ्रांस की अंतरंग सभा की शक्ति इँगलैंड की लार्ड सभा की शक्ति से कुछ ही अधिक समझनी चाहिए। एक समय ऐसा भी था जब कि फरांसीसी जनता इसको घृणा की दृष्टि से देखती थी। यह हम पहले लिख चुके हैं कि अंतरंग सभा का निर्माण जातीय सभा द्वारा हुआ था, जिसमें राजात्मक राज्य के पक्षपातियों की संख्या अधिक थी। कुछ भी हो, महाशय वालंगर के ऊपर अभियोग चलाने से अब फरांसीसी जनता में इसका मान बहुत कुछ बढ़ गया है और वह इसे अब प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य का पक्षपाती समझने भी लग गई है। इतना होने पर भी अब भी फ्रांस में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो इसके मूलोच्छेदन को

ही पसंद करते हैं। परंतु उनका यह प्रयत्न ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि देश के योग्य व्यक्ति ही उसमें चुनकर भेजे जाते हैं तथा उसके सभ्य हैं। साथ ही अब यह प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की विरोधिनी सभा नहीं है और धन संबंधी विषयों तथा अन्य बड़े बड़े विषयों में यह प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा हीन ही हो गई है। इस समय इसका सर्वथा शक्तिहीन हो जाना कुछ संभव प्रतीत नहीं होता। सत्य तो यह है कि इसके भाग्य का अभी से निर्णय करना कुछ कठिन ही है।

जातीय सभा
The National Assembly.

जब प्रतिनिधि सभा तथा अंतरंग सभा इकट्ठी बैठें तो उसको जातीय सभा के नाम से पुकारा जाता है। इसके अधिकार भी उन दोनों की अपेक्षा भिन्न हैं। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि यह एकमात्र जातीय सभा के ही हाथ में है कि वह शासनप्रणाली में जो परिवर्तन चाहे, करे। जाति के प्रबंध के लिये ७ वर्ष के लिये प्रधान को भी यही चुनती है। यहाँ पर यह भी न भूलना चाहिए कि फ्रांस में पहला प्रधान दूसरी बार पुनः चुना जा सकता है, पर प्राचीन राजवंश के किसी व्यक्ति को यह पद नहीं दिया जा सकता। यह नियम भी इसलिये रखा गया है कि कहीं कोई राजवंश का व्यक्ति प्रधान का पद ग्रहण करके तथा इस पद का दुरुपयोग करके पुनः एक राजा का राज्य लाने का यत्न न कर सके।

फरांसीसी साम्राज्य में प्रधान के भिन्न भिन्न अनेक कर्त्तव्य हैं। साम्राज्य में प्रधान ही मुख्य शासक और साम्राज्य में नियमों का परिचालक समझा जाता है। साथ ही साम्राज्य का निरीक्षक तथा भिन्न भिन्न पदों पर योग्य व्यक्तियों का नियतकर्ता भी यही होता है। अंतरंग सभा की अनुमति लेकर यह प्रतिनिधि सभा को भंग भी कर सकता है और उसे फिर नए सिरे से चुनवा भी सकता है। प्रधान मैक्‌-माहन ने एक बार इस कार्य का यत्न किया था, परंतु विफल हुआ। मैक्‌माहन के अनंतर किसी फ्रेंच प्रधान ने यह कार्य नहीं किया और न इस कार्य के लिये यत्न ही किया। व्यापार तथा शांति संबंधी संधि और युद्ध की घोषणा प्रधान नहीं कर सकता, जब तक कि वह दोनों सभाओं की स्वीकृति न ले ले। अमेरिका के प्रधान की तरह फ्रांस का प्रधान भी बहुत प्रकार के नियमों से जकड़ा हुआ है। अपनी इच्छाओं के पूर्ण करने में दोनों ही प्रधान स्वतंत्र नहीं हैं। प्रत्येक प्रकार की आज्ञा को साम्राज्य में प्रचलित करने के लिये फ्रांस के प्रधान को आज्ञा-पत्र पर भिन्न भिन्न विभागों के किसी न किसी मंत्री के हस्ताक्षर कराने पड़ते हैं। इस प्रकार इँगलैंड के राजा की तरह वह साम्राज्य के किसी बुरे या भले कार्य का एकमात्र उत्तरदाता नहीं है। प्रतिनिधि सभा के सम्मुख राजकीय

प्रधान
President.

नियमों तथा कार्यों का उत्तरदाता मंत्रिविभाग ही है। मंत्रिसभा की प्रत्येक बैठक में प्रधान नहीं जाता। कभी कोई आवश्यक प्रश्न मंत्रिसभा के सम्मुख हो तो वह उस सभा में जाकर प्रधान का पद ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार शासनप्रणाली तथा नीति के अदलने बदलने में फ्रेंच प्रधान का बहुत बड़ा हाथ नहीं है। यद्यपि मंत्रियों का चुनाव एकमात्र प्रधान के ही हाथ में है, परंतु प्रधान प्रायः प्रतिनिधि सभा के विजयी दल के किसी एक मुख्य व्यक्ति को ही यह कार्य सौंप देता है। वह जिन जिन व्यक्तियों को निर्देश करता है, वे ही मंत्री के तौर पर चुन लिए जाते हैं। मंत्रिविभाग के चुनाव में प्रधान को क्या क्या कष्ट उठाना पड़ता है, यह हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ पर इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि प्रायः प्रधान को कठिनता इसी बात में पड़ती है कि मंत्रिविभाग के चुनाव सरीखे महान् कार्य को वह किस व्यक्ति के हाथ में दे। फ्रांस के प्रधान की शान ही शान है। अधिकार तो उसके बहुत ही परिमित हैं। सर हेनरी मैन ने फ्रांस के प्रधान के विषय में बहुत ही ठीक कहा है—"फ्रांस के प्राचीन राजा तो देश पर जहाँ शासन करते थे, वहाँ देश पर राज्य भी वे ही करते थे। इँगलैंड के राजा अँगरेजी साम्राज्य पर राज्य तो करते हैं, परंतु साम्राज्य का शासन उनके हाथ में नहीं है। वह अँगरेजी प्रजा के ही हाथ में है। अमेरिका का प्रधान अमेरिका पर शासन

करता हुआ कहा जा सकता है, परंतु साथ ही राज्य करता हुआ भी कहा जा सकता है। सारे संसार में केवल फ्रांस का ही प्रधान ऐसा है जिसको न शासन करता हुआ और न राज्य करता हुआ कह सकते हैं।"

फ्रांस की शासनपद्धति में मंत्रिसभा ही बहुत कुछ शक्तिशालिनी कही जा सकती है। मंत्रिसभा ही साम्राज्य के शासन संबंधी भिन्न भिन्न विभागों का प्रबंध करती है तथा दोनों जातीय सभाओं के सामने अपनी नीति तथा अपने कार्यों को इसे उचित भी ठहराना पड़ता है।

मंत्रि-सभा
Ministry.

कई देशों में मंत्रियों को नियत ही इसलिये किया जाता है कि वे शासन का तो विशेष तौर पर कार्य न करें, परंतु प्रतिनिधि सभा या लोक सभा में विरोधी दल के आक्षेपों का उत्तर दिया करें। यद्यपि फ्रांस में इस प्रकार के कार्य से मंत्रियों को रोकनेवाला कोई नियम नहीं है, तथापि वहाँ इस प्रकार की अवस्था विद्यमान नहीं है। फ्रांस में मंत्री अपने अपने विभाग के मुख्य शासक का काम करते हैं। विभागों तथा मंत्रियों की संख्या राजनियम द्वारा निश्चित नहीं है। यही कारण है कि वहाँ मंत्रियों की संख्या समय समय पर कार्य के अनुसार बदलती रहती है। आजकल फ्रांस में १४ विभाग हैं तथा उनके १४ ही मंत्री हैं जो इस प्रकार हैं—

Department of	विभाग	मंत्री
(१) The Interior	१. अंतरीय	१. अंतरीय सचिव
(२) Justice	२. न्याय विभाग	२. न्याय सचिव
(३) Finance	३. आयव्यय विभाग	३. आयव्यय सचिव
(४) War	४. युद्ध विभाग	४. युद्ध सचिव
(५) Marine	५. सामुद्रिकविभाग	५. समुद्र सचिव
(६) Education and the Fine Arts.	६. शिक्षा तथा कला-कौशल विभाग	६. शिक्षा तथा कला-कौशल सचिव
(७) Public Works and Post and Telegraph.	७. राष्ट्रीय कार्य और पोस्ट तथा तार विभाग	७. राष्ट्रीय कार्य और पोस्ट तथा तार सचिव
(८) Commerce and Industry.	८. व्यापार व्यवसाय विभाग	८. व्यापार व्यवसाय सचिव
(९) Colonies	९. उपनिवेश विभाग	९. उपनिवेश सचिव
(१०) Foreign affairs.	१०. परराष्ट्र विभाग	१०. परराष्ट्र सचिव
(११) Agriculture	११. कृषि विभाग	११. कृषि सचिव
(१२) Labour and Public health.	१२. मजदूर और स्वास्थ्य विभाग	१२. मजदूर तथा स्वास्थ्य सचिव
(१३) Pension	१३. पेंशन विभाग	१३. पेंशन सचिव
(१४) Liberated Region.	१४. स्वतंत्र प्रान्त विभाग	१४. स्वतंत्र प्रान्त सचिव

१८७५ की २५ फरवरी के नियम के अनुसार संपूर्ण मंत्रि-सभा राजनीति के लिये दोनों जातीय सभाओं की उत्तरदायिनी है, साथ ही प्रत्येक मंत्री अपने अपने कार्यों के लिये पृथक् पृथक् भी उत्तरदायी है। यह नियम इसलिये पास किया गया था कि इँगलैंड की तरह फ्रांस में भी बहुत कुछ लोकसभा की रीति प्रचलित हो जाय। जिस प्रकार इँगलैंड में मंत्रिसभा लोकसभा के आगे, उसी प्रकार आजकल फ्रांस की मंत्रिसभा प्रतिनिधि सभा के आगे उत्तरदायिनी है। प्रतिनिधि सभा किसी आवश्यक प्रश्न पर किसी मंत्री के प्रति विरुद्ध सम्मति दे दे तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता है। साथ ही यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि फ्रांस में मंत्रिसभा के सभ्यों को यह अधिकार है कि चाहे वे जातीय दोनों सभाओं के सभ्य हों या न हों, पर वे वहाँ जा सकते हैं और बोल सकते हैं।

फ्रांस में मंत्रिविभाग के हाथ में बहुत शक्ति दे दी गई है, यह वहाँ की अवस्था जानने से ही स्पष्ट हो सकता है। फ्रांस की प्रजा में पुनः क्रांति न हो जाय, इस बात का भय राज्य को बना रहता है। इसलिये वहाँ इस बात का यत्न किया गया है कि किसी प्रकार से राज्याधिकारी ही प्रजा के नेता का रूप धारण कर लें; और यह तब तक हो ही नहीं सकता था जब तक कि राज्य में कई व्यक्तियों के हाथ में पर्याप्त शक्ति न दे दी जाती। यही कारण है कि मंत्रियों के हाथ में पर्याप्त शक्ति है। एक कारण यह भी कहा जा सकता है कि राज्य

के कार्यों में प्रजा को हस्तक्षेप न करना चाहिए। स्माइल, एदम स्मिथ आदि अँगरेज संपत्तिशास्त्रज्ञों के सिद्धांत के विरुद्ध प्रायः समस्त देश कार्य करने लगे हैं। इस दशा में फ्रांस संसार से कैसे अलग रह सकता था !

फ्रांस में राज्य की शक्ति बहुत बढ़ी हुई कही जा सकती है। वहाँ प्रजा के प्रत्येक कार्य का निरीक्षक राज्य है। व्यापारियों तथा व्यवसायियों को अपने कार्य के लिये राज्य से प्रमाणपत्र लेना पड़ता है, परन्तु उन पर अधिकारी लोग शासन बहुत ही स्वतंत्रता से करते हैं। अब कुछ समय से वहाँ प्रेसों तथा सभाओं को स्वतंत्रता मिली है। परंतु उनका भी अभी तक राज्य-नियमों से पूरी तरह छुटकारा नहीं हुआ है। बैंक की कंपनियों को छोड़कर अन्य किसी को राज्याज्ञा के बिना २० मनुष्यों से अधिक मनुष्यों की सभा बनाने का अधिकार नहीं है। कुछ भी हो, इन सब घटनाओं से यह स्पष्ट है कि फ्रांस में मंत्रिविभाग की कितनी शक्ति है और वह है भी क्यों। अब हम फ्रांस के शासन में सम्मिलित होनेवाले भिन्न भिन्न दलों या पार्टियों का इतिहास लिखेंगे।

शासनप्रणाली के भिन्न भिन्न दल

फ्रांस में प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य का अवलंबन विपत्काल में हुआ है, यह हम पूर्व ही लिख चुके हैं। जब जर्मनी के साथ युद्ध में फ्रांस हार गया तथा उसका राजा तृतीय नेपोलियन जर्मनी के हाथ में कैद हो गया, उसी समय प्रतिनिधि-

सत्तात्मक राज्य का विचार फरांसीसी जनता के सम्मुख पुनः जाग्रत हो उठा। विपद्ग्रस्त साम्राज्य के प्रबंध के लिये जो जातीय सभा बनाई गई थी, उसमें राजात्मक राज्य चाहनेवालों की संख्या अधिक थी (इन्हें हम आगे से राजदल के नाम से ही कहेंगे); परंतु देश की अवस्था उस समय इस प्रकार की थी कि राजात्मक राज्य का लाना असंभव था। अतः राजदलवाले इस बात के लिये बाध्य थे कि वे फ्रांस के शासन के लिये प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्यप्रणाली का अवलंबन करते। जातीय सभा में फ्रांस के लिये प्रतिनिधि राज्य को ही सदा चाहनेवालों की संख्या भी पर्याप्त थी। परंतु वे राजदलवालों से संख्या में कम थे और स्वतः तीन दलों में विभक्त थे (इन्हें आगे 'प्रतिनिधि राजदल' का नाम दिया गया है)। स्वतंत्र विचार की सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। जिसको हम स्वतंत्र विचार या उदार विचार कह सकते हैं, संभव है कि औरों की सम्मति में वह भी संकुचित विचार हो। इस अवस्था में शासन-प्रणाली के भिन्न भिन्न दलों के सिद्धांतों का वर्णन करना अतीव कठिन है, क्योंकि एक तो सिद्धांतों में प्रतिदिन परिवर्तन होते रहते हैं और दूसरे भिन्न भिन्न दलवालों के सिद्धांतों का उल्लेख भी अतीव कठिन ही है। जो कुछ यहाँ किया जा सकता है, वह केवल यही है कि यहाँ पर अत्यंत उदार विचारवालों से लेकर अत्यंत संकुचित विचारवालों की क्रमशः श्रेणियाँ बना दें जिससे अगली सारी बातें समझने में सुगमता हो।

प्रतिनिधि-राज्य पक्षपाती	वामीय Left	१ सीमांत उदार— Socialists	समष्टिवादी...— Socialists	सीमांत वामीय Extreme Left
		२ अतिउदार...— Opportu-nists.	अवसरवादी...— Opportunists.........	अति वामीय
		३ उदार......— Radicals	रेडिकल्स...— Radicals	वामीय Left
		४ मध्यमउदार— Republicans of Government.	प्रतिनिधिराज्यवादी— Republicans of Government.	मध्य वामीय Left Centre.
राजात्मक राज्यपक्षपाती Monarchists & Bonapartists	दक्षिणीय Right	५ मध्यम संकुचित .		.........मध्यम दक्षिणीय
		६ संकुचित		राजा राज्यवादी...दक्षिणीय Right
		७ अति संकुचित...		.........अति दक्षिणीय
		८ सीमांत संकुचित...		......सीमांत दक्षिणीय Extreme Right *

---

* युरोपीय राजनीतिक दशा से अपरिचित जनों के लिये यह नितांत आवश्यक प्रतीत होता है कि दक्षिणीय तथा वामीय (Right and left) शब्दों की विस्तृत व्याख्या कर दी जाय। इँगलैंड में प्रतिनिधि सभा भवन में 'प्रवक्ता' (Speaker) के दक्षिण हाथ की ओर मंत्रिसभा बैठा करती है। उसके पक्षपाती उसके पीछे तथा उसके पार्श्व में बैठा करते हैं। विरोधी दल प्रवक्ता के वाम हाथ की ओर बैठा करता है। परंतु युरोपीय महाद्वीप में इससे कुछ भिन्न ही प्रबंध है। वहाँ नाट्यशाला की तरह संपूर्ण कार्य्यक्रम है।

ऊपर हम लिख चुके हैं कि प्रतिनिधि राज्यदल (वामीय) वालों में भी परस्पर विभिन्न तीन दल थे जिनका निर्देश हम यहाँ पर वामीय, अतिवामीय और मध्यवामीय के तौर पर कर देना ही उचित समझते हैं। आरंभ में दक्षिणीयों की संख्या अधिक थी तथा वे स्वयं भो संघटित थे, पर समय के बीतने के साथ साथ इनकी शक्ति, संख्या और संघटन तीनों ही लुप्त होते गए। हम यह भी लिख चुके हैं कि फ्रांस का प्रथम प्रधान दीपर्स चुना गया था। यद्यपि दीपर्स दक्षिणीय

मंत्रिमंडल जहां प्रधान के सम्मुख बैठता है, वहां संकुचित विचार के लोग उसके दक्षिण हाथ की ओर तथा उदार विचार के लोग वाम हाथ की ओर बैठते हैं। इसका परिणाम यह हो गया है कि संकुचित विचारवालों का नाम जहाँ दक्षिणीय (right) पड़ गया है, वहाँ उदार विचारवाले लोगों का नाम वामीय (left) पड़ गया है। उदार तथा संकुचित विचार शब्द सापेक्षिक हैं। जो आज संकुचित विचारवाला कहा जाता है, कल वही उदार विचार का कहा जा सकता है। दिन पर दिन जिस प्रकार जनता में विचार संबंधी विकास होता है, उसी प्रकार उसमें उदार विचारवाले व्यक्तियें की संख्या बढ़ने लगती है। प्रतिनिधि सभाभवन में विचार-विभिन्नता के अनुसार ही सभ्यों की स्थान-विभिन्नता की गई है। प्रधान के बाएँ हाथ के समीप ही जहाँ साधारण उदार विचारवाले सभ्यों का स्थान है, वहाँ अति उदार विचार-वाले सभ्यों का स्थान अत्यंत बाईं ओर रखा गया है। और इसी प्रकार विचारों की उदारता के दर्जे के अनुसार सभ्य लोग आगे पीछे बैठते हैं। इस कार्य्यक्रम के कारण उनके नाम भी प्रधान से दूरी के अनुसार ही पड़ गए हैं जो ऊपर दिए गए हैं।

था, तथापि इसका विचार यह था—"इस समय के लिये फ्रांस में प्रतिनिधि राज्य ही उपयुक्त है।" १८७३ में अतिवामीय दल प्रबल हुआ। उस समय दीपर्स जैसे व्यक्ति का प्रधान पद पर स्थित रहना अनुचित ही था। इसके त्याग-पत्र दे देने के पश्चात् मैक्माहन को प्रधान पद दिया गया। इसने अपनी मंत्रिसभा मध्यवामीयों में से चुनकर बनाई, परंतु अतिवामीयों की प्रबलता ने इसका भी शीघ्रता से अधःपात कर दिया। १८७६ तक इसी प्रकार दलों के कारण राज्य में अस्थिरता रही। बड़ी कठिनता से १८७६ में अंतरंग सभा और प्रतिनिधि सभा का प्रथम चुनाव हुआ। चुनाव में अंत-रंग सभा में दक्षिणीयों की ही अधिकता थी, पर प्रतिनिधि सभा में वामीयों का आधिक्य था। ज्यों ज्यों समय गुजर-ता गया, त्यों त्यों प्रतिनिधि सभा में उदार विचारवालों की संख्या बढ़ने लगी। आरम्भ में जहाँ उदार तथा मध्यम उदार दल ही थे, वहाँ कुछ समय के बाद ही अति उदार विचारवालों का भी प्रवेश हुआ। इन्होंने अन्यों से पार्थक्य दिखाने के लिये अपने को अवसरवादी के नाम से पुकारना प्रारंभ किया तथा उदार और मध्यम दलवालों ने अपने को प्रतिनिधि राज्य-वादी कहना आरंभ कर दिया। अवसरवादियों की प्रधानता राज्य में दिन पर दिन अस्थिरता लाने लगी और साथ ही फरांसीसियों के अंतरीय और वैयक्तिक मामलों में राज्य का हाथ बढ़ गया। राज्य की पाठशालाओं और कालेजों से धर्म-

शिक्षा हटा दी गई। साम्राज्य में स्थान स्थान पर उदार विचार-वाले राज्याधिकारी नियत किए गए। इन सब परिवर्तनों तथा अस्थिरताओं का प्रभाव भयंकर हुआ। जनता उदार विचारों से संकुचित विचारों में परिवर्त्तित हो गई, पर राज्य दिन पर दिन उदार विचारों की ओर झुक गया। जनता तथा राज्य के विचारों के विरोध से जनरल वालंगर ने लाभ उठाने का यत्न किया। यह विचार में दक्षिणीय था और राजा का राज्य ही पुनः देश में ले आना चाहता था। पहले पहल इसने भिन्न भिन्न मंत्रिपद ग्रहण किए। इस प्रकार करते करते १८८९ में इसने प्रधान पद के लिये यत्न किया। परंतु राज्य के संपूर्ण यत्न से यह चुनाव में न आ सका। वालंगर के अधःपात से दक्षिणीय दल शक्ति में बहुत ही कम हो गया और साथ ही राज-कार्य भी दूसरे ही ढंग पर चलने लगा।

यह पहले दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार अवसर-वादियों ने देश के अंतरीय मामलों तथा चर्च पर आक्रमण किया। फ्रांस में धर्म तथा राज्य का बहुत ही अधिक घनिष्ठ संबंध है। बड़े बड़े पादरियों को राज्य नियत करता है और वेतन भी वही देता है। कैथोलिक धर्म के सिद्धांत ही ऐसे हैं जिनसे उस धर्म को माननेवाले प्रतिनिधि राजवादी हो ही नहीं सकते। अवसरवादियों का इनके प्रति विरोध भी इसी लिये था। १८९० में एक विचित्र घटना हुई। पादरी लैवीगेरी ने अपने आपको प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्यवादी उद्-

घोषित किया। यह बड़ा ही प्रभावशाली व्यक्ति था। कुछ ही समय में बहुत से कैथोलिक इसके साथी हो गए। इन सब लोगों ने अपने आपको रालीज के नाम से पुकारना शुरू किया। इनका उत्थान अतिवामीय दलों को प्रिय न हुआ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में अतिवामीय दल का पुनः जोर हुआ और ये चर्च के विरुद्ध अपनी कार्रवाई करने में दत्त-चित्त हो गए। सन् १९१४ में जब युरोपीय महासमर छिड़ा, उस समय भी इन्हीं अतिवामीय दलों का जोर था। देश के ऊपर आपत्ति का मौका देखकर भिन्न भिन्न दलों ने भेदभाव दूर करना देश के लिये हितकर समझा और फ्रांस के मुख्य मुख्य दलों ने मिलकर एक 'पुनीत सम्मेलन' 'Sacred Union' नाम का दल बनाया। इस सम्मिलित दल की नीति अब चर्च के प्रति उतनी तीव्र नहीं रही जितनी कि अवसरवादी और अतिवामीय दल की थी। सन् १९१९ में, लड़ाई के उपरांत, जो दल जोर में आया, उसकी भी नीति चर्च के प्रति उदार हो रही। यह दल राष्ट्रीय दल (Nationalist block) के नाम से प्रसिद्ध था। इस दल को अपनी नीति को कार्य में परिणत करने के लिये अतिवामीय (Radicals) दल की कृपा की आवश्यकता नहीं रही।

राष्ट्रीय दल सन् १९१९ से १९२४ तक अपनी शक्ति बनाए रहा। इस बीच में इसने चर्च की सहानुभूति प्राप्त कर ली। चर्च तो दक्षिणीय दलों से मिला ही हुआ था। फल यह

हुआ कि राष्ट्रीय दल और दक्षिणीय दल एक दूसरे से विरोधात्मक नहीं रहते थे। यह अति वामीय दलवाले कैसे देख सकते थे। सन् १९२४ के निर्वाचन में अति वामीय दल ने जनता को यह दर्शाया कि राष्ट्रीय दल, दक्षिणीय दल से मिला हुआ है और इससे प्रतिनिधिसत्तात्मक शासन-प्रणाली को भय है। कुछ हद तक ये अपने प्रयत्न में सफल भी हुए और निर्वाचन में इनकी जीत हुई। आजकल जर्मनी में इसी दल का जोर है और मंत्रिसभा भी इसी दल के लोगों से भरी हुई है। इसकी वही चर्च-विरोधक नीति है जो पहले थी।

यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि वास्तव में फरांसीसी लोग चर्च का क्यों विरोध करते हैं और इनका विरोध कैसा है। फरांसीसियों की अधिक संख्या कैथोलिक मत की ही है। अतः यह जानकर पहले आश्चर्य होता है कि इस प्रकार धर्मप्रधान देश होकर फ्रांस किस तरह चर्च का विरोध करता है। परंतु फरांसीसियों की मनोवृत्ति समझने पर इस आश्चर्य के लिये कोई जगह नहीं रह जायगी। फरांसीसियों का अधिकांश अब भी अपने बुजुर्गों के चर्च में विश्वास करता है और उसे आदर का स्थान देता है। परंतु वह यह नहीं चाहता कि चर्च उनकी अपनी राजनीतिक उन्नति में बाधा दे। वे धर्म को राजनीति से दूर ही रखना चाहते हैं। परंतु जहाँ सदियों से दोनों में संबंध चला आया है, वहाँ एकाएक यह संबंध तोड़ना भी सहज नहीं है।

फ्रांस की दलबंदी पर ध्यान देते समय हमें यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि फ्रांस में गत ४० वर्ष के भीतर साम्य-वादियों की शक्ति भी बढ़ती गई है। सन् १७८६ की क्रांति के अवसर पर भी फ्रांस में कुछ साम्यवादी थे, परंतु उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इनकी बड़ी वृद्धि हुई। आजकल फ्रांस की प्रतिनिधि सभा में साम्यवादियों के तीन दल हैं।

यह ऊपर बता ही दिया गया है कि महासमर का आरंभ होने पर फ्रांस में भिन्न भिन्न दलों ने आपस में मेल का पाठ सीखा। परंतु अभी तक फ्रांस की दलबंदी उतनी स्वस्थ नहीं हो पाई है जितनी इँगलैंड या अमेरिका में है। आजकल फ्रांस की प्रतिनिधि सभा में कम से कम ८ दल होंगे जो आपस ही में एक दूसरे से लड़ते रहते हैं। इनके नाम और संख्या सदा बदलती रहती है और यह नहीं कहा जा सकता कि एक वर्ष बाद फ्रांस की दलबंदी किस प्रकार की होगी। पर यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि फ्रांस में इस बात का यत्न हो रहा है कि प्रतिनिधि सभा में भिन्न भिन्न दल आपस में मिलकर केवल उदार तथा संकुचित इन दो दलों में विभक्त हो जायँ।

तीसरा परिच्छेद

जर्मनी

यूरोपीय महासमर के पूर्व जर्मनी में एक प्रबल एक-सत्तात्मक साम्राज्य था। इस साम्राज्य में छोटे बड़े मिलाकर २५ राज्य थे। इन सब में प्रशिया सबसे बड़ा था। इसके राजा को जर्मनी के सम्राट् और कैसर का पद प्राप्त था। साम्राज्य की दो व्यवस्थापक सभाएँ भी थीं--बुंदास्रेत और रीशटैग। अन्य देशों के सदृश यहाँ कोई मंत्रिसभा नहीं थी, किंतु सम्राट् का एक महामंत्री अवश्य था जो चांसलर कहलाता था। यह अपने कार्यों के लिये सम्राट् के प्रति ही उत्तरदायी था।

सन् १६१८ में यह शासन-प्रणाली त्याग दी गई। अब वहाँ एकसत्तात्मक राज्य नहीं है। कैसर की जगह अब वहाँ जर्मन राष्ट्रसंघटन का प्रधान है। चांसलर की जगह एक मंत्रिसभा है जिसका अध्यक्ष चांसलर ही कहलाता है। यह मंत्रिसभा अब प्रतिनिधि सभा (रीशटैग) के प्रति उत्तरदायी है। बुंदास्रेत की जगह रीशस्रेत स्थापित की गई है जिसमें जर्मन राष्ट्रों के प्रतिनिधि बैठते हैं। तात्पर्य यह कि सन् १६१८ में जर्मनी में एकसत्तात्मक राज्य के बदले प्रतिनिधिसत्तात्मक की स्थापना हो गई।

किंतु नवीन जर्मन शासन-पद्धति का वर्णन करने के पहले हम प्राचीन जर्मन शासन-पद्धति का कुछ वर्णन किए बिना नहीं रह सकते। कारण यह है कि प्राचीन जर्मन शासन-पद्धति ने अपने लगभग ४० वर्ष के समय में संसार को चकित कर दिया था। जर्मन लोग बहुधा यही समझते थे कि संसार के पर्दे पर जर्मन शासन-पद्धति के शान की और किसी राष्ट्र की शासन-पद्धति नहीं है। जर्मनी का यह गौरव किसी अंश में सत्य भी था। इस प्रणाली की छाया में जर्मनी ने जो उन्नति की, वह प्रशंसनीय है। संसार भर के बड़े बड़े राजनीतिज्ञ भी इसकी भूरि भूरि प्रशंसा किया करते थे। किंतु सारी अच्छाई एक तरफ कभी नहीं रहती। जर्मनी को अपनी ताकत का घमंड होने लगा। वह संसार को अपने सम्मुख तुच्छ समझने लगा और उसके दिल में यह उमंग उठी कि समस्त संसार मेरे नीचे क्यों न आ जाय। फल यह हुआ कि जर्मनी ने सन् १९१४ में महासमर छेड़ दिया। इस लड़ाई में जर्मनी ने जो पराक्रम दिखाया, वह सबको विदित ही है। किंतु केवल यही कारण नहीं है जिससे जर्मनी की प्राचीन शासन-प्रणाली का वर्णन करना आवश्यक है। वास्तव में नवीन शासनपद्धति भी बहुत कुछ उसी के आधार पर है; और अब जर्मनी में कई लोगों की यह राय भी हो रही है कि जर्मनी के लिये प्राचीन शासनप्रणाली ही अधिक अच्छी थी और अब उसका पुनरुद्धार होना चाहिए।

इस शासनप्रणाली का जन्म सन् १८७७ में जर्मनी के महापुरुष आटोवान् बिस्मार्क द्वारा हुआ था। इसके पूर्व जर्मनी के सारे राज्य एक दूसरे से विभक्त हो रहे थे। एक नाम मात्र का संघ अवश्य था जिसका अध्यक्ष आस्ट्रिया था, किंतु यह बिलकुल मृतप्राय हो रहा था। लोगों की यह इच्छा हो रही थी कि प्रशिया की अध्यक्षता में जर्मनी के सब राज्य मिल जायँ। किंतु एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती हैं! जब तक आस्ट्रिया अपनी टाँग अड़ाए हुए है, तब तक प्रशिया की कैसे चल सकती है! अंत में बिस्मार्क ने देखा कि आस्ट्रिया बगैर लड़ाई के इस राज्यसंघ से दूर नहीं होगा। सन् १८६२ में प्रशिया के प्रधान मंत्री होने पर उसने प्रशियन पार्लिमेंट को तो ४ वर्ष के लिये बंद करवा दिया* और स्वयं कर्त्ता धर्त्ता बनकर सन् १८६६ में आस्ट्रिया से लड़ाई ठान दी। आस्ट्रिया शीघ्र ही परास्त हो गया। उसके परास्त हो जाने पर प्रशिया के राजा ने बिस्मार्क से आस्ट्रिया का कुछ हिस्सा ले लेने को कहा; परंतु बिस्मार्क ने उत्तर दिया—'हमारा ध्येय आस्ट्रिया को दंड देना नहीं है, हमारा ध्येय तो जर्मनी की नीति चलाने का है'। इस तरह आस्ट्रिया को अलग कर बिस्मार्क ने प्रशिया की छत्रच्छाया में जर्मनी में एकता स्थापित की। किंतु शीघ्र ही फ्रांस को यह एकता खटकने लगी। फ्रांस-

जर्मनी की प्राचीन शासनपद्धति

---

* पार्लिमेंट लड़ाई के लिये रुपया देने को तैयार नहीं थी।

सम्राट् नेपोलियन तृतीय ने अपनी सेना तैयार की और जर्मनी के इस संघटन का विरोध किया। बिस्मार्क सदृश नीतिकुशल पुरुष ने एक साथ दो दो लड़ाइयाँ लड़ना हितकर नहीं समझा और फ्रांस के कहने पर दक्षिणीय चार राज्यों को जर्मन संघटन में शामिल नहीं किया। इसी बीच बिस्मार्क ने अकेले ही जर्मन राज्यसंघ की शासनप्रणाली निर्माण की और सब राज्यों के प्रतिनिधियों की एक सभा ने इसे स्वीकृत कर लिया। तदनंतर सन् १८६६ में प्रथम रीशटैग ने भी इसे मान लिया।

जो दक्षिणीय चार राज्य फ्रांस के विरोध करने पर संघ में शामिल नहीं हो सके थे, उनके भी शामिल करने का अवसर बिस्मार्क देख रहा था। अंत में सन् १८७० में एक बिलकुल मामूली सी बात पर बिस्मार्क ने फ्रांस से लड़ाई ठान दी और बिना किसी कष्ट के विजय प्राप्त करके अपना एकता का ध्येय पूरा किया। दक्षिणीय चार राज्यों को मिला लेने पर सन् १८७१ में बिस्मार्क ने जर्मन राज्यसंघ को जर्मन साम्राज्य में परिणत कर दिया। इसके लिये किसी विशेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं पड़ी। प्रशिया का जो राजा पहले राज्यसंघ का प्रधान था, अब वही जर्मन सम्राट् कहलाने लगा। राज्यसंघ की पार्लिमेंट साम्राज्य की पार्लिमेंट हो गई और केंद्रीय राज्य और भिन्न भिन्न राज्यों का संबंध, सन् १८६७ के मसविदे में कुछ थोड़ी रद्दोबदल करके, स्पष्ट कर दिया गया। इन छोटे मोटे परिवर्तनों के अतिरिक्त सन्

१८६७ की शासनप्रणाली ज्यों की त्यों रही। जर्मनी में वही शासनप्रणाली सन् १९१८ तक प्रचलित थी।

ऊपर हम बता ही चुके हैं कि नवीन शासनपद्धति के निर्माण होने के समय जर्मन साम्राज्य में २५ राज्य शामिल थे। जर्मन साम्राज्य एक राज्यसंघटन था। किंतु यह राज्य-संघटन अथवा राष्ट्रसंघटन अमेरिका प्रभृति राष्ट्रसंघटनों से सर्वथा भिन्न था। जिस स्थान पर हम 'राष्ट्रसंघटन' शब्द प्रयुक्त करते हैं, उस स्थान पर हमारा एक भाव यह होता है कि उस संघटन में सम्मिलित प्रत्येक राष्ट्र की शक्ति तथा अधिकार समान होने चाहिएँ। परंतु जर्मन राष्ट्रसंघटन में सर्वत्र असमानता ही असमानता विद्यमान थी। हम ऊपर बता ही चुके हैं कि प्रशिया इन राज्यों में सबसे बड़ा था। प्रशिया की जनसंख्या जहाँ संपूर्ण जर्मन राज्य-संघटन की जनसंख्या की $\frac{3}{5}$ थी, वहाँ अन्य २४ जर्मन राज्यों की जन-संख्या मिलकर $\frac{2}{5}$ ही थी। इस दशा में प्रशिया तथा अन्य राज्यों का संघटन शेर तथा सियारों के संघटन के सदृश था। इसका फल यह था कि वास्तव में प्रशिया ही संपूर्ण जर्मन संघटन का शासक था जिसमें सलाह के लिये उसने अन्य राष्ट्रों को भी सम्मिलित कर लिया था। प्रशिया को एक सबसे बड़ा लाभ तो यह था कि उसका राजा ही जर्मनी का सम्राट् था। दूसरा लाभ यह भी था कि उसके ही सब से अधिक सभ्य राष्ट्रसभा (बुंदास्रेत) में थे। जर्मन प्रति-

निधि सभा में पास किया हुआ कोई प्रस्ताव राष्ट्रसभा में केवल १४ विरोधी सम्मतियों से ही रद्द किया जा सकता था। राष्ट्रसभा में प्रशिया के १७ सभ्य थे। इस प्रकार प्रतिनिधि सभा के किसी प्रस्ताव को पास करने या न करने में उसका अकेले ही कितना हाथ था, यह किसी से छिपा नहीं है। इन सब अधिकारों के अतिरिक्त, स्थलसेना, नौसेना, कर आदि संबंधी नियमों के पास करवाने में या न करवाने में उसे विशेष अधिकार प्राप्त था। संपूर्ण जर्मन सेनाओं का सेनापति प्रशिया का राजा ही था।

प्राचीन प्रतिनिधि सभा

प्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधियों का चुनाव गुप्त रीति से साम्राज्य की जनता द्वारा होता था। जनता ही प्रतिनिधि सभा में अपने प्रतिनिधि भेजती थी। चुनने का अधिकार २५ वर्ष से अधिक अवस्थावाले को ही था; परंतु यदि कोई व्यक्ति पच्चीस वर्ष की अवस्था का होकर भी राज्यकर्मचारी होता था, दरिद्र या इस कार्य के अयोग्य होता था तो उसे प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं था। शासनपद्धति के निर्माण काल में प्रति एक लाख जनसंख्या के केवल एक ही प्रतिनिधि भेजने का नियम था। उस समय इस नियम के अनुसार जिन जिन स्थानों तथा नगरों को जितने सभ्य भेजने का अधिकार मिला, वही अंत तक चला आया, यद्यपि कई स्थानों तथा नगरों की जनसंख्या बेहद बढ़ चुकी थी। शासनपद्धति के नियमों के द्वारा इसमें

परिवर्तन नहीं हो सकता था। इसका हेतु यह था कि जनसंख्या में वृद्धि किए हुए शहर इत्यादि अधिक संख्या में अपने प्रतिनिधि न भेज सकें; क्योंकि शहर की ओर से प्राय: समष्टिवादी या अति उदार विचार के व्यक्ति प्रतिनिधि सभा में प्रतिनिधि बनकर पहुँचते थे। यह राज्य को कब अभीष्ट हो सकता था ?

प्रतिनिधि सभा के सभ्यों को वेतन देना बिस्मार्क को अभीष्ट न था। यह भी इसलिये कि प्रतिनिधि सभा का सभ्य होना भी कहीं जनता के लिये एक पेशा न बन जाय और जीविका का एक साधन न समझा जाय। जर्मन प्रतिनिधि सभा को नियम संबंधी प्राय: सभी अधिकार प्राप्त थे। इसके सभ्य अपना प्रधान आप ही चुनते थे। प्रतिनिधि सभा के कार्यक्रम को समुचित रीति पर चलाने के लिये जिन जिन नियमों की विशेष आवश्यकता होती थी, उन्हें वे स्वयं ही बना लेते थे। प्रतिनिधियों का चुनाव समुचित रीति पर हुआ है या नहीं, इस बात का निरीक्षण भी प्रतिनिधि सभा के सभ्य ही करते थे।

प्रतिनिधि सभा के लिखित अधिकार बहुत ही अधिक थे। कोई नियम राज्यनियम नहीं हो सकता था जब तक कि उसमें प्रतिनिधि सभा की सहमति न हो। साम्राज्य का भावी आयव्यय, जातीय ऋण, तथा नियमों के साथ संबंध रखनेवाली संधियों का प्रतिनिधि सभा द्वारा पास किया

जाना आवश्यक था। यह सब होते हुए भी प्रतिनिधि सभा की शक्ति इतनी अधिक नहीं थी, जितनी कि कागज पर लिखी हुई प्रतीत होती थी। आयव्यय तो वर्ष में प्राय: एक बार ही पेश होता था। करसंबंधी नियमों को बदलना प्रतिनिधि सभा के हाथ में नहीं था। इसमें जर्मन राष्ट्रसभा की स्वीकृति का होना आवश्यक था। इस शासन-प्रणाली के अखीर दिनों में तो प्रतिनिधि सभा का एक मुख्य कार्य यही था कि वह राष्ट्र सभा तथा महामंत्री (चांसलर) द्वारा पेश किए हुए प्रस्तावों का विचार करे तथा उन्हें स्वीकार करे अथवा उन प्रस्तावों को जिन स्थानों पर उसे सुधारना अभीष्ट हो, सुधार दे। सारांश यह कि एक मात्र प्रतिनिधि सभा नियम या शासन में जर्मन राजनीति को चलाने या बदलने में समर्थ नहीं थी। प्रतिनिधि सभा के महत्त्व को अत्यंत कम कर देनेवाली बात यह भी थी कि जर्मन राष्ट्र सभा जब चाहे, तब सम्राट् की सम्मति लेकर प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर सकती थी, तथा साम्राज्य को पुन: नए सिरे से प्रतिनिधियों के चुनने के लिये बाध्य कर सकती थी।

शासन-पद्धति के नियमों के अनुसार प्रतिनिधि सभा के सभ्य राजकीय प्रबंध पर प्रश्न कर सकते थे, परंतु विचित्रता यह थी कि वे प्रश्न किससे करते? कौन संपूर्ण प्रबंध का एक-मात्र जिम्मेवार था? राष्ट्र सभा के सभ्य तथा महामंत्री प्रति-निधि सभा में जाते थे, परंतु वे भी प्रांतीय राष्ट्रों के प्रतिनिधि

के रूप में ही, न कि राजकीय अधिकारी के रूप में। प्रायः प्रतिनिधि सभा में राजकीय प्रबंध आदि पर किए हुए आक्षेपों का उत्तर महामंत्री ही दे देता था। यदि उनकी इच्छा स्वयं उत्तर देने की न होती तो वह अपने प्रतिनिधियों द्वारा उन आक्षेपों का समाधान करवा देता था। पचास सभ्यों की यदि सम्मति हो जाती, तब तो किसी एक प्रश्न पर वाद विवाद देर तक किया जा सकता था। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि जो कुछ भी वाद-विवाद में निर्णय होता, उस पर कार्य करना महामंत्री तथा उसके मातहतों के लिये आवश्यक नहीं था। इस दशा में प्रतिनिधि सभा जर्मन साम्राज्य की नीति की प्रकाशक या प्रेरक नहीं कही जा सकती थी। प्रतिनिधि सभा चाहे विरुद्ध क्यों न हो जाय, महामंत्री अपना पद छोड़ नहीं देता था, न वह यही अनुभव करता था कि जर्मन प्रतिनिधि सभा की सम्मति पर चलना उसका कोई कर्तव्य ही है। प्रतिनिधि सभा पर जो कुछ लिखना था, वह लिखा जा चुका। अब हम जर्मन राष्ट्र सभा का कुछ वर्णन करेंगे।

प्राचीन राष्ट्र सभा

प्राचीन राष्ट्र सभा (बुंदास्रत) ही जर्मनी में प्रबंध-नियमों, न्याय तथा जर्मन राजनीति की प्रकाशक थी। इसमें भिन्न भिन्न जर्मन राज्यों तथा स्वतंत्र नगरों की अंतरंग सभा की ओर से प्रतिनिधि आते थे। कुल सभ्यों की संख्या ५८ हो जाती थी। इन सभ्यों को राष्ट्र सभा में जाकर अपने अपने राष्ट्रों की ही

सम्मतियाँ देनी पड़ती थीं, चाहे वे स्वयं उस सम्मति के विरुद्ध ही क्यों न हों। वे वहाँ जाकर अपनी सम्मति नहीं दे सकते थे। ५८ सम्मतियों में अकेले प्रशिया के पास बीस सम्मतियाँ थीं। इससे उसकी शक्ति कितनी अधिक थी, यह स्पष्ट ही है। जर्मन साम्राज्य का सम्राट् प्रशिया का राजा ही होता था, यह तो बताया ही जा चुका है। शासन-पद्धति के अनुसार महामंत्री और चांसलर का नियत करना सम्राट् के ही हाथ में था। वह प्रायः प्रशिया के ही किसी व्यक्ति को इस पद पर नियत करता था। महामंत्री की कितनी शक्ति थी, यह हम आगे चलकर लिखेंगे। किंतु यहाँ तो हमें यही बताना है कि जर्मन राष्ट्र सभा के सभापति का आसन महामंत्री ही ग्रहण करता था।

अमेरिकन अंतरंग सभा के सदृश जर्मन राष्ट्र सभा के भी नियामक, शासक तथा न्याय संबंधी तीन कार्य थे। कोई नियम राज्यनियम नहीं हो सकता था, जब तक कि राष्ट्र सभा की स्वीकृति न हो। इसमें संदेह नहीं है कि युद्ध के उद्-घोषित करने में जर्मन सम्राट् का बड़ा भारी हाथ था, परंतु साथ ही किसी राष्ट्र पर सम्राट् आक्रमण नहीं कर सकता था जब तक कि वह राष्ट्र सभा की स्वीकृति न ले ले। राष्ट्र सभा, सम्रा् की अनुमति से प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त करके नए सिरे से पुनः चुनाव के लिये प्रेरित कर सकती थी, यह पहले लिखा जा चुका है। अमेरिकन अंतरंग सभा के

सदृश जर्मन राष्ट्र सभा के ही हाथ में राज्याधिकारियों को नियत करना तथा विदेश से संधि आदि करना था। परंतु यहाँ पर इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि संधि आदि के मामले में राष्ट्र सभा को प्रतिनिधि सभा की अनुमति अवश्यमेव लेनी पड़ती थी।

राष्ट्र सभा ही साम्राज्य के मुख्य न्यायाधीश, कर एकत्र करनेवाले अधिकारी, तथा आयव्यय-विभाग के प्रबंध-कर्त्ता आदि को नियत करती थी। यदि एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र से कलह हो जाती तो उस दशा में राष्ट्र सभा ही न्याय-सभा का काम करती थी। सारांश यह कि जर्मन राष्ट्र सभा ही जर्मन राष्ट्र-संघटन की रक्षक थी, प्रत्येक राष्ट्र के अधिकारों को स्वरक्षित रखती थी और राष्ट्र-संघटन या साम्राज्य के हित के लिये नए नए नियम भी बनाती थी।

यदि किसी शासन-पद्धति संबंधी नियम पर राष्ट्र सभा के चौदह सभ्यों की विरुद्ध सम्मतियाँ होतीं तो वह प्रस्ताव राज्यनियम नहीं बन सकता था। इस नियम का तात्पर्य यह है कि 'राष्ट्र संघटन' संबंधी कोई सुधार या परिवर्तन एकमात्र प्रशिया की सम्मति से ही गिर सकता था। बवेरिया, सैक्सनी, वर्टबर्ग ये तीनों छोटे छोटे राष्ट्र भी मिलकर वही शक्ति प्राप्त कर सकते थे जो अकेले प्रशिया की है। स्वतंत्र तौर पर राष्ट्र सभा के सभ्य कुछ भी नहीं थे, क्योंकि वे

इस बात के लिये बाध्य थे कि वे अपने अपने राष्ट्रों की सम्मतियों को हो राष्ट्र सभा में प्रकट करते। पर साम्राज्य की संपूर्ण शासन-कल को चलाने में उनका बड़ा भारी हाथ था। यहाँ पर एक बात और लिख देना हम आवश्यक समझते हैं कि राष्ट्र सभा की संपूर्ण कार्रवाई गुप्त तौर पर होती थी तथा गुप्त हो रखी भो जाती थो। राष्ट्र सभा में पेश किए हुए विषय एक बैठक की समाप्ति पर सदा के लिये अर्धसमाप्त ही नहीं छोड़ दिए जाते थे। असमाप्त विषयों को दूसरी बैठक में पुनः पेश कर दिया जाता था। इससे प्रत्येक विषय पर विचार समुचित रीति पर हो जाता था और कार्रवाई के गुप्त रखने से जर्मन राष्ट्र संघटन में राष्ट्रों के पारस्परिक क्या झगड़े थे, इसका किसी को पता भी नहीं लगने पाता था। इसका परिणाम यह होता था कि दूसरे देश जर्मन राष्ट्रों के पारस्परिक वैमनस्य से लाभ नहीं उठा सकते थे और सब के सब जर्मन राष्ट्र एक दूसरे से अत्यंत अधिक जुड़े हुए तथा संघटित प्रतीत होते थे।

प्राचीन जर्मन शासन-पद्धति के प्रधान प्रधान अंगों का वर्णन किया जा चुका है। न्यायालय का शासन-पद्धति से

न्यायालय

कहाँ तक संबंध है, यह किसी से छिपा नहीं है। राज्यनियमों के प्रचलित करने में न्यायालयों का बड़ा भारी भाग है। अतः अब हम कुछ शब्द जर्मन न्यायालयों पर ही इस समय लिखेंगे।

जर्मनी में भिन्न भिन्न राष्ट्रों के अपने अपने ही न्यायालय थे। उनके न्यायाधीश आदि अधिकारी वे राष्ट्र स्वयं ही नियत करते थे तथा निर्णय भी उसी राष्ट्र के नाम पर किया जाता था। परंतु विचित्रता यह थी कि राष्ट्रीय न्यायालयों को साम्राज्य के नियमों पर ही अपना अपना कार्य करना पड़ता था। साम्राज्य का अपना मुख्य न्यायालय भी था, जिसमें साम्राज्य के प्रति देशद्रोह करनेवाले व्यक्तियों के अपराधों का निर्णय होता था तथा साम्राज्य के नियम संबंधी वाद विवाद तथा संदेहों का निर्णय किया जाता था।

सम्राट् तथा महामंत्री

सम्राट् नौसेना तथा स्थलसेना का मुख्य सेनापति समझा जाता था और अन्य राजकीय विभागों में राष्ट्र सभा के एक मात्र प्रतिनिधि का कार्य करता था। इस दशा में सम्राट् को राष्ट्र-सभा की अनुमति से ही कार्य करना पड़ता था। राष्ट्र सभा की अनुमति से सम्राट् विदेशीय राज्यों के साथ युद्ध की उद्घोषणा कर सकता था। संधि आदि करने में भी वह राष्ट्र सभा की शक्ति से बाहर नहीं था। सम्राट् प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर सकता था, परंतु उसमें भी उसे राष्ट्र सभा से पूछना पड़ता था। राष्ट्र सभा द्वारा पास किए हुए नियमों को सम्राट् ही साम्राज्य में प्रचलित करता था और जर्मन साम्राज्य के महामंत्री को भी वही अपनी ओर से नियत करता था। सारांश यह कि सम्राट् की शक्ति

अत्यंत परिमित थी और उस परिमित शक्ति में भी उसे राष्ट्र सभा का सदा ध्यान रखना पड़ता था।

प्रतिनिधि सभा में सम्राट् नहीं जाता था। महामंत्री भी वहाँ एक राज्याधिकारी के रूप में नहीं जाता था, अपितु राष्ट्र सभा के एक प्रतिनिधि के रूप में। इन सब बातों के होते हुए भी सम्राट् की शक्ति प्रशिया के राजा के तौर पर पर्याप्त थी। प्रशिया की शक्ति राष्ट्र सभा में कितनी थी, यह पहले ही विस्तृत रूप से लिखा जा चुका है। सारांश यह कि जर्मनी का सम्राट् जहाँ सम्राट् के तौर पर बहुत ही अधिक परिमित शक्तिवाला था, वहाँ प्रशिया के राजा के तौर पर उसकी शक्ति बहुत ही अधिक थी।

जर्मनी में कोई मंत्रिसभा नहीं थी। राष्ट्र संघटन का एकमात्र प्रबंधकर्त्ता महामंत्री ही था। साम्राज्य में संपूर्ण राज्याधिकारी इसी के अधीन कहे जाते थे। इसके समान अधिकारवाला कोई नहीं था। महामंत्री की इस प्रकार की उच्च स्थिति बिस्मार्क की अपनी योग्यता के कारण ही कही जा सकती है। बिस्मार्क सब राज्यकार्य स्वयं ही करना चाहता था। उसे यह अभीष्ट न था कि उसके कार्य में विघ्न डालनेवाले अन्य बहुत से साथी उत्पन्न हो जायँ। प्रशियन मंत्रिसभा का उसे पूरा पूरा अनुभव था, जिसमें प्रत्येक मंत्री अपने अपने विभाग में बिलकुल स्वतंत्र था, तथा जहाँ मंत्रियों का पारस्परिक मेल भी न था। यही अवस्था

वह जर्मन साम्राज्य में नहीं लाना चाहता था। बिस्मार्क को इस बात से घृणा थी कि वह एक नई मंत्रिसभा बनाकर अपने आपको परतंत्रता में डाल दे। बिस्मार्क जैसा उच्च विचार का व्यक्ति भला कब मंत्रिसभा में जाकर प्रत्येक मंत्री को अपने कार्यों का औचित्य तथा अनौचित्य समझाना पसंद कर सकता था? इन सब कारणों से बिस्मार्क ने ऐसे विभाग का निर्माण ही नहीं किया जिसके कारण भविष्यत् में उसे कठिनाइयाँ झेलनी पड़े। अपनी शासनपद्धति के अनुसार शासन के निरीक्षण तथा प्रबंध का भार उसने राष्ट्र सभा के हाथ में दिया और विदेशी विभाग तथा सैन्यविभाग का उत्तरदायित्व जर्मन साम्राज्य की ओर से प्रशिया के राजा के हाथ में दिया, क्योंकि यह कार्य एक ही व्यक्ति के हाथ में होना उचित था। महामंत्री ने स्वयं अपने आपको प्रशिया के एक राज्याधिकारी का रूप दिया, जिसका उत्तरदायित्व सम्राट् के प्रति था, न कि जनता के प्रति। यही कारण है कि महामंत्री के प्रस्तावों के विरुद्ध प्रतिनिधि सभा की सम्मतियों के होने पर भी महामंत्री कभी पदत्याग नहीं करता था। प्राय: ऐसे अवसरों पर महामंत्री प्रतिनिधि सभा की बैठक उठाकर दूसरी बार चुनाव के लिये प्रेरित करता था। इस विधि द्वारा महामंत्री प्राय: सफल ही होता था तथा अपने प्रस्तावों को पास भी करा लेता था।

महामंत्री राष्ट्र सभा का प्रधान होता था और प्रतिनिधि सभा के वाद-विवादों में भी पूर्ण भाग लेता था। जर्मन सम्राट्

के सदृश महामंत्री के भी दो प्रकार के अधिकार थे। कुछ अधिकार तो उसे साम्राज्य की ओर से प्राप्त थे; और कुछ अधिकार उसे प्रशिया के प्रतिनिधि के तौर पर भी मिले हुए थे।

सम्राट् की ओर से नियत किए जाने के कारण महामंत्री जर्मन साम्राज्य का एक बड़ा राज्याधिकारी होता था और राष्ट्र-सभा का प्रधान भी वही होता था। महामंत्री ही राष्ट्र सभा में प्रशिया की ओर से प्रतिनिधि का कार्य भी करता और इस अवस्था में जब चाहे तब किसी प्रस्ताव पर प्रशिया की बीस सम्मतियाँ देकर सारी की सारी जर्मन राजनीति की बागडोर अपने हाथ में कर सकता था। राष्ट्र सभा में प्रशिया का प्रतिनिधि होने से प्रशियन मंत्रिसभा का प्रधान भी प्रायः महामंत्री ही होता था।

बिस्मार्क के काल में महामंत्री की शक्ति बहुत ही अधिक हो गई थी। जर्मनी में उस समय महामंत्री को जितने कार्य करने पड़ते थे, उतने कार्य शायद ही किसी राज्याधिकारी को संसार में करने पड़ते हों। यही कारण था कि बिस्मार्क ने कुछ समय के बाद एक उपमंत्री नियत किया जो उसकी बीमारी के दिनों में कार्य करता था। इसी प्रकार उपमंत्री की तरह अन्य राजकीय विभागों में भी उसने अस्थिर रूप से कुछ व्यक्तियों को नियत किया जो उस समय उस विभाग का कार्य चलाते थे जब बिस्मार्क, कार्य अधिक होने से, उन विभागों पर ध्यान न दे सकता था। सारांश यह कि बिस्मार्क

ने साम्राज्य का संपूर्ण भार अपने ऊपर ले लेना स्वीकृत कर लिया; परंतु उसने मंत्रिविभाग का इसलिये निर्माण न किया कि कहीं उसके कार्य में विघ्न न पड़े। बिस्मार्क के अनंतर महामंत्री की शक्ति जर्मनी में कम हो गई; और वह किस प्रकार कम हो गई, यही हम अब दिखाने का यत्न करेंगे।

जर्मनी की प्राचीन शासन-पद्धति में महामंत्री की शक्ति तथा उसका कार्य ध्यान देने योग्य है। सम्राट् तथा प्रतिनिधि सभा के साथ उसी का सीधा संबंध कहा जा सकता था। राष्ट्र सभा के साथ महामंत्री का कितना घनिष्ठ संबंध था, यह भी दिखाया जा चुका है। इन सब कार्यों का कर्त्ता धर्ता यदि एकमात्र महामंत्री ही हो तो उसे अनंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ जाय, क्योंकि संपूर्ण साम्राज्य का उत्तरदायित्व एकमात्र उसी पर आ पड़े। परंतु ऐसा नहीं है। नौविभाग, विदेशीय विभाग तथा कुछ मुख्य मुख्य सेना संबंधी पदाधिकारियों के नियत करने आदि के कार्य को छोड़कर अन्य शेष सब कार्यों में उसे पर्याप्त सहायता मिल जाती। महामंत्री के पास राष्ट्रीय प्रबंध तथा कार्यों के निरीक्षण का भार ही बहुत कुछ रह जाता था। सम्राट् या राष्ट्र के कोई राजा भी महामंत्री के पद पर अपना प्रभुत्व नहीं प्रकट कर सकते थे। प्रतिनिधि सभा तथा राष्ट्र सभा में महामंत्री की शक्ति बहुत परिमित थी। इसमें संदेह नहीं कि महामंत्री ही राष्ट्र सभा का प्रधान

महामंत्री की शक्ति

होता था, परंतु वहाँ उसका अधिकार नाम मात्र का होता था। प्रशिया की ओर से बोलने तथा सम्मति देने को छोड़कर राष्ट्र सभा में महामंत्री को कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं था। साम्राज्य की नीति चलाने में उसका कुछ भी हाथ नहीं था। राष्ट्र सभा में जाकर महामंत्री कहीं खिलौना ही न हो जाय, अतः उसे प्रशिया की ओर से प्रतिनिधि चुन लिया जाता था। परंतु इस दशा में भी उसकी क्या शक्ति कही जा सकती थी जब कि उसे प्रशियन राष्ट्र की सम्मति ही वहाँ पर देनी पड़ती थी। इतना ही नहीं; यदि कहीं प्रशियन मंत्रिसभा का महामंत्री से किसी नियम के विषय में झगड़ा हो जाता, तो महामंत्री की शक्ति और भी कम हो सकती थी। परंतु प्रायः ऐसा नहीं होता था।

ऊपर हम देख चुके हैं कि प्राचीन जर्मन शासन-प्रणाली में महामंत्री की शक्ति बहुत ज्यादा थी। परंतु भूतपूर्व कैसर विलियम द्वितीय के जमाने में यह उतनी न रह सकी। इसका बहुत कुछ अंश सम्राट् ने अपने हाथ में ले लिया और महामंत्री के पास वास्तव में बहुत थोड़ी शक्ति बच पाई। यह बात किस प्रकार हुई, यह हम नीचे लिखते हैं।

बिस्मार्क के पदत्याग करने पर विलियम द्वितीय ने कैप्रिवी नामक महाशय को महामंत्री बनाया। कैप्रिवी विलियम की सम्मति पर चलनेवाला व्यक्ति था, अतः विलियम ने इसे प्रशियन सभा का प्रधान भी बना दिया। परंतु १८६२ में

पाठशाला संबंधी प्रस्ताव पर कुछ झगड़ा हुआ, जिससे उसने प्रशियन सभा की प्रधानता छोड़ दी तथा वह एकमात्र महामंत्री के पद पर ही रहा। इस घटना का परिणाम यह हुआ कि महामंत्री की शक्ति बहुत ही कम हो गई। विलियम ने भी इस समय यह अनुभव कर लिया था कि भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न व्यक्तियों के होने ही से उसकी शक्ति बढ़ सकती है। सभी स्थानों पर बिस्मार्क की तरह एक ही व्यक्ति के हो जाने से उसकी शक्ति पर बड़ा भारी धक्का पहुँचता था। कैप्रिवी के एकमात्र महामंत्री रह जाने से विलियम की शक्ति बढ़ गई। कैप्रिवी के महामंत्रित्व में बिस्मार्क का बड़ी चतुरता तथा बुद्धिमत्ता से खड़ा किया हुआ सारा महल मटियामेट हो गया। कोई समय था जब कि बिस्मार्क ही जर्मनी का एकमात्र कर्ता धर्ता था, परंतु अब वह दशा न थी। बिस्मार्क ने बहुत अधिक परिश्रम करके महामंत्री के पद की जो शक्तियाँ बढ़ाई थीं, वे सबकी सब विलियम की बुद्धिमत्ता से काफूर हो गईं। महामंत्री का प्रतिनिधि सभा में भी वह बल न रहा जो उसका उस समय था जब कि वह संपूर्ण साम्राज्य की शक्ति का प्रतिनिधि था। महामंत्री के प्रशिया की प्रधानता छोड़ने से उसकी शक्ति दो स्थानों में विभक्त हो गई। सम्राट् की शक्ति इस विभेद से बहुत ही अधिक बढ़ गई। इतना होने पर भी यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि सम्राट साम्राज्य की

सभाओं में स्वयं नहीं जा सकता था तथा वह सीधे तौर पर प्रतिनिधियों को प्रभावित करने में सर्वथा असमर्थ था, अतः वह स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। महामंत्री कैप्रिवी तथा प्रशियन प्रधान पूलन्बर्ग का पारस्परिक विरोध था। १८६४ में यह विरोध यहाँ तक बढ़ा कि उनका मिलकर काम करना असंभव हो गया। सम्राट् ने बुद्धिमत्ता से दोनों को ही पदच्युत कर दिया तथा होहन्लोही शिलिं फर्स्ट को दोनों पदों का अधिकारी बनाकर सारे राष्ट्र की बागडोर अपने हाथ में कर ली। प्रिंस बिस्मार्क ने जिस समय दोनों पदों को अपने हाथ में लिया था, उस समय उसका उद्देश्य अपनी शक्ति को बढ़ाना था। परंतु विलियम द्वारा महामंत्री को दोनों ही पद दिलवाने से विलियम की शक्ति बढ़ गई। इस शासनपद्धति में सम्राट् के द्वारा महामंत्री का नियत किया जाना जहाँ सम्राट् की शक्ति को बढ़ाता था, वहाँ सम्राट् का साम्राज्य का संपूर्ण कार्य महामंत्री द्वारा ही कराना उसे स्वेच्छाचारी होने से रोकता था। सम्राट् का महामंत्री के साथ क्या संबंध था, यह विस्तृत रूप से दिखाया जा चुका है। अब हम यह दिखाने का यत्न करेंगे कि सम्राट् का जनता के प्रतिनिधियों के साथ क्या संबंध था।

प्रतिनिधि-सभा की सम्मति पर ही सम्राट् को आर्थिक सहायता मिल सकती थी, अन्यथा नहीं। यदि सम्राट् प्रतिनिधि-सभा की सम्मति पर न चले तो उसे प्रतिनिधि-सभा

आर्थिक सहायता देना बंद कर सकती थी। धन बिना सम्राट् का साम्राज्य का शासन करना बहुत कठिन था। जर्मन प्रतिनिधिसभा में सभ्य बहुत से दलों में विभक्त थे। इस दशा में प्रतिनिधि-सभा का सम्राट् को अपनी इच्छा पर चला लेना बहुत कुछ कठिन था। क्योंकि सम्राट् कुछ दलों को अपनी ओर करके जो चाहे, कर सकता था तथा पर्याप्त आर्थिक सहायता भी प्राप्त कर सकता था। सारांश यह कि जर्मनी में सम्राट् की शक्ति लोक सभा के दलों पर निर्भर रहती थी।

हम जर्मन साम्राज्य की शासन-प्रणाली का वर्णन कर चुके हैं। यह भी विस्तारपूर्वक दिखा चुके हैं कि शासन-प्रणाली में किन किन अंगों की कितनी कितनी शक्ति थी। किंतु नवीन शासन-पद्धति पर लिखने से पहले हम प्रशिया की प्राचीन शासनप्रणाली का कुछ वर्णन किए बिना नहीं रह सकते। प्रशिया की शासन-प्रणाली लिखने के बाद अगले परिच्छेद में हम जर्मनी की अर्वाचीन शासन-प्रणाली का वर्णन करने का यत्न करेंगे।

प्रशिया

प्रशियन शासन-पद्धति का उद्भव

१८४८ की जर्मन क्रांति के अनंतर १८५० की ३१ जनवरी को राजा ने प्रशिया की वर्त्तमान कालीन शासन-पद्धति को स्वीकार किया। किंतु अंत तक भी प्रशियन उदार दलवालों की यह सम्मति रही कि उनकी शासन-पद्धति में वह स्वातंत्र्य नहीं है जो कि वे चाहते हैं। यह क्यों?

इसका कारण यह है कि जाति में जब यह शासन-पद्धति प्रचलित की गई, उस समय उसमें वह शक्ति न थी जिससे वह राजा को किसी कार्य के लिये विशेष रूप से बाध्य कर सकती। विचित्रता तो यह है कि प्रशियन शासन-पद्धति में जो नियम-धाराएँ थीं, प्रजा के निःशक्त होने से राज्य उन पर भी कार्य नहीं करता था तथा बहुत सी बातों में स्वेच्छाचारी था। दृष्टांत के तौर पर शासन-पद्धति के अनुसार जनता की शिक्षा में राजा का हाथ नहीं हो सकता था, परंतु चिरकाल से इस विषय में जनता ने कुछ भी ध्यान न दिया तथा इस विषय में कोई नियम तक न बनाया। परिणाम यह हुआ कि प्रशिया में राजा की आज्ञा के बिना एक भी जातीय विद्यालय नहीं खोला जा सकता था। यद्यपि खुले मैदान बहुत से निःशस्त्र मनुष्य एकत्र हो सकते थे, परंतु प्रत्येक समिति के लिये जनता को पुलिस को सूचना देनी पड़ती थी। सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि पुलिस प्रत्येक प्रकार की समिति में कार्रवाई सुनने के लिये जा सकती थी और जिस समिति को चाहे, बर्खास्त भी कर सकती थी। इसमें संदेह नहीं है कि स्थानीय स्वराज्य (Local Self-Government) तथा न्यायालयों के कारण कुछ स्वतंत्रता बढ़ गई थी, परंतु वास्तव में जनता की वैयक्तिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रता बहुत कुछ प्रतिबद्ध सी ही थी। प्रशियन शासन-पद्धति की नियम-धाराओं के अनुसार जातीय सभा

तथा राजा द्वारा नियम शीघ्र ही बनाए जा सकते थे। किसी प्रस्ताव के राज्यनियम बनने के लिये वहाँ दो बार सम्मतियाँ ली जाती थीं जिनका पारस्परिक अंतर २१ दिन का होता था।

प्रशियन राष्ट्र का अधिपति राजा ही समझा जाता था, यद्यपि शासन-पद्धति के अनुसार उसकी शक्ति बहुत कुछ परिमित थी। राजा का उत्तराधिकारी उसी के वंश का कोई पुरुष होता था।

राजा

प्रशिया में स्त्री राज्य पर नहीं बैठ सकती थी। राज्यनियम के बनने के लिये जातीय सभा की स्वीकृति आवश्यक थी और राजा के हस्ताक्षर भी होने आवश्यक थे। राज्याधिकारियों को नियत करना प्रशिया के राजा के हाथ में था। राजा ही वहाँ भिन्न भिन्न व्यक्तियों को मानसूचक उपाधियाँ दिया करता था।

प्रशिया की शासन-पद्धति के अनुसार राजा के प्रत्येक कार्य पर किसी न किसी मंत्री के हस्ताक्षर का होना आवश्यक था। मंत्री ही पर राजा के कार्यों का उत्तरदायित्व था। परंतु यहाँ पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मंत्रियों का उपरिलिखित उत्तरदायित्व राजा के ही प्रति था, न कि प्रजा के प्रति। प्रशियन मंत्रियों तथा उनके प्रतिनिधियों को राज्य की दोनों सभाओं में बोलने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। मंत्री लोगों के प्रति सभाओं

मंत्रिसभा

की विरुद्ध सम्मति भी हो जाय, तो भी वे लोग अपना पद त्याग नहीं करते थे। यह इसी लिये कि मंत्री लोग राजा के कर्मचारी होते थे, न कि प्रजा के। देशद्रोह, घूस तथा शासन-पद्धति के अतिक्रमण संबंधी कुछ दोष यदि सभा में मंत्रियों पर लगाए जाते तो उनको दंड मिल सकता था। परंतु दंड क्या दिया जाय, यह शासन-पद्धति की नियमधाराओं में नहीं लिखा हुआ था। इन सब स्वतंत्रताओं के होते हुए भो आय-व्यय समिति द्वारा प्रशियन मंत्रियों पर पर्याप्त बाधा लगी हुई थो। आय-व्यय समिति के सभ्य न्यायाधीशों के सदृश मंत्रियों के शासन की सीमा से बाहर थे। इस समिति का कार्य राजकीय भिन्न भिन्न विभागों के आय-व्यय का निरीक्षण करना था तथा उसकी सूचना जातीय सभा को देना था। इस दशा में जातीय सभा यदि किसी विभाग को अधिक धन देना न मंजूर करे, तो इस विषय में मंत्री को दबना पड़ता था और यह मंत्रियों पर पर्याप्त बाधा थी।

प्रशियन मंत्रिसभा के प्रधान मंत्री को अपने साथियों पर एक भी अधिकार नहीं प्राप्त था और न वह अपने विचारों पर दूसरे मंत्रियों को चलने के लिये बाध्य कर सकता था। प्रशियन मंत्रिसभा का अँगरेजी मंत्रिसभा से कुछ भी सादृश्य नहीं था। जिस समय देश पर विपत्ति पड़ी हो और प्रतिनिधि सभा की बैठक न हो, उस समय मंत्रिसभा अस्थिर रूप से नवीन नियम बना सकती थी तथा देश में उन्हें

प्रचलित कर सकती थी। परंतु प्रतिनिधि सभा की बैठक के आरंभ होते ही मंत्रिसभा का यह कर्तव्य था कि वह उन नियमों को पास करवाकर स्थिर बना ले। सामयिक प्रश्नों पर विचार करने के लिये इसका साप्ताहिक अधिवेशन होना अत्यंत आवश्यक था। मंत्रिसभा में बहुसम्मति से पास हुई किसी बात पर मंत्रियों का चलना आवश्यक नहीं था। इस प्रकार के कार्य से केवल एक ही लाभ होता था। वह यह कि राजा को यह सूचना मिल जाती थी कि अमुक अमुक बातों पर मंत्रियों की बहुसंख्या की क्या सम्मति है। प्रशिया में मंत्री लोग एक दूसरे के अधीन नहीं थे। वे अपनी ही सम्मति पर सदा काम किया करते थे। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि प्रशियन मंत्री एकमात्र राजा के ही प्रति उत्तरदायी था। राजा जिस मंत्री से असंतुष्ट होता, उसे पृथक् कर देता था। राजा मंत्रियों को उनकी शासन की शक्ति के कारण चुनता था, न कि विचार की शक्ति के कारण। प्रशियन मंत्री लोग अपने पैरों पर आप खड़े रहते थे। उन्हें किसी दूसरे के अपराध के कारण स्वयं गिरना नहीं पड़ता था।

प्राचीन प्रशियन शासन-पद्धति की आय-व्यय समिति तथा आर्थिक समिति का कार्य ध्यान देने योग्य है, अतः अब उसी पर कुछ लिखा जायगा।

आय-व्यय समिति के सभ्यों को न्यायाधीशों के सदृश ही अधिकार प्राप्त था, यह हम अभी लिख चुके हैं। राष्ट्रीय

मंत्रिसभा की सम्मति के अनुसार राजा आय-व्यय समिति के प्रधान को चुन लिया करता था। प्रधान जिन जिन व्यक्तियों को निर्देश करता था, उन्हीं व्यक्तियों को राजा आय-व्यय समिति के सभ्य के तौर पर चुन लिया करता था। यह समिति सीधे तौर पर राजा के प्रति ही जिम्मेवार थी। मंत्रिसभा से इसका उत्तरदायित्व संबंधी कुछ भी संबंध न समझना चाहिए। यह समिति ही राज्य के संपूर्ण विभागों के आय-व्यय की पड़-ताल किया करती थी तथा संपूर्ण कार्यों की सूचना प्रतिनिधि-सभा में भेज दिया करती थी। यह तो हुआ आय-व्यय समिति का कार्य; अब हम आर्थिक समिति के कार्य पर भी एक दो शब्द लिख देना आवश्यक समझते हैं। धन संबंधी भिन्न भिन्न राज्यनियमों का जाति की आर्थिक दशा पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका देखना इस समिति का कार्य था। आर्थिक मामलों में प्रशिया को साम्राज्य की राष्ट्र सभा में किस ओर अपनी सम्मति देनी चाहिए, इसका निर्णय भी यही किया करती थी। राजा के पास आर्थिक प्रस्ताव भेजने से पूर्व वे इस समिति के पास भेजे जाते थे। इस समिति का कार्य एकमात्र सलाह देना ही कहा जा सकता है। इसके बहुत से सभ्य पाँच वर्ष के लिये राजा द्वारा नियत किए जाते थे और ४५ सभ्य देश की भिन्न भिन्न व्यापारिक और व्यावसायिक समितियों द्वारा चुने हुए आते थे।

आय-व्यय समिति तथा आर्थिक समिति

जातीय सभा तथा राजा मिलकर प्रशिया में राज्यनियम बना सकते थे, यह पूर्व ही लिखा जा चुका है। जातीय सभा लार्ड सभा तथा प्रतिनिधि सभा को मिलाकर कहा जाता था। प्रायः ये दोनों सभाएँ अपने अधिवेशन पृथक् पृथक् ही किया करती थीं। परंतु यदि कोई आवश्यक कार्य आ पड़ता था तो ये दोनों सभाएँ जाति सभा के रूप में परस्पर मिलकर अपने अधिवेशन कर लेती थीं। वर्ष में जातीय सभा का एक बार बैठना आवश्यक था। राजा जब चाहे तब जातीय सभा को दूसरी बार चुनाव के लिये प्रेरित कर सकता था।

जातीय सभा

जातीय सभा की नियामक शक्ति अति विस्तृत थी। कोई नियम राज्यनियम नहीं हो सकता था जब तक कि जातीय सभा की स्वीकृति न होती। वार्षिक आय-व्यय, कर, जातीय ऋण आदि के विषय में इसकी स्वीकृति अत्यंत आवश्यक थी। जातीय सभा अपनी ओर से भी प्रस्ताव पेश कर सकती थी, परंतु प्रायः मंत्री लोग ही ऐसा करते थे।

शासन पर जातीय सभा का प्रभाव बहुत ही न्यून था। जातीय सभा शासकों के कार्य के निरीक्षण के लिये अपनी 'निरीक्षक समिति' बैठा सकती थी। परंतु साथ ही राज्य अपने शासकों को यहाँ तक रोक सकता था कि वे निरीक्षक समिति को किसी बात की भी सूचना न दें। मंत्रियों का कथन था कि जातीय सभा की अन्य समितियों के सदृश निरीक्षक

समिति का भी उनसे कोई संबंध न होना चाहिए। सारांश यह कि भिन्न भिन्न विभागों के शासन पर जातीय सभा अपनी सम्मति प्रकट कर सकती थी, जिसका वास्तविक प्रभाव कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जातीय सभा की दोनों ही सभाएँ अपने अपने प्रधान को अपने आप चुनती थीं। जर्मन राष्ट्रसंघटन की जातीय सभा के सदृश ही इसकी बहुत सी बातें थीं। उसी के सदृश इसको भी समझना चाहिए।

प्रशियन प्रतिनिधि सभा में सभ्यों की संख्या लगभग ४३३ थी। संपूर्ण प्रशिया अनेक जिलों में विभक्त था, जिनमें से प्रत्येक

प्रतिनिधि सभा

जिले में प्रतिनिधि सभा के सभ्य चुननेवालों की संख्या नियत थी। ३० वर्ष की उमर से अधिक उमरवाला व्यक्ति ही प्रतिनिधि के तौर पर चुना जा सकता था। चुननेवालों के अपनी अपनी संपत्ति के अनुसार तीन विभाग थे। जो व्यक्ति संपूर्ण कर का $\frac{1}{3}$ भाग देते थे, वे प्रथम श्रेणी में गिने जाते थे। जो व्यक्ति अवशिष्ट $\frac{1}{3}$ भाग कर में देते थे, वे द्वितीय श्रेणी में गिने जाते थे। इसी प्रकार जो बचा हुआ तिहाई भाग कर में देते थे, वे तृतीय श्रेणी के व्यक्ति कहे जाते थे। प्रत्येक श्रेणी कुल सभ्यों का $\frac{1}{3}$ स्वयं चुनती थी। इस प्रकार श्रेणियों द्वारा चुने हुए व्यक्तियों को राज्य की ओर से यह अधिकार प्राप्त था कि वे प्रधिनिधि सभा के सभ्यों का चुनाव करें। जब किसी सभ्य का प्रतिनिधि सभा में स्थान रिक्त हो जाता था

तब प्रतिनिधि सभा उसके स्थान पर किसी व्यक्ति को स्वयं नहीं चुनती थी, अपितु उन चुननेवालों को ही सूचना भेज देती थी। वे ही चुनकर प्रतिनिधि सभा में सभ्य को भेजते थे। यह चुनने का नवीन नियम १८४९ में प्रशिया में आरंभ किया गया था। इस रीति से संपत्तिवालों को विशेष अधिकार प्राप्त थे; परंतु निर्धनों तथा दरिद्रों के अधिकार भी छीने नहीं गए थे।

चौथा परिच्छेद

जर्मनी

(गत परिच्छेद से आगे)

अर्वाचीन शासन-पद्धति

पिछले परिच्छेद में हम जर्मनी की प्राचीन शासन-पद्धति का वर्णन कर चुके हैं। साथ ही हमने यह भी बताया है कि उस शासन-पद्धति में जर्मन सम्राट् का क्या स्थान था। जर्मन सम्राट्, प्रशिया का राजा होने के कारण और महामंत्री को अपने काबू में कर लेने के कारण जर्मनी का सर्वे-सर्वा ही हो गया था।

विलियम द्वितीय, जो जर्मनी का आखिरी सम्राट् था, बड़ा बुद्धिमान, चतुर तथा परिश्रमी था। उसकी उमंगें नेपो-लियन तथा सिकंदर के सदृश थीं। उसने बिस्मार्क से शक्ति लेकर अपने हाथ में की और जर्मन साम्राज्य की वृद्धि में दत्त-चित्त हुआ। राजनीतिक शक्ति के सहारे उसने जर्मनी की नौशक्ति तथा स्थलशक्ति बढ़ाई। विद्या, विज्ञान तथा व्यापार व्यवसाय की उन्नति में भी उसने विशेष ध्यान दिया।

विलियम कैसर की शक्तिवृद्धि से फ्रांस भयभीत था। छिपे छिपे उसने इँग्लैंड से मित्रता की। रूस के जार को

भी उसने जर्मनी के विरुद्ध उत्तेजित किया। द्वेषाग्नि शनैः शनैः बढ़ती गई।

इधर जर्मनी में समष्टिवादी दलवाले राजकीय सुधार की आवाज उठा रहे थे। वे जनता के प्रति उत्तरदायी मंत्रिसभा स्थापित करना चाहते थे और प्रशिया को प्रतिनिधि चुनने की विधि और रीशटैग के सभ्यों में हेर फेर करने की आवाज उठा रहे थे। विलियम कैसर ने इस आवाज को शांत करने के लिये अच्छा अवसर पाया। सन् १९१४ के अगस्त में उसने युद्ध आरम्भ कर दिया। कुछ काल के लिये जनता का आंदोलन बंद हो गया। जब तक जर्मनी विजय प्राप्त करता रहा, तब तक तो सब जर्मन जी जान से लड़ाई में लगे रहे; किंतु जब अंत में भाग्य का पलड़ा जर्मनी के विरुद्ध झुकने लगा, तब जर्मनों का धीरज जाता रहा। खाने पीने तक के लिये जर्मन मुहताज हो रहे थे। ऐसी अवस्था में जनता ने फिर राज-नीतिक आंदोलन खड़ा किया। पहले तो अधिकारियों ने इसे सख्ती से दबाने का प्रयत्न किया। किंतु इसका कुछ नतीजा नहीं निकला। आखिर को सरकार ने घोषणा की कि जर्मनी को कुछ सुधार दिए जायँगे, परंतु वे लड़ाई के खतम होने के पहले कार्य में नहीं लाए जायँगे।

इसी बीच कुछ ऐसी मार्के की घटनाएँ हुईं जिनसे जर्मन जनता और भी उत्तेजित हो उठी और स्थिति सरकार के काबू से बाहर हो गई। पहली घटना तो मार्च १९१७ की रूस की क्रांति

थी और दूसरी जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई में अमेरिका का पदा था।
रूस की क्रांति ने जर्मनी की जनता को इस बात के लिये उत्साहित किया कि जिस प्रकार रूस ने जार को रूस की गद्दी से उतार दिया, उसी प्रकार जर्मन जनता भी कैसर को राज्य-पद से विहीन कर सकेगी। यहाँ तक कि एक समष्टिवादी दलवाला सभ्य रीशटैग के प्लेटफार्म पर चढ़कर यह घोषणा करने लगा कि जर्मनी में प्रजातंत्र राज्य अवश्यमेव होगा। रीशटैग में बड़े जोरों के व्याख्यान होने लगे, जो सब प्रचलित जर्मन शासनपद्धति के विरुद्ध थे। सरकार के पास सिवा रीशटैग को बरखास्त करने के और कोई चारा नहीं बचा।

इसी प्रकार अमेरिका के युद्ध में सम्मिलित होने के बाद जर्मन जनता का विजय का रहा सहा विश्वास जाता रहा; और यदि कुछ विजय की भी आशा करते, तब भी यह तो स्पष्ट ही था कि लड़ाई का शीघ्र अंत नहीं होगा। सरकार झूठी झूठी जीत की खबरें देती रही, परंतु इससे भी लोगों का धैर्य नहीं बँधा और उनकी उत्तेजना बढ़ती गई। अब वे अपनी गिरी हुई दशा के लिये विलियम कैसर और सरकार को दोष देने लगे और यह चाहने लगे कि शीघ्र ही इसका अंत हो और जर्मनी में प्रजातंत्र राज्य स्थापित हो।

कुछ दिनों तक तो जर्मन सरकार ने लोगों को भुलावे में रखा, किंतु अंत में जगह जगह जर्मन सेना परास्त होने लगी और जर्मनी के छक्के छूट गए। सरकार ने एक दम

संधि की प्रार्थना करते हुए अमेरिका के प्रधान महाशय विल्सन के पास तार पर तार भेजे। इधर समष्टिवादियों की माँग भी एक के बाद एक मंजूर की। महाशय विल्सन ने इस प्रार्थना का जो जवाब भेजा, उसका आशय यही था कि जब तक जर्मनी अपनी शासन-पद्धति बिलकुल बदल न देगा, तब तक उसकी कोई सुनाई नहीं होगी। इस जवाब ने साम्राज्य-प्रेमियों की रही सही आशा तोड़ दी और जगह जगह से सम्राट् को गद्दी से उतार देने और पूर्ण रीति से प्रजा का प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य स्थापित करने की आवाज उठने लगी।

यह दशा देख सम्राट् गद्दी छोड़कर भाग गया और महामंत्री के हाथ में सारा भार सौंप गया। महामंत्री ने ९ नवंबर सन् १९१८ को सम्राट् के पदत्याग की घोषणा कर दी। स्वयं अपना अधिकार उसने समष्टिवादियों के नेता एबर्ट को सौंप दिया। सम्राट् हालेंड भाग गया; और यही उसके लड़कों ने भी किया। साम्राज्य के अन्य राजाओं ने भी अपना अपना अधिकार बिना किसी अड़चन के प्रजा को सौंप दिया।

शासन की बागडोर पाते ही एबर्ट ने शीघ्र ही छः सभ्यों की एक सभा स्थापित की और घोषणा की कि शीघ्र ही संपूर्ण जर्मन राष्ट्र की एक प्रतिनिधि सभा बुलाई जायगी जो नवीन जर्मन शासनप्रणाली का निर्माण करेगी। यह छः सभ्यों की सभा काम-चलाऊ सरकार कहलाई।

एबर्ट की घोषणा के अनुसार जनवरी सन् १९१९ में शासनप्रणाली निर्माण करने के लिये जर्मनी की प्रतिनिधि सभा की बैठक हुई। इस सभा में कुल ४२३ सभ्य चुने गए थे जिनमें ३९ स्त्रियाँ थीं। सभ्यों को चुनने में प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष को मत देने का अधिकार था। अगले ही महीने में विश्रामर में, इस सभा ने शासनप्रणाली बनाने का कार्य आरंभ किया। ३१ जुलाई सन् १९१९ को यह कार्य पूरा हो गया, और ११ दिन बाद ही नवीन शासन-प्रणाली कार्य रूप में परिणत हो गई। प्रतिनिधि सभा से पास होने के बाद यह जनता की राय के लिये उसके समक्ष नहीं रखी गई।

इस नवीन जर्मन शासनप्रणाली ने जर्मनी में राष्ट्रसंघटनात्मक शासनपद्धति ही स्थापित की। हम पिछले परिच्छेद में देख चुके हैं कि सन् १९१८ के पूर्व जर्मन साम्राज्य भी राष्ट्रसंघटनात्मक राज्य कहलाता था; किंतु वास्तव में इस राष्ट्रसंघटन में सच्चे राष्ट्र-संघटन का वह सबसे प्रथम गुण नहीं था जिसके बिना हम किसी राज्य को ठीक तरह से राष्ट्रसंघटनात्मक नहीं कह सकते। वह यह कि जर्मन राष्ट्रसंघटन में जो जो राज्य शामिल थे, वे बराबर बराबर नहीं थे और न उनको बराबर अधिकार ही मिले थे। प्रशिया सबसे बड़ा था और इस कारण उसको विशेष अधिकार भी प्राप्त थे। नवीन जर्मन शासनपद्धति के निर्माणकर्त्ताओं ने जर्मनी को

नवीन जर्मन राष्ट्रसंघटन

सञ्चा राष्ट्रसंघटनात्मक राज्य बनाने का प्रयत्न किया और उन्होंने प्रशिया को ६-७ छोटे छोटे राष्ट्रों में विभक्त करने का इरादा किया। किंतु जनता को यह पसन्द न था। लोग प्रशिया को विभक्त करने को तैयार नहीं थे। फल यह हुआ कि प्रशिया का राष्ट्र तो जैसा का तैसा रहा, किंतु जर्मन राष्ट्रसंघटन में उसका अधिकार पहले जैसा अपरिमित नहीं रह सका। उसके बहुत से अधिकार कम कर दिए गए। अब नवीन राष्ट्रसभा (रीशस्रेत) पर उसका इतना कब्जा नहीं है जितना कि पुरानी बुंदेस्रेत पर था।

भिन्न भिन्न राष्ट्रों का राष्ट्रसंघटन से संबंध

यद्यपि ऊपर से देखने में नवीन राज्य राष्ट्रसंघटनात्मक है, तथापि वास्तव में हम उसे राष्ट्रसंघटनात्मक नहीं कह सकते। प्राचीन शासनपद्धति में शासन का मुख्य अधिकार भिन्न भिन्न राज्यों के हाथ में था और केंद्रीय सरकार के हाथ में बहुत कम अधिकार थे। यदि केंद्रीय सरकार बहुत बलशाली मालूम होती थी, तो इसका कारण यही था कि लोग सम्राट् के अधीन केंद्रीय सरकार और प्रशिया के राजा के नीचे प्रशियन सरकार में कुछ भेद नहीं समझते थे; क्योंकि, जैसा हम बता ही चुके हैं, प्रशिया का राजा और जर्मन सम्राट् एक ही व्यक्ति था और साम्राज्य में प्रशिया बहुत ही बड़ा था। किंतु इस नवीन शासनप्रणाली के अनुसार अब शासनाधिकार भिन्न भिन्न राष्ट्रों से खिसककर केंद्रीय सर-

कार के हाथ में आ गया है। अब भिन्न भिन्न राष्ट्र संपूर्ण जर्मन जनता की ही इच्छा पर राज्य करते हैं और केवल उन्हीं से संबंध रखनेवाले विषय बहुत थोड़े हैं। कई लोग तो यह प्रश्न भी करते हैं कि नवीन जर्मन-शासनप्रणाली को राष्ट्रसंघटनात्मक कहना ठीक है अथवा नहीं? यह तो सत्य है कि यदि केंद्रीय सरकार वीमर-शासनपद्धति द्वारा प्रदत्त सारे अधिकार जमाने लगे तो भिन्न भिन्न राष्ट्रों के अधिकार में कुछ भी नहीं बच रहेगा। उस अवस्था में भिन्न भिन्न राष्ट्र एक बड़े राष्ट्र के भिन्न भिन्न प्रांत के ही सदृश हो जायँगे, जिन्हें केवल अपनी केंद्रीय सरकार की आज्ञा ही मानने का अधिकार बच रहेगा।

नई शासनप्रणाली किस प्रकार बदली जा सकती है

नई शासनप्रणाली के अंगों का वर्णन करने के पहले हम यह बताना चाहते हैं कि नवीन शासनप्रणाली किस तरह बदली जा सकती है। पहले तो जर्मन पार्लिमेंट की दोनों सभाएँ अपने अपने $\frac{2}{3}$ वोटों से कोई अदल बदल कर सकती हैं। किंतु यदि प्रतिनिधि सभा के किसी प्रस्ताव पर राष्ट्रसभा सहमत नहीं होती, तो वह प्रस्ताव दो हफ्ते बाद राज्यनियम बन जाता है, बशर्ते कि राष्ट्र सभा जनसम्मति के लिये उस प्रस्ताव को रोकना न चाहे। अगर जनसम्मति के लिये वह प्रस्ताव रोक लिया जाता है और यदि उसे जनता पास कर दे तो वह राज्यनियम हो जाता है,

अन्यथा नहीं। दूसरे, जनता को स्वयं भी शासनपद्धति के बदलने का प्रस्ताव करने का अधिकार है। इस प्रस्ताव का निर्णय जनता ही करती है। परंतु यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ शासनपद्धति बदलने के लिये जनसम्मति ली जाती है, वहाँ जितने कुल रजिस्टर्ड वोटर हैं, उनकी ही बहुसंख्या होनी चाहिए, न कि उनकी जितने कि वास्तव में वोट देते हैं।

जर्मन शासनपद्धति की सर्वप्रथम यही घोषणा है कि जर्मन राष्ट्रसंघटन प्रजा का प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है और उसके सारे राजनीतिक अधिकार जनता से ही प्राप्त हैं। राष्ट्र-संघटन के प्रत्येक राष्ट्र का भी प्रजा का प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य होना आवश्यक है। इनको प्रजा के प्रति उत्तरदायी मंत्रिसभा रखनी होगी और अपनी व्यवस्थापिका सभा के प्रति-निधि चुनने के लिये सब बालिग स्त्री-पुरुषों को प्रत्यक्ष, किंतु गुप्त रीति से, मत देने का अधिकार होगा। प्रतिनिधि चुनने में जनसंख्या का कुछ खास अनुपात रखना भी आवश्यक होगा। उपर्युक्त हद के अंदर प्रत्येक राष्ट्र को अधिकार है कि वह चाहे जैसी अपनी शासनपद्धति निर्माण करे।

हम ऊपर कह आए हैं कि केंद्रीय सरकार के पास ही शासन के मुख्य अधिकार हैं। किंतु यह किस प्रकार है? शासन-पद्धति के अनुसार कुछ निर्दिष्ट शक्ति केंद्रीय सरकार को प्राप्त है और विशिष्ट शक्ति राष्ट्रों को प्राप्त है। किंतु अन्य राष्ट्रसंघटनात्मक राज्यों के

शक्तिसंविभाग

मुकाबले जर्मनी का शक्तिसंविभाग कुछ भिन्न है। अमेरिका में केंद्रीय सरकार को कुछ शक्ति प्राप्त है और इसके अंतर्गत जितने विषय हैं, वे सब करीब करीब एक से ही माहात्म्य के हैं। किंतु जर्मनी में ये विषय कई प्रकार के हैं। प्रथम श्रेणी के विषय वे हैं जिनमें केंद्रीय सरकार को पूर्ण अधिकार है और उनमें राष्ट्रीय सरकारों का बिलकुल हस्तक्षेप नहीं है। द्वितीय श्रेणी में वे विषय आते हैं जिनमें जब तक केंद्रीय सरकार कुछ हस्तक्षेप न करे, तब तक राष्ट्रीय सरकार को उन पर पूर्ण अधिकार है। कुछ ऐसे विषय भी हैं जिनमें किसी विशेष अवस्था में केंद्रीय सरकार को राष्ट्रीय सरकार के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है; अर्थात् ऐसे विषय बहुधा राष्ट्रीय सरकार के ही अधिकार में हैं; किंतु विशेष अवस्था प्राप्त होने पर उन्हें केंद्रीय सरकार अपने हाथ में ले लेती है। इनके अतिरिक्त केंद्रीय सरकार को राष्ट्रीय सरकारों के लिये मूल सिद्धांत स्थापित करने का भी अधिकार है। इनके ऊपर राष्ट्रीय सरकार अपनी अपनी इच्छा के अनुसार चल सकती है। अंत में केंद्रीय सरकार पर शासनपद्धति द्वारा कर लगाने के सदृश महत्त्वपूर्ण विषय में कोई विशेष रुकावट नहीं है। जो कुछ रुकावट है भी, वह यही है कि खर्च करते वक्त केंद्रीय सरकार को उस खास राष्ट्र की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना चाहिए जिसका रुपया वह खर्च करती है। जिन विषयों में केंद्रीय सरकार (जर्मन रीश) को ही पूर्ण

रीति से देखना पड़ता है, वे ये हैं—विदेशसंबंधी, उपनिवेशसंबंधी, रक्षा, सिक्का चलाना, पोस्ट आफिस, तार, टेलीफोन, नागरिक तथा विदेशीय निवासी (Citizenship and domiciled), अपराधियों को देशनिकाला देना, जर्मन निवासियों का बाहर जाना और बाहरवालों का जर्मनी में आना (Emigration and immigration) और बेचने के सामान पर कर लगाना (Tariff)। इनके अतिरिक्त जिन विषयों में केंद्रीय सरकार हस्तक्षेप कर सकती है, वे बहुत हैं। इनमें सामाजिक भलाई और जातीय रक्षा संबंधी विषयों में एकता बनाए रखना मुख्य है। जिन विषयों में केंद्रीय सरकार को मूल सिद्धांत स्थापित करने पड़ते हैं, उनमें कर-संबंधी मुख्य है। अतः यह स्पष्ट है कि यदि केंद्रीय सरकार रत्ती रत्ती अपनी शक्ति काम में लाने लगे तो राष्ट्रीय सरकारों के पास बहुत ही कम शक्ति बच रहेगी।

किसी राष्ट्रसंघटनात्मक शासनपद्धति में जब भिन्न भिन्न राष्ट्रों और केंद्रीय सरकार के बीच शक्तिसंविभाग होता है, तब यह स्वाभाविक ही है कि एक ऐसी संस्था की भी स्थापना की जाय जो इस बात का निर्णय कर सके कि केंद्रीय सरकार और राष्ट्रीय सरकार अपनी अपनी हद से बाहर तो नहीं गई। कभी कभी दोनों सरकारों में इस विषय पर झगड़ा भी हो जाता है। इस झगड़े को दूर करने के लिये अमेरिका में तो वहाँ का सबसे बड़ा न्यायालय ही अधिकारी है, किंतु जर्मनी

में वहाँ के सबसे बड़े न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। वहाँ इस प्रश्न के हल करने के लिये एक विशेष न्यायालय है। इसमें प्रतिनिधि सभा तथा बड़े न्यायालय के ही सदस्य और न्यायाधीश बैठते हैं। इस विशेष न्यायालय का अध्यक्ष प्रधान द्वारा नियुक्त किया जाता है।

नवीन शासनप्रणाली के अनुसार जर्मनी में एक कार्यकारिणी सभा, एक व्यवस्थापिका सभा और एक सदर न्यायालय (Supeme Court) स्थापित हुआ है।

प्रधान

राज्य का मुख्य अधिकार प्रधान को मिला है। प्रधान को चुनने के लिये प्रत्येक स्त्री पुरुष को प्रत्यक्ष मत देने का अधिकार है। प्रधान की अवधि सात वर्ष की होती है, किंतु वह पुनः भी चुना जा सकता है। जर्मन शासनपद्धति के अनुसार यहाँ कोई उपप्रधान नहीं चुना जाता। जब कभी प्रधान की जगह खाली हो जाती है, तब उसका कार्य कानून के मुताबिक चलता रहता है। तुरंत ही नया प्रधान चुना जाता है और वह भी पूरे सात वर्ष के लिये प्रधान होता है।

प्रधान के निर्वाचन की रीति भी ध्यान देने योग्य है। लेकिन यह भी बता देना आवश्यक है कि शासनप्रणाली द्वारा कोई विशेष रीति निर्दिष्ट नहीं की गई है। शासनपद्धति तो सिर्फ यही निर्देश करती है कि प्रधान सारी जर्मन जनता द्वारा चुना जायगा। निर्वाचन की सारी रीति मुख्य

प्रधान चुनने की रीति

सरकार के राज्यनियम के अनुसार है। जैसा नियम आज-कल प्रचलित है, प्रधान के निर्वाचन के लिये बहुधा दो बार चुनाव होता है। यदि पहले चुनाव में ही किसी व्यक्ति को बहुत ज्यादा वोट मिल जायँ तो वह उसी निर्वाचन से प्रधान बन जाता है, परंतु जब उम्मेदवारों में किसी एक का विशेष बहुमत नहीं होता, तब १५ दिन बाद दुबारा चुनाव होता है। इसमें जिसे बहुमत प्राप्त हो, वही प्रधान का पद ग्रहण करता है।

प्रधान अपनी अवधि से पहले भी पदत्याग करने के लिये बाध्य किया जा सकता है। इसके दो तरीके हैं। पहला तो सदर-न्यायालय में मुकदमा (Impeachment) चलाकर और दूसरा प्रतिनिधि सभा और जनता के प्रस्ताव के द्वारा। प्रधान को पदच्युत करने का जर्मनी का यह दूसरा तरीका बिलकुल नवीन ही है। अमेरिका में गवर्नर को जनता के प्रस्ताव द्वारा पद-च्युत किया जा सकता है, परंतु प्रधान को नहीं। जर्मनी ही एक देश है जिसका प्रधान जनता के प्रस्ताव से पदच्युत भी हो सकता है। पहले तो प्रतिनिधि सभा $\frac{2}{3}$ मत से प्रधान के पदच्युत करने का प्रस्ताव पास करती है। इसके उपरांत यह प्रस्ताव जन-सम्मति के लिये भेजा जाता है। जनसम्मति यदि पास कर देती है तो प्रधान को अपना पद छोड़ देना पड़ता है। परंतु यदि जनसम्मति ने प्रतिनिधि सभा का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, तो प्रधान को अपना पद नहीं छोड़ना पड़ता,

उलटे उसे उस तारीख से सात वर्ष तक की नवीन अवधि मिल जाती है। साथ ही प्रतिनिधि सभा को भी नवीन सभ्य चुनवाने पड़ते हैं। यह एक विचित्र विधि है और इसमें प्रधान को मामूली सी बात पर पदच्युत होने का डर नहीं है।

कागज पर तो प्रधान के लिये बहुत कुछ शक्तियाँ लिखी हुई हैं, परंतु वास्तव में मंत्रियों का उत्तरदायित्व उन शक्तियों का सारा सार निकाल लेता है। प्रधान की प्रत्येक आज्ञा पर महामंत्री या अन्य किसी मंत्री का हस्ताक्षर होना आवश्यक है। इस हस्ताक्षर से मंत्री अपने सिर पर उस आज्ञा का उत्तरदायित्व ले लेता है और इसके लिये वह प्रधान के प्रति नहीं किंतु प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इसका फल यह होता है कि प्रधान कोई ऐसी आज्ञा नहीं निकाल सकता जो प्रतिनिधि सभा के अनुकूल न हो; क्योंकि यदि प्रतिनिधि सभा के अनुकूल नहीं है, तो उस पर कोई मंत्री हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं होगा—उसके हस्ताक्षर कर देने पर उसे उत्तरदायी बनना पड़ेगा और प्रतिनिधि सभा के प्रतिकूल होने पर उसे अपना पद त्याग करना पड़ेगा। अतः यद्यपि प्रधान को राज्यनियम को कार्य में परिणत कराना, जनता में शांति स्थापित करना, जर्मन राष्ट्रसंघटन के विदेश संबंधी कार्य करना, संधि करना इत्यादि अधिकार प्राप्त हैं, तथापि इनमें प्रधान मनमानी नहीं कर सकता। लड़ाई छेड़ने और शांति स्थापित करने में

प्रधान की शक्ति

प्रधान का कोई अधिकार नहीं है। यह काम प्रतिनिधि सभा के मत से ही हो सकता है।

राज्यनियमों के बनने में प्रधान के हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं होती। किंतु कोई नियम तभी राज्यनियम बनता है जब प्रधान उसको प्रकाशित कर देता है। प्रधान को अधिकार है कि वह स्वयं प्रकाशित न करके किसी नियम को जनसम्मति के लिये भेज दे; और वह नियम तब तक राज्य-नियम नहीं बनता, जब तक जनता उसे पास न कर दे। किंतु यहाँ भी यह ध्यान रखना चाहिए कि इसमें भी प्रधान को पहले किसी उत्तरदायी मंत्री के हस्ताक्षर लेना आवश्यक है। अतः यह स्पष्ट है कि प्रधान के हाथ में वास्तव में बहुत कम शक्ति है। किंतु बहुत कुछ संभावना है कि प्रधान की कुछ शक्ति बढ़ाई जाय।

महामंत्री
Chancellor

महामंत्री प्रधान द्वारा नियत किया जाता है। शासन-पद्धति के अनुसार उसे सरकार की नीति का निर्णय करना पड़ता है और इसके लिये उसे प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी भी होना पड़ता है। वह अपने मातहत मंत्रीगण नियुक्त करता है। ये मंत्री और महामंत्री मिलकर मंत्रिसभा बनाते हैं। इस मंत्रिसभा को एक साथ और प्रत्येक मंत्री को पृथक् पृथक् प्रतिनिधि सभा के बहुमत का आसरा रखना पड़ता है।

मंत्रिसभा के सभ्यों की संख्या शासनप्रणाली द्वारा निर्दिष्ट नहीं है। इसका प्रधान द्वारा महामंत्री की राय से निर्णय किया जाता है। आज-कल जर्मन मंत्रिसभा में १२ मंत्री हैं। इनमें चांसलर (महामंत्री) और वाइस चांसलर शामिल हैं। चांसलर को छोड़ अन्य ११ मंत्रियों के ऊपर एक एक शासन विभाग का भार होता है। वे ग्यारह शासन विभाग इस प्रकार हैं—

मंत्रिसभा

विदेश विभाग, रक्षा विभाग, अर्थ विभाग, कोश विभाग, न्याय विभाग, अंतरीय (Interior) विभाग, डाक और तार विभाग, भोजन विभाग, मजदूर विभाग, उद्योग (Industry) विभाग, और कालापानी विभाग (Transportation)। मंत्रियों को प्रतिनिधि सभा तथा राष्ट्रसभा दोनों में बैठने का अधिकार है। वे बिल पेश कर सकते हैं और बहस भी कर सकते हैं।

राष्ट्र सभा जर्मन पार्लिमेंट की प्रथम सभा है। प्राचीन राष्ट्र सभा के सदृश इसमें शक्ति नहीं है। इसके सभ्यों की नियुक्ति भी अब दूसरे ढंग से ही होती है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी अपनी मंत्रिसभा में से एक न एक व्यक्ति राष्ट्र के प्रतिनिधि के तौर पर भेजता है। प्रत्येक राष्ट्र उतने मंत्री भेज सकता है जितने मत का उसको अधिकार है; और यह जनसंख्या पर निर्भर है। प्रति १०,००००० निवासियों पीछे एक

राष्ट्र सभा
(Reichsrat)

मत मिलता है। किंतु हर एक राष्ट्र को कम से कम एक मत अवश्य मिलता है, चाहे उसकी जनसंख्या दस लाख से कम क्यों न हो; और कोई राष्ट्र कुल सभ्यों के $\frac{२}{५}$ से ज्यादा क साथ नहीं भेज सकता, चाहे उसकी संख्या कितनी ज्यादा क्यों न हो। यह केवल प्रशिया की शक्ति परिमित करने के लिये उपाय है। प्रशिया के लिये केवल यही एक रुकावट नहीं है। प्रशिया को जितने मत प्राप्त हैं, उनमें से केवल आधे ही उसकी मंत्रिसभा के मंत्रियों द्वारा गिने जायँगे, बाकी आधे प्रशिया के प्रांतों में बट जायँगे।

नवीन राष्ट्र सभा में प्राचीन राष्ट्र सभा के सारे दोष निकाल दिए गए हैं। इसकी बैठकें बहुधा जनता के लिये खुली हुई होती हैं। मत भी प्रत्येक सभ्य के ही इच्छानुसार लिया जाता है। किसी राष्ट्र को कमेटियाँ बनाने का विशेष अधिकार प्राप्त नहीं है।

बहुधा अन्य देशों में राष्ट्र सभा का कार्य प्रतिनिधि सभा के बिलों को दोहराने, सुधारने और रोकने का हुआ करता है। परंतु जर्मन राष्ट्र सभा का मुख्य कार्य तो प्रथम ही बिल पेश करना है। मंत्रिसभा पहले अपने प्रस्ताव राष्ट्र सभा के पास भेजती है। फिर उसकी राय के साथ वह प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा में जाता है। राष्ट्र सभा स्वयं कोई प्रस्ताव मंत्रिसभा को दे सकती है कि वह उसे प्रतिनिधि सभा के समक्ष रख दे। मंत्रिसभा अपनी राय के साथ उसे प्रतिनिधि सभा के सामने

रख देती है। किंतु राष्ट्र सभा को राज्यनियम बनाने का अधिकार नहीं है। यह तो प्रतिनिधि सभा के ही अधिकार में है। राज्यनियम के लिये दोनों सभाओं की सम्मति आवश्यक नहीं है। प्रतिनिधि सभा द्वारा पास हो जाने पर उसे राष्ट्र सभा की सम्मति के लिये भेजे जाने की जरूरत नहीं है। बहुधा वह प्रधान के पास भेज दिया जाता है और उसके प्रकाशित करने पर १४ दिन बाद वह कार्य में लाया जाता है। किंतु, इसी बीच, राष्ट्र सभा को यह अधिकार है कि वह मंत्रिसभा के पास अपनी असम्मति भेज दे। ऐसा करने पर वह राज्यनियम पुनः प्रतिनिधि सभा के पास भेज दिया जाता है। यदि दोनों सभाओं की सम्मति एक नहीं हुई तो प्रधान उसे जनसम्मति के लिये भेज सकता है। यदि नहीं भेजे तो वह नियम राज्यनियम नहीं बनता, बशर्ते कि प्रतिनिधि सभा $\frac{2}{3}$ बहुमत से राष्ट्र सभा के विरोध को मानने के लिये तैयार न हो। उस अवस्था में या तो प्रधान को उसे प्रकाशित करना पड़ता है या जनसम्मति के लिये भेजना ही पड़ता है।

सन् १९१८ के पहले यह सभा पार्लिमेंट की अधिक शक्तिशाली सभा नहीं थी; परंतु नवीन शासनप्रणाली का इसे ही अधिक शक्तिशाली बनाने का ध्येय रहा है। इसकी अवधि चार साल की होती है। इसके सभ्य चुनने का प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष को अधिकार है। निर्वाचन बिलकुल

प्रतिनिधि सभा (Reichstag)

सीधा तथा गुप्त रीति से होता है और जनसंख्या के आधार पर होता है। यदि चुनाव की विधि पर कुछ लिख दिया जाय तो अनुचित न होगा।

संपूर्ण जर्मनी ३५ जिलों में विभक्त है। प्रत्येक जिला प्रति ६०,००० वोट देनेवालों के पीछे एक सभ्य चुनता है। इसलिये प्रतिनिधि सभा के सभ्यों की कोई खास संख्या निर्दिष्ट नहीं है और न यही निर्दिष्ट है कि प्रत्येक जिले से कितने प्रतिनिधि आवेंगे। यह तो वोट देने के समय आने-वाले वोटरों की संख्या पर निर्भर है। प्रत्येक राजनीतिक दल अपने दल के कुछ उम्मेदवारों की एक सूची बनाता है। यह सूची जिलों के उम्मेदवारों की होती है। इस प्रकार की सब दलों की सूचियाँ मत देने के कार्डों पर छप जाती हैं और प्रत्येक मतदाता किसी खास पार्टी की पूरी सूची के लिये अपना मत देता है। अलग अलग उम्मेदवार पर मत नहीं दिया जाता। जब सब मत दे चुकते हैं, तब यह देखा जाता है कि कितने कितने आदमियों ने किस किस सूची पर मत दिए हैं। फिर उनमें से ६०,००० मतदाताओं के पीछे एक प्रतिनिधि उस सूची में से निकाल लेते हैं। जैसे समष्टि-वादियों की सूची के लिये यदि १,८२,००० मतदाताओं ने मत दिए हैं, तो इस सूची में से पहले के ३ नाम प्रतिनिधि हो जायँगे।

किंतु जो वोट इसमें बचते हैं, उनका क्या होता है? ये ३५ जिले मिलाकर सात बड़े बड़े भागों में विभक्त हैं। प्रत्येक

भाग के बचे हुए वोट जोड़े जाते हैं। यदि जोड़ ६०,००० से ऊपर आता है, तो उनमें से प्रति ६०,००० पीछे एक प्रतिनिधि चुन लिया जाता है। जिस जिस दल की सूचियों पर ६०,००० से ऊपर मत आवेंगे, उस उस दल के ही अनुपात से प्रतिनिधि लिए जायँगे। इन विभागों से बचनेवाले वोटों को एक में जोड़ते हैं और उसी तरह फिर ६०,००० पीछे एक प्रतिनिधि चुन लेते हैं। फिर भी यदि कुछ शेष बचता है तो ३०,००० से अधिक होने पर उस दल को एक वोट और मिलता है। किंतु साथ ही यह ध्यान में रहे कि इस प्रकार जोड़ने पर किसी दल को उस संख्या से ज्यादा प्रतिनिधित्व नहीं दिया जायगा जितनी संख्या उसके ३५ जिलों से चुने हुए प्रतिनिधियों की होगी। इससे यह स्पष्ट होगा कि प्रत्येक दल को अपनी अपनी ताकत के अनुसार प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है। इस विधि का एक गुण यह भी है कि लोग व्यक्तियों के लिये मत न देकर सिद्धांतों पर मत देते हैं।

प्रतिनिधि सभा अपने नियम आप बनाती है और अपना अध्यक्ष भी स्वयं ही चुनती है। इस सभा के सभ्यों का वेतन राज्यनियम द्वारा निश्चित होता है। प्रतिनिधि सभा की कई छोटी छोटी कमेटियाँ होती हैं जिनमें प्रतिनिधि सभा के प्रायः सब दल अपनी अपनी प्रधानता से जगह पाते हैं। सब मुख्य मुख्य प्रस्ताव और बिल पहले इन कमेटियों में विचारे जाते हैं और इसके उपरांत रीशटैग तथा प्रतिनिधि सभा में उन

पर विचार होता है। बहुधा प्रतिनिधि सभा का मुख्य दल अलग से भी मुख्य मुख्य प्रस्तावों पर विचार कर लेता है और इनका निर्णय कमेटी और प्रतिनिधि सभा में भी पास हो जाता है।

जर्मनी में दो प्रकार के न्यायालय हैं। एक तो वे जो साधारणतः न्याय करते हैं और दूसरे वे जो शासन संबंधी मामलों की देखभाल करते हैं। साधारण न्यायालयों में सबसे बड़ा सदर न्यायालय (Supreme Court) है। उसी के नीचे भिन्न भिन्न राष्ट्रों के राष्ट्रीय न्यायालय हैं। सदर न्यायालय के अतिरिक्त दूसरा केंद्रीय न्यायालय नहीं है।

न्यायालय

जर्मन शासन-प्रणाली की सबसे विचित्र बात यह है कि यहाँ राज्य के हाथ में राजनीतिक शासन के साथ साथ आर्थिक शासन भी है। जिस प्रकार राजनीतिक कार्य के लिये व्यवस्थापिका सभा है, उसी प्रकार आर्थिक शासन के लिये भी राष्ट्रसंघटन की एक आर्थिक समिति है। यह सत्य है कि इस समिति की उतनी शक्ति नहीं है जितनी राजनीतिक पार्लिमेंट की है; परंतु फिर भी अर्थ संबंधी राष्ट्यनियमों के बनाने में और उनके शासन में इस समिति का बहुत हाथ है। इस समिति को अधिकार है कि वह मंत्रिसभा के पास किसी अर्थ संबंधी प्रस्ताव पर अपनी राय भेजे या स्वयं अर्थ संबंधी कोई प्रस्ताव ही भेजे। इसकी राय और प्रस्ताव मंत्रिसभा प्रतिनिधि सभा के समक्ष

आर्थिक समिति

पेश कर देती है। किसी निर्णय पर आने के पहले प्रतिनिधि सभा को इस राय पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रतिनिधि सभा को भी यदि कोई आर्थिक राज्यनियम बनाना होता है, तो वह पहले उसे आर्थिक समिति के ही पास उसकी राय के लिये भेजती है।

आजकल आर्थिक समिति में कुल ३२६ सदस्य हैं। इनका निर्वाचन भी ध्यान देने योग्य है। प्रत्येक जिले में कई स्थानीय मजदूर समितियाँ और मालिक समितियाँ हैं। शासन-पद्धति के अनुसार प्रत्येक जिले की स्थानीय मजदूर तथा मालिक समितियाँ अपने अपने प्रतिनिधि भेजकर एक एक जिला-मजदूर समिति और जिला-मालिक समिति बनावेंगी। ये जिला समितियाँ संपूर्ण जर्मन राष्ट्र-संघटन की आर्थिक समिति के लिये अपने अपने प्रतिनिधि भेजेंगी। तात्पर्य यह कि राष्ट्र-संघटन की आर्थिक समिति में मजदूर जिला समिति तथा मालिक जिला समिति दोनों के प्रतिनिधि होंगे। यद्यपि सन् १९१९ की शासन-प्रणाली ने इन समितियों की स्थापना की आज्ञा दी है, तथापि अभी जिला समितियाँ स्थापित नहीं हो पाई हैं। अतः आर्थिक समिति में आजकल स्थानीय मजदूर तथा मालिक समितियों के ही प्रतिनिधि हैं। इन समितियों को रखने में राज्य की नीति यह है कि धीरे धीरे जर्मनी में साम्यवाद स्थापित हो जाय।

उपर्युक्त वर्णन के उपरांत जर्मनी के भिन्न भिन्न दलों का इतिहास भी लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। सम्राट् के

जर्मन दलबंदी

जमाने में जर्मनी में बहुत से दल थे और ये दक्षिणीय (Right) *और वामीय (Left) †के बीच में नरम गरम थे। बिलकुल दक्षिण में अत्यंत संकुचित (Agrarians and Conservatives) दल था। इनकी शक्ति देहाती जिलों के प्रतिनिधियों में थी। यद्यपि इनकी संख्या अधिक नहीं होती थी, तथापि इनमें एकता होने के कारण ये काफी शक्ति रखते थे। ये प्राचीन एकसत्तात्मक राज्य के कट्टर हामी थे। इनके बाद कुछ कम संकुचित विचारवालों का दल था। ये Free Conservatives कहलाते थे।

इनके बाद एक तीसरा दल था जो मध्य (Center) और धार्मिक दल कहलाता था। ये रोमन केथोलिक मत के थे और इस दल की उत्पत्ति बिस्मार्क के समय में हुई थी, जब बिस्मार्क ने रोमन केथोलिक मतवालों का विरोध किया था। इनकी मुख्य शक्ति रुहर, बवेरिया तथा अन्य दक्षिणी राष्ट्रों में थी।

वाम भाग की ओर बढ़ते हुए मध्यम श्रेणी की जनता से शक्ति पानेवाले उन्नत तथा उदार दलवाले (Progressives

---

* संकुचित विचारवाले।

† उदार विचारवाले।

and National Liberals) थे। अंत में समष्टिवादियों (Social Democrats) का दल था जो लड़ाई के पहले सबसे ज्यादा वामीय और गरम था। प्राचीन प्रतिनिधि सभा में उपर्युक्त छः दल ही थे। किंतु सन् १९१२ के निर्वाचन में धार्मिक दलवाले प्रतिनिधियों की प्रतिनिधि सभा में अधिकता थी। संपूर्ण प्रतिनिधि सभा के सभ्यों में इस दल की संख्या $\frac{1}{4}$ थी। राज्यकार्य बीच के दलवालों के ही हाथ में था। शासन कार्य में सन् १९१४ के पहले किसी कट्टर समष्टिवादी को भाग नहीं मिलता था।

महासमर के समय जर्मनी में नया निर्वाचन नहीं हुआ। सन् १९१२ का ही निर्वाचन अंत तक चलता रहा। फिर सन् १९१९ में शासन-प्रणाली निर्माण करने के लिये प्रतिनिधि महासभा के लिये नया निर्वाचन हुआ। पुराने दल नए नए नाम रखकर पुनः सामने आए। किंतु इनके अतिरिक्त एक दल और उत्पन्न हुआ जो समष्टिवादियों से भी ज्यादा गरम था। यह स्वतंत्र साम्यवादियों (Independent Socialists) का दल था। जो दल अधिक संकुचित विचार का नहीं था, वह उदार दलवालों से मिल गया। अतः वीमर महासभा में भी छः दल उपस्थित थे। शासन-पद्धति के निर्माण में बीच के दल आपस में मिल गए और अत्यंत दक्षिणीय तथा अत्यंत वामीय (Nationalists and Independent Socialists) इस संघटन से दूर रहे। प्राचीन जर्मन महामंत्री ने, कैसर के

सम्राट् पद छोड़ने पर, राज्य की बागडोर समष्टिवादियों के नेता एबर्ट के हाथ में दी थी।

सन् १९२० में नवीन प्रतिनिधि सभा का निर्वाचन हुआ। इसमें भी समष्टिवादियों (Social Democrats) की बहु-संख्या थी। कुल सभ्यों में इनकी संख्या ११२ थी; अर्थात् $\frac{1}{3}$ हिस्सा। सन् १९२४ तक कई मंत्रिसभाएँ बनीं और टूटीं, परंतु इन पर इन मध्य दलों ही का कब्जा था।

मई सन् १९२४ में फिर नया निर्वाचन हुआ। समष्टि-वादियों की शक्ति घट चली थी और दोनों ओर के गरम दल-वालों की शक्ति बढ़ रही थी। किंतु निर्वाचन में फिर भी मध्य दलों की ही संख्या अधिक रही। यद्यपि मध्य दलों के लोगों की संख्या अधिक थी, तथापि इतनी अधिक न थी कि अन्य सब दलों को दबा रखती। इससे न तो गरम दल-वालों का ही कब्जा रह सकता था और न नरम दलवालों का ही। फल यह हुआ कि दिसंबर सन् १९२४ में पुनः नया निर्वाचन करना पड़ा। किंतु तो भी दोनों तरफ के गरम दलवालों की कुछ हार रही। फिर भी मध्य और नरम दल-वालों का अधिकार उचित रीति से नहीं जमने पाया था। दक्षिण ओर के दलवाले मध्य दलवालों के मौके पर काम नहीं देते थे। नतीजा यह हुआ कि कुछ काल तक तो मंत्रिसभा ही नहीं रही; परंतु अंत में अत्यंत संकुचित दल को ही मंत्रि-सभा में प्रधानता प्राप्त हुई।

इससे स्पष्ट है कि जर्मनी में संकुचित दलवालों का प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता आ रहा है। राष्ट्र-संघटन का प्रधान भी इसी दल का है। इनकी नीति वही है जो प्राचीन जर्मन साम्राज्य की थी। इनको पुरानी बातें भूली नहीं हैं और ये पुनः जर्मनी की सेनाशक्ति बढ़ाना चाहते हैं और महासमर में की जर्मनी की हार का बदला लेना चाहते हैं। जर्मनी की प्रगति से तो ऐसा ही मालूम होता है कि शायद इस दल का जोर और बढ़े। अब तो कुछ ऐसी भी राय सामने आने लगी है कि वीमर शासन-प्रणाली में कुछ हेर फेर करना चाहिए। ऐसी दशा में जर्मनी का भविष्य क्या होता है, सो देखना चाहिए।

राष्ट्रीय शासन-प्रणाली

जर्मन राष्ट्र-संघटन की नवीन शासन-प्रणाली देखने के बाद भिन्न भिन्न राष्ट्रों की शासन-प्रणाली पर भी कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। हम ऊपर बता ही चुके हैं कि वीमर शासन-पद्धति के अनुसार भिन्न भिन्न राष्ट्रों को अपनी अपनी शासन-प्रणाली निर्माण करने का अधिकार दिया गया था और यह भी आदेश किया गया था कि सब राष्ट्रों को प्रजा की प्रतिनिधि-सत्तात्मक शासन-प्रणाली ही बनानी होगी। इस मूल सिद्धांत को लेकर भिन्न भिन्न राष्ट्रों ने अपनी अपनी शासन-प्रणाली निर्मित की। यद्यपि इनमें मूल बातों में एकता है, तथापि कई राष्ट्र एक दूसरे से बहुत भिन्न शासन-प्रणाली रखते हैं।

आजकल जर्मनी में स्वतंत्र नगरों को मिलाकर कुल १८ राष्ट्र हैं। हम यहाँ इन सबमें बड़े और महत्त्वपूर्ण प्रशिया का ही वर्णन करेंगे। प्रशिया की व्यवस्थापिका सभा दो सभाओं की बनी हुई है—अंतरंग सभा (Staatrat) और प्रतिनिधि सभा (Lantag)। प्रतिनिधि सभा की अवधि चार वर्ष की होती है और इसके सभ्य प्रत्येक बालिग स्त्री पुरुष द्वारा, जनता के अनुपात से और सीधे तौर पर चुने जाते हैं। अंतरंग सभा में प्रशिया के भिन्न भिन्न प्रांतों के प्रतिनिधि आते हैं और ये भी जनसंख्या के अनुपात से ही होते हैं। अंतरंग सभा की अवधि निश्चित नहीं है; इसके सभ्य प्रांतीय निर्वाचन के साथ ही बदलते हैं।

राज्यनियम बनाने में प्राय: दोनों सभाओं की सम्मति होनी चाहिए; किंतु प्रतिनिधि सभा को फिर भी अंतरंग सभा की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त हैं। यदि अंतरंग सभा द्वारा रद्द किया हुआ कोई प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा $\frac{2}{3}$ बहुमत से पास कर दे तो वह राज्यनियम हो जाता है। किंतु धन संबंधी विषयों में प्रतिनिधि सभा अंतरंग सभा के विरुद्ध इस तरह नहीं जा सकती, यदि अंतरंग सभा को मंत्रिसभा की सम्मति प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त जनता को भी राज्यनियम के लिये प्रस्ताव करने का और जनसम्मति देने का अधिकार है; परंतु आय-व्यय संबंधी, कर संबंधी और राज्यसेवकों के वेतन से संबंध रखने-वाले विषयों में जनता को जनसम्मति का अधिकार नहीं है।

प्रशिया का राजकीय अध्यक्ष कोई प्रधान नहीं है। राज्य का सारा भार मंत्रिसभा ही पर है। इस सभा के सिर पर प्राइममिनिस्टर या प्रधान मंत्री है। प्रधान मंत्री प्रतिनिधि सभा द्वारा नियुक्त किया जाता है और वह फिर अपनी मंत्रिसभा तैयार करता है। मंत्रिसभा को प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तर-दायी रहना पड़ता है। किंतु मंत्रिसभा का कोई मंत्री प्रतिनिधि सभा के कुल सभ्यों के आधे से ज्यादा मत के बिना निकाला नहीं जा सकता। अंतरंग सभा और प्रतिनिधि सभा के सभापतियों की सम्मति पाकर प्रधान मंत्री प्रतिनिधि सभा को बरखास्त भी कर सकता है।

लार्ड सभा

प्रशियन लार्ड सभा के सभ्य प्राय: बड़े बड़े राज्याधिकारी, ताल्लुकेदार, राजवंशीय लोग तथा अन्य इसी प्रकार के राज्य द्वारा सम्मानित व्यक्ति हुआ करते थे। तीस वर्ष की अवस्था से अधिक अवस्था-वाले ही लार्ड सभा के सभ्य बन सकते थे। १८९७ में इस सभा के सभ्यों की संख्या लगभग ३०० थी। इनमें से १०० के लगभग ताल्लुकेदार थे और १०० ही ताल्लुकेदारों के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि भी थे। सारांश यह कि लार्ड सभा के अधिक सभ्य प्राय: ताल्लुकेदारों में से ही आते थे। ये लोग राज्य के अतिशय भक्त होते थे और उन्हें देश में बहुत सुधार भी पसंद नहीं था। आय-व्यय संबंधी बजट तथा इससे संबंध रखनेवाले अन्य सब प्रस्ताव पहले पहल प्रतिनिधि सभा में

ही पास होते थे तथा वहाँ से पास होकर लार्ड सभा में भेजे जाते थे। लार्ड सभा को उन प्रस्तावों में सुधार का अधिकार प्राप्त नहीं था। लार्ड सभा जो कुछ नियमानुसार कर सकती थी, वह यही कि उन्हें चाहे पास करे, चाहे न पास करे। परंतु वास्तव में लार्ड सभा के सभ्य उन प्रस्तावों में बड़ी स्वतंत्रता से काट-छाँट करते थे।

पाँचवाँ परिच्छेद

अमेरिका के संयुक्त-राज्य

अमेरिका के संयुक्त-राज्य राष्ट्र-संघटनात्मक राज्य का एक उत्तम नमूना प्रदर्शित करते हैं। इस राष्ट्र-संघटन में अनेक स्वतंत्र राष्ट्र हैं जिन्हें अपने अपने राष्ट्रों के शासन में पूर्ण अधिकार है। परंतु इन सब राष्ट्रों ने स्वेच्छा से मिलकर एक बृहत् राष्ट्र-संघटन कर लिया है और सब राष्ट्रों के बाह्य शासन के लिये एक शासन-पद्धति निर्मित कर ली है। इस शासन-पद्धति का आरम्भ सन् १७८७ ईस्वी में हुआ था।

इस शासन-पद्धति का मुख्य अंग इसकी जातीय सभा (Congress) है। इस जातीय सभा द्वारा ही संयुक्त राज्य के नियम बनाए जाते हैं। इस सभा के दो भाग हैं—(१) राष्ट्र सभा और (२) प्रतिनिधि सभा।

अमेरिका की राष्ट्र सभा संसार के अन्य सब सभ्य देशों की राष्ट्र सभाओं की अपेक्षा अधिक ध्यान देने योग्य है।

अमेरिकन राष्ट्र सभा
Senate.

महाशय ब्राइस की सम्मति में तो अमेरिकन शासन-पद्धति के निर्माताओं की बुद्धि की यह अनुपम तथा अद्भुत कृति है। कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि अमेरिका की राष्ट्र सभा ने अपना कार्य बहुत कुछ सफलता से किया है। अमेरिकन

शासन-पद्धति की तृतीय धारा में लिखा हुआ है—'अमेरिका की राष्ट्र सभा में प्रत्येक अमेरिकन राष्ट्र की ओर से दो सभ्यों का आना आवश्यक है। इन सभ्यों को उस राष्ट्र के नियम-निर्माताओं तथा शासकों ने चुना हो, न कि प्रजा ने। राष्ट्र सभा के प्रत्येक सभ्य को एक से अधिक सम्मति देने का अधिकार नहीं होगा।' आगे चलकर उसी शासन-पद्धति में यह भी लिखा हुआ है—'राष्ट्र सभा के सभ्यों का एक तिहाई भाग प्रति दूसरे वर्ष बदलता रहेगा। ३० वर्ष से न्यून अवस्थावाले, अमेरिका में न रहनेवाले तथा भिन्न राष्ट्र के निवासी व्यक्ति को राष्ट्र सभा का सभ्य चुनकर नहीं भेजा जा सकता।'

यहाँ पर यह एक बात लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि अमेरिकन शासन-पद्धति के निर्माताओं का राष्ट्र सभा के निर्माण में उद्देश्य जनता के प्रतिनिधियों को भेजना न था। उनका जो कुछ विचार था, वह यह था कि इसमें भिन्न भिन्न राष्ट्रों के नियम-निर्माताओं तथा शासकों के ही प्रतिनिधि आवें। अमेरिका के राजनीतिक प्रबंध तथा शासन में वहाँ की राष्ट्र सभा ही मुख्य है। भिन्न भिन्न राष्ट्रों की जनता ने चिरकाल से अपने अपने शासकों का चुनाव ही इस दृष्टि से करना प्रारंभ कर दिया है कि वह उनके अभीष्ट व्यक्ति को ही राष्ट्र सभा में सभ्य के तौर पर चुनकर भेजा करे। इस प्रकार शासन-पद्धति के निर्माताओं का उद्देश्य सर्वथा

भंग किया गया है और अब उसका कुछ भी ध्यान रखकर कार्य नहीं किया जाता।

अमेरिकन राष्ट्र सभा का एक बड़ा भारी गुण यह है कि वह सर्वदा स्थिर रहती है। यद्यपि उसके कुछ सभ्य प्रति दूसरे वर्ष बदलते रहते हैं, तथापि सभ्यों से वह कभी रिक्त नहीं होती; दो तिहाई सभ्य सदा उसमें विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार यद्यपि अमेरिकन राष्ट्र सभा के सभ्य बदलते रहते हैं, परंतु वह स्वयं स्थिर रहती है।

अमेरिकन राष्ट्र सभा में राष्ट्र-संघटन के संपूर्ण राष्ट्रों को सभ्य भेजने का समान अधिकार प्राप्त है। इस एक समानता के कारण ही छोटे छोटे अमेरिकन राष्ट्रों ने प्रतिनिधि सभा में जनसंख्या के अनुसार सभ्य भेजने के नियम को स्वीकृत किया है; क्योंकि राष्ट्र सभा में संपूर्ण राष्ट्रों के समान अधिकार होने से बड़े राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में अधिक सभ्यों को भेजते हुए भी छोटे राष्ट्रों पर अत्याचार करने में असमर्थ हैं।

आरंभ में अमेरिकन राष्ट्र सभा में केवल २६ ही सभ्य थे, परंतु आजकल ९० हैं। संसार के अन्य सभ्य देशों की अपेक्षा अमेरिकन राष्ट्र सभा के सभ्यों की संख्या बहुत ही कम प्रतीत होती है। यह नीचे लिखे ब्योरे से बिलकुल स्पष्ट हो जायगा।

देश	सभ्य
अमेरिकन राष्ट्र सभा	९०
अँगरेजी लार्ड सभा	७४०

देश	सभ्य
फरांसीसी लार्ड सभा	३१४
कनाडा की ,, ,,	९६
आस्ट्रेलिया की ,, ,,	३६

अमेरिकन राष्ट्र सभा के सभ्यों की संख्या का न्यून होना उसके लिये अच्छा ही है। इससे संघटन का कार्य बहुत ही अच्छी तरह से किया जा सकता है। अमेरिकन राष्ट्र सभा के तीन प्रकार के कार्य कहे जा सकते हैं—(१) नियम संबंधी, (२) न्याय संबंधी और (३) शासन संबंधी।

राष्ट्र सभा की नियामक शक्ति आय-व्यय के प्रस्तावों को छोड़कर प्रतिनिधि सभा के साथ मिली हुई है। कर संबंधी प्रस्तावों को छोड़कर कोई प्रस्ताव जाति की दोनों सभाओं में से कोई सभा पेश कर सकती है। राष्ट्र सभा का प्रस्तावों के पेश करने में बड़ा भारी हाथ है। आयव्यय संबंधी प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा में ही पहले पेश हो सकते हैं तथा फिर राष्ट्र सभा में जाते हैं। इन प्रस्तावों में भी राष्ट्र सभा के सभ्य पर्य्याप्त काट छाँट करने में स्वतंत्र हैं। यदि दोनों ही सभाओं का किसी प्रस्ताव पर विवाद हो तथा वे दोनों ही उसे पास करने में सन्नद्ध न हों, तो उस दशा में राष्ट्र सभा तथा प्रतिनिधि सभा परस्पर मिलकर एक नवीन उपसमिति बनाती हैं। उपसमिति जो निर्णय दे, वही निर्णय दोनों सभाएँ उस विवादास्पद प्रस्ताव के विषय में मान लेती

हैं। प्रस्ताव जब तक दोनों सभाओं में पास न हो ले, तब तक प्रधान के पास नहीं भेजा जाता। प्रस्ताव स्वीकृत करना या न करना प्रधान के हाथ में है। परंतु यदि ⅔ सम्मति से जातीय सभा की दोनों सभाएँ उस प्रस्ताव को पुनः पास कर दें, तो वह प्रस्ताव बिना प्रधान की स्वीकृति के ही राज्यनियम हो जाता है। यदि सभाओं के एक अधिवेशन में कोई प्रस्ताव पास न हो सके तो वह छोड़ा नहीं जाता। अगले अधिवेशन में उस पर पुनः विचार होता है तथा यदि उसे पास करना होता है तो पास कर दिया जाता है।

अमेरिकन राष्ट्र सभा अँगरेजी लार्ड सभा के सदृश न्याय का कार्य भी करती है। शासन-पद्धति की पहली और दूसरी नियमधारा के अनुसार जहाँ प्रतिनिधि सभा में 'किसी को अपराधी' ठहराने की शक्ति है, वहाँ अपराधी के अपराध का न्याय करना राष्ट्र सभा के हाथ में है। जब अमेरिका के प्रधान पर मुकद्दमा खड़ा हो, तब राष्ट्र का मुख्य न्यायाधीश ही राष्ट्र सभा में प्रधान का पद ग्रहण करता है, जो प्रायः अमेरिका का उपप्रधान भी होता है। राष्ट्र सभा ने न्याय सभा के रूप में अभी तक कार्य बहुत ही अच्छी तरह से किया है। यह भी इसी लिये कि प्रायः राष्ट्र सभा के बहुत से सभ्य देश के बड़े प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्राड्विवाक ही हुआ करते हैं। यह तो हुआ राष्ट्र सभा का न्याय संबंधी कार्य; अब हम उसके शासन संबंधी कार्य पर कुछ लिखेंगे।

राजदूत, मुख्य न्यायाधीश, मंत्री तथा राष्ट्र-संघटन के अन्य अधिकारियों को नियत करने में राष्ट्र सभा प्रधान का हाथ बँटाती है। प्रायः प्रधान द्वारा निर्दिष्ट मंत्रिसभा के सभ्यों को राष्ट्र सभा बिना किसी प्रकार के बोलने चालने के ही स्वीकृत कर लेती है। यह एक रीति सी बन गई है और राष्ट्र सभा के सभ्यों का कथन है कि ऐसा करना ही उचित भी है; क्योंकि, मंत्रिसभा के सभ्यों का उत्तरदायित्व जहाँ प्रधान पर है, वहाँ उसी के द्वारा उनका चुनाव भी आवश्यक है। यद्यपि निम्नलिखित अधिकारियों के नियत करने में राष्ट्र सभा की स्वीकृति आवश्यक है, परंतु यहाँ पर भी राष्ट्र सभा ने प्रधान को ही बहुत कुछ स्वतंत्रता दी है। वे अधिकारी ये हैं—(१) राजदूत, (२) राष्ट्रीय न्यायाधीश, (३) भिन्न भिन्न विभागों के मुख्य अधिकारी, (४) नौसेनाधिपति, (५) स्थलसेनाधिपति इत्यादि। राष्ट्र सभा प्रायः भिन्न भिन्न राष्ट्रों के अधिकारियों को नियत किया करती है। कई एक शक्तिशाली प्रधानों ने राष्ट्र सभा के इस अधिकार पर बहुत ही दाँत पीसे, परंतु यह अधिकार अभी तक उसी के हाथ में है, प्रधान उसे अपने हाथ में न ले सका। अन्य छोटे छोटे अधिकारियों को भी या तो प्रधान ही नियत करता है या 'राज्यनियम समिति' (Courts of Law) नियत करती है।

राष्ट्र सभा तथा प्रधान का उपरिलिखित कार्यों में सम्मिलित अधिकार शासन कार्य में तथा राजकीय प्रबंध में विलंब

अवश्य करवाता है। आरम्भ में प्रधान पर राष्ट्र सभा का बंधन इसी लिये रखा गया था कि वह स्वेच्छाचारी न हो सके। कुछ भी हो, अधिकारियों के नियत करने में राष्ट्र सभा तथा प्रधान के सम्मिलित अधिकार से जो हानियां हैं, वे स्पष्ट ही हैं, उनको छिपाया नहीं जा सकता।

विदेशों के साथ संधि आदि करने में भी प्रधान राष्ट्र सभा के पंजे में जकड़ा हुआ है। शासन-पद्धति के निर्माताओं के काल में राष्ट्र सभा के सभ्य केवल २६ ही थे। उस समय वह एक छोटी सी गुप्त सभा का कार्य भले प्रकार से कर सकती थी; परंतु इस समय उसके सभ्यों की संख्या पर्याप्त है, अतः विदेशी संधि का विषय भी प्रधान तथा राष्ट्र सभा में दोनों के हाथ में सम्मिलित तौर पर होना अत्यंत हानिकारक है। यदि अमेरिका की स्थिति भी युरोपीय देशों के सदृश होती तो इसका सुधार शीघ्र ही करना पड़ता। दैवी घटना से अमेरिका युद्ध आदि के झगड़ों से अभी बहुत दूर है; अतः उसको अभी तक इसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ है।

अमेरिका की प्रतिनिधि सभा में अमेरिकन राष्ट्रों के प्रतिनिधि नहीं होते, अपितु अमेरिकन जनता की ओर से वे लोग चुने जाते हैं। भिन्न भिन्न राष्ट्रों को उनकी जनसंख्या के अनुसार सभ्य भेजने का अधिकार मिला हुआ है। आरंभ में जातीय सभा

प्रतिनिधि सभा

ने जनसंख्या के अनुसार जितने सभ्य नियत किए थे, उनकी संख्या ६५ थी। उस समय प्रतिनिधि तथा जनसंख्या का अनुपात १:३०००० था। परंतु अब यह अनुपात बदल गया है और प्रतिनिधियों की संख्या भी बदल गई है। आजकल प्रतिनिधि सभा के सभ्य ४३५ हैं और प्रतिनिधि तथा जनसंख्या का अनुपात भी १:२३००८० है। कई लोगों की तो यह राय है कि प्रतिनिधि सभा की संख्या अब अपनी हद तक पहुँच गई है और अब इससे अधिक नहीं होनी चाहिए। अमेरिका में दसवें वर्ष गणना की जाती है और उसी गणना के अनुसार दस वर्षों के लिये प्रत्येक राष्ट्र की प्रतिनिधि भेजने की संख्या निश्चित कर दी जाती है। प्रतिनिधि सभा का प्रति युग्म वर्षों (जैसे १८९२, ९४, ९६) में ही चुनाव हुआ करता है।

प्रतिनिधि सभा के सभ्य के तौर पर चुने जाने के लिये निम्नलिखित बातों का किसी व्यक्ति में होना आवश्यक है।

(१) अवस्था पचीस वर्ष से कम न हो।

(२) सात वर्ष से अमेरिका का नागरिक हो।

(३) चुनाव के समय उसी राष्ट्र में रहता हो जिसकी ओर से वह चुना गया हो।

प्रतिनिधि सभा के सभ्य प्रायः दो वर्ष के लिये ही चुने जाते हैं। राष्ट्र सभा के सभ्यों के सदृश इनका चुनाव नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि प्रति द्वितीय वर्ष संपूर्ण प्रतिनिधि सभा नवीन रूप से चुनी जाती है।

राष्ट्र सभा के शीर्षक में यह लिखा जा चुका है कि वह एक प्रकार से स्थिर कही जाती है, क्योंकि उसके २/३ सभ्य सदा ही विद्यमान रहते हैं। परंतु अमेरिकन शासन-पद्धति में प्रतिनिधि सभा के अनुसार ही राष्ट्र सभा भी बदलती हुई ही गिनी जाती है। दृष्टांत के तौर पर १८९५—९७ की जातीय सभा के अधिवेशन को ५४ वाँ अधिवेशन कहा जाता है, यह इसलिये कि उस समय प्रतिनिधि सभा का ५४ वाँ अधिवेशन था।

अमेरिकन शासन-पद्धति ने चुनाव के लिये कोई विशेष गुण नियत नहीं किया है। जातीय सभा का यह निर्णय है कि भिन्न भिन्न राष्ट्रों के स्वराष्ट्रीय शासन के लिये जो जो व्यक्ति राष्ट्रीय शासकों को चुननेवाले हों, वे ही राष्ट्र सभा तथा प्रतिनिधि सभा के सभ्यों के चुनने के अधिकारी हो सकते हैं।

सारांश यह कि अमेरिका में प्रतिनिधियों के चुनाव में भिन्न भिन्न राष्ट्रों के अपने अपने नियम ही लगते हैं, न कि राष्ट्र-संघटन के।

प्रतिनिधि सभा के सभ्यों के चुनाव में प्रायः ४० से ६० वर्ष की अवस्था के बीच के ही व्यक्ति आते हैं। जब ५० वीं जातीय सभा का निरीक्षण किया गया था, तब मालूम हुआ था कि उसमें लगभग २/३ सभ्य वकील तथा बैरिस्टर थे। इसी प्रकार ५२ वीं जातीय सभा के समय भी इनकी संख्या कुल सभ्यों की २/३ ही थी। वकीलों तथा बैरिस्टरों से उतरकर अमेरिकन जातीय सभाओं में व्यापारियों तथा व्यवसायियों

की संख्या हुआ करती है। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि अमेरिका के राज्याधिकारी इसके सभ्य नहीं होते और अमेरिका के प्रसिद्ध प्रसिद्ध धनाढ्य व्यक्ति भी इसके सभ्य नहीं बनते, क्योंकि उनको इतना समय नहीं होता कि वे अपना काम छोड़कर देश की राजनीति में भाग ले सकें।

प्रतिनिधि सभा में भी राष्ट्र सभा के सदृश अपने ही नियम हैं। प्राय: प्रतिनिधि सभा को अपनी उपसमितियों के लिये भी नियम बनाने पड़ते हैं। प्रतिनिधि सभा के सभ्य इतने अधिक होते हैं कि किसी कार्य का उनके द्वारा होना कठिन होता है। अत: प्रतिनिधि सभा अपने संपूर्ण कार्य उपसमितियों द्वारा ही करवाती है। उपसमितियों के सभ्यों का चुनाव एकमात्र प्रतिनिधि सभा के प्रधान के ही हाथ में है; और यही एक कार्य है जिससे प्रतिनिधि सभा के प्रधान की शक्ति संपूर्ण अमेरिकन शासन पद्धति में एक समझी जाती है। प्रतिनिधि सभा की उपसमितियों की शक्ति अपने अपने कार्य में बड़ी भारी है; और यह क्यों? इसी लिये कि उपसमितियों के हाथ में ही प्रतिनिधि सभा ने अपनी लगभग संपूर्ण शक्ति बाँट दी है। राष्ट्र सभा के सभ्य संख्या में थोड़े होते हैं, अत: वे अपनी उपसमितियों के वार्षिक विवरण को पूर्ण तौर पर सुनते हैं तथा विचारते हैं, स्थान स्थान पर उसमें सुधार भी करते हैं; परंतु प्रतिनिधि सभा अपनी अपनी उपसमितियों के वार्षिक विवरण की इस प्रकार

आलोचना नहीं कर सकती; क्योंकि उसके सभ्यों की संख्या बहुत अधिक है। अभी हमने यह दिखाया है कि किस प्रकार उपसमितियों के हाथ में प्रतिनिधि सभा की संपूर्ण शक्ति चली गई है। यहाँ पर स्वयं ही यह विचार कर लेना चाहिए कि उस व्यक्ति की कितनी अधिक शक्ति होगी जो एकमात्र इन उपसमितियों के सभ्यों का चुननेवाला हो। प्रतिनिधि सभा के प्रधान की शक्ति इसी लिये अनुपमेय है। इसके चुनाव के काल में प्रतिनिधि सभा में जो विक्षोभ होता है, वह देखने लायक है। प्रतिनिधि सभा अपने प्रधान को आप ही चुनती है तथा उसे 'प्रधान' के स्थान पर अँगरेज़ी प्रतिनिधि-सभा के सदृश 'प्रवक्ता' (Speakar) का नाम देती है। कुछ भी हो, अँगरेजी तथा अमेरिकन प्रवक्ता में आकाश पाताल का अंतर होता है।

अँगरेजी प्रवक्ता का मुख्य गुण 'निष्पक्षता' होता है। यद्यपि वह भी किसी न किसी दल की ओर से ही चुना जाता है, परंतु ज्योंही वह बेंच से उठकर प्रधान का पद ग्रहण करता है, उसी समय वह दल संबंधी बंधनों को छोड़कर सबको एक ही दृष्टि से देखने लगता है। चाहे उसका कोई मित्र हो चाहे शत्रु हो, प्रवक्ता के रूप में उसके लिये सब एक से हैं। अँगरेजी प्रवक्ता का भी मान, शक्ति तथा अधिकार पर्याप्त होता है, परंतु वह इसलिये नहीं कि उसके पास कोई राज-नीतिक शक्ति नहीं है। यद्यपि वह भी प्रतिनिधि सभा में किसी

एक दल को प्रबलता दे सकता है, परंतु वह ऐसा नहीं करता, क्योंकि इँगलैंड में आरंभ से ही ऐसा चला आया है।

परंतु अमेरिकन 'प्रवक्ता' को तो पक्षपात की मूर्ति कहा जा सकता है। वह प्रतिनिधि सभा की जितनी उपसमितियाँ बनाता है, उनमें अपने मित्रों तथा अपने दलवालों को ही रखता है। उपसमितियों के प्रधान को भी अमेरिकन प्रवक्ता ही चुना करता है। इस कार्य में यद्यपि उसे पर्याप्त परिश्रम तथा चिंताओं का सामना करना पड़ता है, परंतु शक्ति के साथ ये बातें रहा ही करती हैं। अमेरिकन प्रवक्ता की शक्ति की अँगरेजी महामंत्री से उपमा दी जा सकती है। दोनों को अपनी अपनी समितियों के बनाने में समान चिंताओं का सामना करना पड़ता है। अमेरिका के प्रवक्ता की शक्ति तथा मुख्यता इसी से समझी जा सकती है कि उसका वेतन १६०० पाउंड है जो कि अमेरिका जैसे देश में बहुत ही अधिक समझा जाता है। प्रवक्ता मान तथा दर्जे में उपप्रधान के नीचे तथा मुख्य न्यायाधीश के तुल्य समझा जाता है।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि किसी प्रस्ताव के राज्यनियम बनने के लिये दोनों सभाओं की स्वीकृति और प्रधान के हस्ताक्षर का होना आवश्यक है। यदि प्रधान हस्ताक्षर न करे तथा प्रस्ताव को सभाओं के पास लौटा दे और सभाएँ पुनः उसी प्रस्ताव को अपने सभ्यों की $\frac{2}{3}$ सम्मति से

जातीय सभा

पास करें तो वह बिना किसी प्रधान के हस्ताक्षर के राज्यनियम बन जाता है।

प्रत्येक प्रस्ताव का प्रधान द्वारा १० दिन तक लौटा देना आवश्यक है। यदि वह इन दिनों के अंदर न लौटा दे तो वही प्रस्ताव राज्यनियम बना हुआ समझा जाता है। अमेरिका में सभा के कार्य को प्रारंभ करने के लिये आधे सभ्यों का आरंभ से अंत तक होना आवश्यक है। इँगलैंड में जहाँ प्रतिनिधि सभा में ६७० सभ्य हैं, वहाँ उसका कार्य प्रारंभ करने के लिये ४० सभ्यों का होना ही आवश्यक रखा गया है। अमेरिका में आयव्यय संबंधी प्रस्ताव को छोड़कर कोई प्रस्ताव किसी सभा की ओर से आ सकता है। प्रतिनिधि सभा में जो प्रस्ताव पेश होते हैं, उनकी वार्षिक संख्या लगभग १०००० के है। यह संख्या बहुत ही अधिक है।

अमेरिका की शासन पद्धति के अनुसार शासन की संपूर्ण शक्ति प्रधान के हाथ में है। परंतु एक व्यक्ति यह कार्य कैसे कर सकता है? वास्तव में प्रधान तो बहुत से विभागों के मुख्य मुख्य अधिकारियों को नियत करता है तथा उनकी सहायता से संपूर्ण अमेरिका का शासन करता है। उपप्रधान के कोई विशेष अधिकार ही नहीं हैं। वह तो प्रधान की अनुपस्थिति में ही कार्य करता है और वैसे उसका सहायक होता है।

प्रधान

जनता द्वारा चुने हुए सभ्य ही प्रधान का चुनाव करते हैं। इस प्रकार प्रधान का चुनाव जनता के हाथ में सीधे तौर पर नहीं है, अपितु प्रतिनिधियों के द्वारा होता है। प्रत्येक राष्ट्र को जितने सभ्य जातीय सभाओं के लिये चुनने पड़ते हैं, उतने ही सभ्य उन्हें प्रधान के चुनाव के लिये अलग चुनने पड़ते हैं।

शासन-पद्धति के निर्माताओं का प्रतिनिधियों द्वारा प्रधान के चुनाव में उद्देश्य यह था कि प्रतिनिधि अपनी अपनी सम्मति द्वारा प्रधान का चुनाव करें, परंतु प्रायः आजकल ऐसा नहीं होता। प्रधान के चुनाव में भी भिन्न भिन्न दलों का हाथ है।

अमेरिका में उत्पन्न या शासनपद्धति के निर्माण काल में बने हुए नागरिक को छोड़कर अन्य किसी को प्रधान बनने का अधिकार नहीं है। ३५ वर्ष से न्यून अवस्था के व्यक्ति को प्रधान का पद ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। १४ वर्षों से कम वहाँ रहा हुआ व्यक्ति भी प्रधान नहीं बन सकता।

प्रधान के अमेरिका के शासक के तौर पर निम्नलिखित कार्य कहे जा सकते हैं—

(१) अमेरिका के कार्य पर बुलाई हुई राष्ट्रीय सेना के स्थल तथा नौसेना के मुख्य जातीय सेनापति का पद ग्रहण करना।

(२) राष्ट्र सभा की अनुमति से राजदूत, राष्ट्रीय मुख्य मुख्य शासक, मुख्य न्यायाधीश तथा भिन्न भिन्न राजकीय विभागों के उच्च अधिकारियों को नियत करना।

(३) राष्ट्रसभा के ⅔ सभ्यों की अनुमति से विदेशीय राष्ट्रों से संधि आदि करना।

(४) प्रतिनिधि सभा द्वारा दंडित व्यक्ति को छोड़कर अन्य व्यक्तियों के अपराध क्षमा कर सकना।

(५) आवश्यकता पड़ने पर दोनों ही सभाओं का इकट्ठा अधिवेशन बुलाना।

(६) जो प्रस्ताव राज्यनियम बनाना मंजूर न हो, उस पर हस्ताक्षर न करना तथा जातीय सभाओं के पास पुनर्विचार के लिये उसे लौटा देना। यदि जातीय सभा के ⅔ सभ्य उसे पुनः पास कर दें तो वह राज्यनियम बन जाता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है।

(७) जातीय सभा को संपूर्ण राष्ट्रों के परस्पर मेल का विश्वास दिलाते रहना।

(८) अमेरिकन राज्याधिकारियों को कार्य सुपुर्द करना।

(९) विदेशी दूतों का स्वागत करना।

(१०) इस बात का ध्यान रखना कि राज्यनियमों का संचालन विश्वासपूर्वक उचित रीति से हो रहा है या नहीं।

इन सब उपरिलिखित अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को हम चार विभागों में बाँट सकते हैं।

(१) विदेशियों से संबद्ध कार्यों का अधिकार।

(२) अंतरीय शासन से संबद्ध अधिकार।

(३) नियामक अधिकार।

(४) अधिकारियों को नियत करने के संबंध में अधिकार।

अब हम इनमें से एक एक का पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

(१) विदेशियों से संबद्ध कार्यों का अधिकार

अमेरिका में विदेशीय नीति का भी एक मुख्य स्थान होता, यदि अमेरिका भी युरोप जैसे देशों की तरह भिन्न भिन्न शक्ति-शाली विरोधी राष्ट्रों के बीच में पड़ा होता। अमेरिका युरोप से दूर है, अतः युरोप के विक्षोभों का अमेरिका पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस दशा में विदेशीय नीति का अमेरिका में मुख्य स्थान न होने पर भी अभी तक उनकी विशेष क्षति नहीं हुई है। प्रधान युद्ध की उद्घोषणा नहीं कर सकता, क्योंकि यह कार्य जातीय सभा का है। पर इसमें संदेह नहीं कि अमेरिका का प्रधान यदि चाहे तो वह राज-कार्य इस प्रकार चलावे जिससे जातीय सभा के लिये यह आवश्यक हो जाय कि वह युद्ध की उद्घोषणा करे। १८४५ में प्रधान पालक ने ऐसा किया भी था। प्रतिनिधि सभा का यद्यपि राजनीति में कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं है, तथापि अपनी सभा में वह भिन्न भिन्न प्रस्ताव भिन्न भिन्न राजनीतियों के विषय में पास करती रहती है और कई बार राष्ट्र सभा को भी अपने प्रस्तावों में सम्मिलित होने के लिये बुला लिया करती है। यह तभी होता है जब किसी प्रस्ताव पर उसे विशेष बल देना होता है। परंतु प्रधान इन प्रस्तावों पर चलने के लिये बाध्य नहीं है और प्रायः वह इन प्रस्तावों की अवहेलना ही किया करता है।

प्रतिनिधि सभा उपरिलिखित प्रकार से प्रधान को प्रभावान्वित नहीं कर सकती, पर वह एक दूसरी विधि से उसे अपनी इच्छाओं पर चलने के लिये बाध्य भी कर सकती है। व्यापार-व्यवसाय की संधि तथा आयव्यय संबंधी विषयों में प्रधान प्रतिनिधि सभा के बंधन में है। आधुनिक युद्धों में धन की कितनी आवश्यकता होती है, यह किसी से छिपा नहीं है। प्रधान युद्ध उद्घोषित कर ही नहीं सकता जब तक कि प्रतिनिधि सभा रुपए आदि की उसे सहायता देना स्वीकृत न कर ले। सारांश यह कि प्रधान जहाँ राष्ट्र सभा तथा प्रतिनिधि सभा के बंधन में है, वहाँ स्वतंत्र भी है। प्रतिनिधि सभा की शक्ति से वह बाहर है और राष्ट्र सभा भी उसे बहुत सी बातें स्वतंत्र तौर पर करने देती है।

(२) अंतरीय शासन संबंधी अधिकार

शांति काल में प्रधान के अधिकार अति परिमित होते हैं। यह इसलिये कि प्रायः भिन्न भिन्न राष्ट्र अपना प्रबंध तथा शासन करने में बहुत कुछ स्वतंत्र हैं। परंतु युद्ध काल में, विशेषतः दैशिक युद्ध (Civil War) में प्रधान की शक्ति अनंत सीमा तक बढ़ जाती है। युद्ध के काल में वह स्थल-सेना तथा नौसेना का मुख्य सेनापति होता है और राष्ट्र की संपूर्ण शक्ति अपने हाथ में कर सकता है। यदि जातीय सभा चाहे तो उसे उस विपत्काल में अनंत शक्तिशाली और एकमात्र स्वेच्छाचारी का रूप भी दे सकती है। इस शक्ति

से प्रधान राष्ट्र-संघटन के संपूर्ण राष्ट्रों के अंतरीय विद्रोह दमन कर सकता है; और प्रधान के भय से इस प्रकार की घटनाएँ प्रायः होती भी नहीं हैं।

अमेरिका का प्रधान दोनों जातीय सभाओं में से किसी सभा का सभ्य नहीं हो सकता। वह तो स्वयं जनता का एक अधिकारी है। जनता ने उसे नियामक शक्ति की बुराइयों से अपने आपको बचाने के लिये नियत किया है तथा साथ ही उसे यह अधिकार भी दिया है कि वह जिस प्रस्ताव को चाहे, बिलकुल पास ही न करे। न अमेरिका का प्रधान और न उसके अधिकारी सभाओं में एक भी प्रस्ताव पेश कर सकते हैं, क्योंकि वे सभाओं के सभ्य ही नहीं होते।

(३) नियामक अधिकार

शासन-पद्धति के निर्माताओं ने राज्याधिकारियों को नियत करना प्रधान के हाथ में दिया है और इस प्रबल शक्ति का वह दुरुपयोग न कर सके, अतः उस पर राष्ट्र सभा की स्वीकृति रूपी कैद भी लगा दी है। प्रधान जॉनसन को छोड़कर अन्य किसी प्रधान से राष्ट्र सभा का इस विषय में प्रायः झगड़ा नहीं हुआ है। प्रधान द्वारा नियत किए हुए बड़े बड़े अधिकारियों की सभा को हम प्रधान की मंत्रिसभा कह सकते हैं। एक बार राष्ट्र सभा की स्वीकृति से मंत्रियों को नियत करके प्रधान उन्हें पदच्युत भी कर सकता है या नहीं,

(४) अधिकारियों की नियुक्ति संबंधी अधिकार

इस विषय पर चिरकाल से विवाद चल रहा है। परंतु बहुत से विद्वानों की सम्मति यही है कि वह ऐसा कर सकता है। अमेरिका के राजकीय विभाग तथा उनके अधिकारी निम्नलिखित हैं—

विभाग		मंत्री
(१) राष्ट्र विभाग	... ...	राष्ट्रसचिव
(२) कोष विभाग (खजाने का विभाग)		कोष ”
(३) युद्ध विभाग	... ...	युद्ध ”
(४) नौ विभाग	... ...	नौ ”
(५) न्याय विभाग	... ...	न्याय ”
(६) डाक तार विभाग	... ...	डाक तार”
(७) अंतरीय विभाग (गृहप्रबंध विभाग)		अंतरीय ”
(८) कृषि विभाग	... ...	कृषि ”

आजकल प्राय: यह प्रश्न सर्वत्र उठा हुआ है कि अमेरिका में प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्ति प्रधान का पद क्यों नहीं ग्रहण करते, जब कि प्रधान की शक्ति तथा उसका मान भी बहुत ही अधिक है। महाशय ब्राइस की सम्मति में इसके कारण ये हैं—

(१) पहला कारण तो यह है कि अमेरिका में बड़े बड़े योग्य व्यक्ति राजनीति में प्रवेश करने का उतना यत्न नहीं करते जितना कि इँगलैंड तथा अन्य युरोपीय जातियों में। यह क्यों ? यह इसी लिये कि अमेरिका के बड़े बड़े योग्य

पुरुष धन एकत्र करने में जितना अनुराग रखते हैं, उतना राजनीतिक कार्यों में नहीं।

(२) दूसरा कारण यह है कि अमेरिकन शासन-पद्धति ही इस प्रकार की है कि योग्य योग्य व्यक्तियों को प्रधान पद ग्रहण करने का अवसर कम मिलता है।

(३) तीसरा कारण यह भी कहा जा सकता है कि बहुत ही प्रसिद्ध व्यक्तियों के शत्रु भी पर्याप्त ही होते हैं। मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों के शत्रु तो अधिक नहीं होते, परंतु मित्र अवश्य अधिक होते हैं।

छठा परिच्छेद

स्विट्ज़लैंड

स्विट्जलैंड संपूर्ण युरोप का स्वर्ग कहा जा सकता है। उच्च पर्वतमालिका पर स्थित स्विस् जनता जिस स्वतंत्रता देवी का दुग्धपान कर रही है, वह अन्य देशों की जनता से बहुत दूर है। स्विट्ज-लैंड में किसी एक जाति का निवास नहीं है। वह भिन्न भिन्न जातियों के व्यक्तियों की निवासभूमि है। हाल की मनुष्य-गणना के अनुसार उस स्वर्गीय देश में २०८३०९७ जर्मन, ६३४६१३ फरांसीसी, १५५१३० इटैलियन तथा ३८३५७ रोमन भाषाभाषी जनों का निवास है। यदि बांधवता तथा जातीयता की भिन्नता ही स्विस् जनता में होती तब भी कोई बात थी। उसमें धर्म की भिन्नता भी पर्याप्त है। उसका कारण यह है कि स्विट्जलैंड के पर्वतीय प्रदेशों के कुछ प्रांतों पर युरोप के धार्मिक परिवर्त्तनों तथा सुधारों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है। इसका परिणाम यह है कि उस स्थान के निवासी कैथोलिक धर्म के ही कट्टर पक्षपाती हैं। परंतु इसमें संदेह नहीं कि स्विट्जलैंड की तराई के लोग पूर्ण प्रोटेस्टेंट भी हैं। इस प्रकार गणना करने से प्रतीत हुआ है कि स्विट्जलैंड में जहाँ प्रोटेस्टेंट $\frac{3}{5}$ हैं, वहाँ कैथोलिकों की

राष्ट्र-संघटन का उद्भव

सख्या³ ही है। धर्म, भाषा तथा जातीयता में परस्पर सर्वथा विभिन्न स्विस जनता में कौन सी 'शासन-पद्धति' उपयुक्त हो सकती है ? यह प्रश्न स्वभावतः ही चित्त में उपस्थित होता है। इसका समाधान करने से पूर्व हम स्विट्जलैंड के राजनीतिक परिवर्त्तन पर ही पहले कुछ लिख देना आवश्यक समझते हैं।

स्विट्जलैंड में सन् १३०९ में ही वे परिवर्त्तन आरंभ हो गए थे जिन्होंने वर्त्तमान कालीन आश्चर्यप्रद, विचित्र स्विस शासन-पद्धति को जन्म दिया है। उन दिनों में लूसर्न सरोवर के तटस्थ स्क्वीज, पूरी तथा अंतर्वेडन के प्रांतों ने सम्राट् हेनरी सप्तम से स्वतंत्रता संबंधो कई अधिकार प्राप्त कर लिए थे। १३ वीं सदी के मध्य में ही ये सबके सब प्रांत परस्पर मिल गए थे और यह तत्कालीन स्विस राष्ट्र-संघटन ही वर्त्तमान कालीन स्विस राष्ट्र-संघटन का जन्मदाता कहा जा सकता है। समय समय पर इस राष्ट्र-संघटन में जहाँ अन्य स्विस राष्ट्र मिलते चले गए, वहाँ इसकी शक्ति भी बहुत ही बढ़ गई। विजयी नेपोलियन ने स्विस राष्ट्र-संघटन से स्वतः लाभ उठाने की इच्छा से उसमें अपनी सेना भेजी तथा तत्कालीन फरांसीसी शासन-पद्धति के अनुसार ही वहाँ की शासन-पद्धति भी कर दी और अपने साथ उसका घनिष्ठ संबंध जोड़ने का यत्न भी किया। सन् १८१५ में ज्योंही फ्रांस की शक्ति स्विट्जलैंड से हटी, त्योंही वहाँ की शासन-पद्धति में परिवर्त्तन होना आरंभ हुआ। राष्ट्र-संघटन के संपूर्ण राष्ट्र

फरांसीसी शासन-पद्धति से बहुत ही अधिक असंतुष्ट थे, अतः उन्होंने अपने देश की प्राचीन शासनपद्धति का पुनः उद्धार किया।

१८४८ के लगभग स्विस प्रोटेस्टेंट राष्ट्रों तथा कैथेोलिक राष्ट्रों के बीच धार्मिक युद्ध हो गया जिसमें कैथेोलिक हारे। इसका परिणाम यह हुआ कि १८४८ में एक नई शासन-पद्धति निर्मित की गई। १८७४ में शासन-पद्धति में कई एक ऐसे परिवर्त्तन किए गए जिनसे राष्ट्र-संघटन की शक्ति पूर्वापेक्षा बढ़ गई जो कि आजकल स्विस राष्ट्र-संघटन के आधार का काम कर रही है। स्विस राष्ट्र-संघटन में छोटे छोटे चौबीस राष्ट्र सम्मिलित हैं। शासन-पद्धति के अनुसार अमेरिका की तरह स्विट्ज़रलैंड में भी दो सभाओं का होना निश्चय हुआ। एक राष्ट्र-सभा, द्वितीय प्रतिनिधि सभा। राष्ट्र-सभा में भिन्न भिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का आना निश्चित हुआ और प्रति-निधि सभा में जनता के प्रतिनिधियों का आना उपयुक्त ठहराया गया। १८७४ में राष्ट्र-संघटन का मुख्य न्यायालय बनाया गया जो स्विट्ज़रलैंड में साम्राज्य का मुख्य न्याया-लय समझा जाता है।

राष्ट्र-संघटन के गुण

स्विस् राष्ट्र-संघटन प्रतिदिन नवीन नवीन नियमों को पास करवाकर अपनी शक्ति बढ़ाता जाता है; और इसका कारण यह है कि स्विस् राष्ट्र स्वयं इतने छोटे हैं कि बहुत से कार्य एकमात्र उनसे नहीं हो सकते। वे अपनी आवश्यकताओं को अकेले

ही पूर्ण करने में सर्वथा असमर्थ हैं। इस दशा में राष्ट्र-संघटन का बहुत से कार्यों को अपने हाथ में लेकर उन्हें सहायता पहुँचाना आवश्यक प्रतीत होता है। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि स्विट्जलैंड में बड़े से बड़े राष्ट्र की जन-संख्या पाँच लाख से ऊपर नहीं है। और ऐसे भी छोटे छोटे राष्ट्र उसमें सम्मिलित हैं जिनकी जनसंख्या तेरह हजार से ऊपर नहीं है। स्विस् राष्ट्र-संघटन के निम्नलिखित कार्य गिनाए जा सकते हैं—

(१) राष्ट्रों के विदेशीय संबंधों का निरीक्षण तथा नियमन।

(२) राष्ट्रों की अंतरीय स्वरक्षा, शांति तथा प्रबंध करना।

(३) देश के धार्मिक संघों तथा मठों का प्रबंध करना।

(४) मादक द्रव्यों के विक्रय तथा व्यवसायों के संचालन के लिये नियम बनाना।

(५) रेलवे के निर्माण तथा संचालन का प्रबंध करना।

(६) विशेष विशेष रोगों से जनता को बचाने के लिये स्वास्थ्य-संबंधी नियम बनाना।

(७) व्यवसायों में श्रमियों की उन्नति के लिये श्रमसंबंधी नियम बनाना।

(८) श्रमियों का बीमा कराना तथा व्यावसायिक नियम बनाकर प्रचलित करना।

(९) नदियों तथा जंगलों का निरीक्षण करना।

(१०) आवश्यकीय स्थानों पर भिन्न भिन्न राष्ट्रों के प्रेस संबंधी तथा निवास संबंधी राष्ट्रीय नियमों को शिथिल करना।

(११) मुख्य मुख्य सड़कों तथा पुलों का निरीक्षण करना।

फ्रीबर्ग नामक राष्ट्र को छोड़कर स्विस् राष्ट्र-संघटन के प्रायः सभी राष्ट्रों में सीधे तौर पर या अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक राज्यनियम के पास करवाने या न करवाने में राज्य-नियम द्वारा जनसम्मति लेने की कोई न कोई विधि अवश्य प्रचलित है। छोटे छोटे राष्ट्रों में जहाँ जनसम्मति सीधे ही प्रजा से ले ली जाती है, वहाँ बड़े बड़े राष्ट्रों में, जिनमें प्रतिनिधि-सभात्मक राज्यप्रणाली का ही बहुत कुछ अवलंबन है, जन-सम्मति लेने की एक नवीन विधि काम में लाई जाती है। स्विट्जलैंड में तीन प्रकार की जनसम्मति काम में लाई जाती है।—(१) अबाध्य जनसम्मति, (२) बाध्य जनसम्मति और (३) नियामक जनसम्मति।

जनसम्मति विधि

जिन जिन स्विस् राष्ट्रों में अबाध्य जनसम्मति की रीति प्रचलित है, वहाँ राज्य स्वयं राज्यनियमों के बनाने में जन-सम्मति लेने के लिये प्रजा की ओर से बाध्य नहीं है। हाँ, इसमें संदेह नहीं कि यदि जनता किसी राज्यनियम को राष्ट्र में प्रचलित होने से सर्वथा ही हटाना चाहे, तो वह उसे हटा सकती है। इस अवस्था में जनता के बहुत से व्यक्ति

(व्यक्तियों की संख्या भिन्न भिन्न राष्ट्रों के राज्यनियमों द्वारा भिन्न भिन्न नियत है) अपने अपने हस्ताक्षर करके राज्य के पास एक ऐसा प्रार्थनापत्र भेजते हैं जिसमें लिखा होता है कि अमुक अमुक राज्यनियम हमें अभीष्ट नहीं हैं। अतः उन पर जनता की सम्मति (राज्यनियमों पर वे ही व्यक्ति सम्मति दे सकते हैं जिनको प्रतिनिधि सभा के सभ्य चुनने का अधिकार प्राप्त है) ले ली जाय। राज्य इस प्रकार के प्रार्थनापत्र के पहुँचने पर राज्यनियमों पर जनसम्मति लेने के लिये बाध्य है। प्रार्थनापत्र में लिखे हुए राज्यनियमों पर राज्य जनसम्मति लेता है और जनता को हाँ या ना एक ही उत्तर देना पड़ता है। इस प्रकार की जनसम्मति लेने से यदि कोई राज्यनियम न पास हुआ तो राज्य को अपनी इच्छाओं के विरुद्ध भी उस नियम को राष्ट्र में प्रचलित करने से रोकना पड़ता है। इस प्रकार प्रार्थनापत्र द्वारा राज्य की जनसम्मति लेने की विधि अबाध्य जनसम्मति की विधि कही जाती है। परंतु बहुत से ऐसे स्विस् राष्ट्र हैं जिनमें बाध्य जनसम्मति की विधि का ही प्रचार है। अर्थात् उन राष्ट्रों में राज्य को राज्यनियम बनाने के लिये स्वयं ही जनता की सम्मति लेनी पड़ती है। जनता को प्रार्थनापत्र भेजने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

बाध्य जनसम्मति किसी राष्ट्र की शासन-पद्धति को प्रजासत्तात्मक राज्य के सिद्धांतों के बहुत समीप तक पहुँचा

देती है, क्योंकि इससे प्रत्येक राज्यनियम के पास करने या न करने में सीधे तौर पर जनता की ही सम्मति होती है।

बाध्य जनसम्मति

सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि इस विधि द्वारा जनता में शांति-भंग नहीं होने पाता। अबाध्य जनसम्मति की विधि में प्रार्थनापत्र पर जनता के हस्ताक्षर करवाने में राष्ट्र में बड़ा भारी विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है। वैलेस नामक स्विस् राष्ट्र में १८४४ में पहले पहल अबाध्य जनसम्मति की विधि प्रचलित हुई थो। उस राष्ट्र में यह विधि विफल सी सिद्ध हुई, क्योंकि राज्य के बहुत से आवश्यक नियमों को भी जनता ने न पास किया। कुछ भी हो, सन् १८५२ में कुछ आर्थिक विषयों के लिये इस विधि का अवलंबन करना वहाँ उचित ठहराया गया। ज्यों ज्यों समय गुजरा, अन्य राष्ट्रों ने भी अबाध्य या बाध्य जनसम्मति की विधि में से किसी न किसी विधि का अवलंबन कर लिया। आवश्यकता पड़ने पर एक विधि को छोड़कर दूसरी विधि का तथा दूसरी को छोड़कर पहली का भी वे अवलंबन करते रहे। परंतु यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि आजकल प्रायः सब राष्ट्रों में यदि शासन-पद्धति में किसी प्रकार का परिवर्तन करना हो तो बाध्य-जन-सम्मति की विधि ही का आश्रय लेना पड़ता है। शासन-पद्धति से अतिरिक्त विषयों में तो किसी राष्ट्र में कोई विधि प्रचलित है, किसी में कोई। स्थूल रूप से दिग्दर्शन

कराने के लिये भिन्न भिन्न राष्ट्रों की जन-सम्मति की विधियाँ हम नीचे देते हैं--

राष्ट्र	जनसम्मति बाध्य या अबाध्य	अवलंबन का समय
राष्ट्रसंघटन	अबाध्य	१८७४
जूरिच (Zurich)	बाध्य	१८६९
बर्न (Berne)	,,	,,
लूसर्न (Lucerne)	अबाध्य	१८६९
स्कीज़ (Schwyz)	साधारण तौर पर बाध्य	१८४८ तथा
	अबाध्य (संधियों में)	१८७६
जग (Zug)	अबाध्य	१८७७
फ्रीबर्ग (Freiburg)	,,	,,
सालूअर (Soleure)	बाध्य (अबाध्य १८५६)	१८६९
बैस्ल नगर (Basle)	अबाध्य	१८६१, १८७५
बैस्ल ग्रामीण (Basle)	बाध्य	१८६३
शाफूहासन (Schaff-hausen)	,,	१८९५ (१८५६ अबाध्य)
सेंट गाल (St. Gall)	अबाध्य	१८६१ तथा १८७५
ग्रिजंस (Grisons)	बाध्य	१८५२
आर्गो (Aargau)	,,	१८७२

राष्ट्र	जनसम्मति बाध्य या अबाध्य	अवलंबन का समय
थर्गौ (Thurgau)	बाध्य	१८६९
टिसिनो (Ticino)	अबाध्य	१८८३ तथा १८९२
वाद् (Vaud)	अबाध्य (साधारण वि०)	१८८५
	बाध्य (आर्थिक वि०)	१८६१
वैलेस (Valais)	बाध्य (आर्थिक वि०)	१८५२
न्यूकेटल (Neuchatel)	अबाध्य	१८७९
	बाध्य (आर्थिक वि०)	१८५८
जनेवा (Geneva)	अबाध्य	१८७९

शासन-पद्धति में परिवर्तन करने के लिये स्विस् राष्ट्र-संघटन को बाध्य जन-सम्मति विधि का ही अवलंबन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों पर यदि साम्राज्य के तीस हजार मनुष्य या आठ राष्ट्र मुख्य राज्य के पास प्रार्थनापत्र भेजें तो मुख्य राज्य को उन विषयों पर जनसम्मति लेनी पड़ती है। मुख्य राज्य द्वारा पास किया हुआ नियम नब्बे दिनों तक साम्राज्य में प्रचलित नहीं किया जा सकता। यह नियम इसलिये किया गया है कि जनता यदि इस पर 'अबाध्य-जन-सम्मति' लेना चाहे तो उसे तीस हजार मनुष्यों के हस्ताक्षर करवाकर मुख्य राज्य के पास प्रार्थना-पत्र भेजने का अवसर मिल सके।

अभी तक भिन्न भिन्न राष्ट्रों की ओर से अबाध्य-जन-सम्मति लेने के लिये प्रायः मुख्य राज्य के पास प्रार्थनापत्र नहीं भेजा गया है। पर जनता के तीस हजार व्यक्तियों द्वारा कई बार प्रार्थनापत्र भेजे जा चुके हैं। १८७४ से १८९५ तक लगभग १८२ नियमों में से २० नियमों पर अबाध्य जन-सम्मति ली गई जिनमें से केवल ६ ही नियम जनता ने पास किए तथा अन्य सब नियमों को पास नहीं किया। इसी समय में मुख्य राज्य की ओर से शासन-पद्धति सम्बन्धी १० नियम बाध्य जन-सम्मति के लिये जनता के पास भेजे गए जिनमें से केवल ६ हीं पास किए गए। इसी प्रकार बर्न नामक राष्ट्र में १८६९ से १८९६ तक ९७ राष्ट्रीय प्रस्ताव जनता में पास होने के लिये भेजे गए। इनमें से केवल ६९ ही पास हुए, शेष छोड़ दिए गए। सालूर नामक राष्ट्र में भी यही घटना हुई। यहाँ १८७० से १८९१ तक ६६ नियम जनता के पास भेजे गए थे जिनमें से केवल पंद्रह ही नहीं पास किए गए थे। शेष ५१ नियमों को जनता ने स्वीकृत कर लिया था। इसी प्रकार के परिणाम जूरिच नामक राष्ट्र ने भी प्रकट किए हैं।

स्विट्जर्लैंड की जन-सम्मति विधि द्वारा न पास किए हुए नियमों पर जब विचार किया जाता है, तो पता लगता है कि प्रायः जनता ने उन्हीं प्रस्तावों को नहीं पास किया जिनसे अधिक सुधार होने की आशा थी। यह क्यों? यह इसी लिये कि

प्राय: जनता अपने प्रतिनिधियों की अपेक्षा अधिक संकुचित विचार की हुआ करती है। स्विट्ज़लैंड में जन-सम्मति-विधि की विशेष रूप से समालोचना हुआ करती है। समालोचकों का कथन है कि यह विधि भी जनता की सम्मति की वास्तविक सूचक नहीं कही जा सकती, क्योंकि राज्य-नियमों के पक्षपाती लोग प्राय: इतनी उत्सुकता से सम्मति देने के लिये नहीं जाते जितनी उत्सुकता से विपक्षी लोग जाते हैं। यह इसी से प्रत्यक्ष है कि बर्न नामक राष्ट्र में कुल सम्मति देने योग्य पुरुषों के ४३ प्रति सैकड़ा ही 'जन-सम्मति विधि' में राज्य-नियमों पर सम्मति देने जाते हैं। विचित्रता यह है कि इसकी अपेक्षा सम्मति देनेवालों की प्रति सैकड़े अधिक संख्या प्रतिनिधियों के चुनाव के समय हुआ करती है, जो कि गणना के अनुसार ६३ होती है। यह अंतर इस बात का सूचक है कि जनता का प्रेम 'जन-सम्मति-विधि' में उतना नहीं है जितना कि चुनाव में है। प्रस्तावों के विषयों के अनुकूल ही सम्मति देनेवालों की संख्या घटा बढ़ा करती है। कई एक प्रस्तावों पर जहाँ ८७·६ सम्मति देनेवाले पहुँचते हैं, वहाँ कुछ पर केवल २०·२ ही। जनता के अधिक प्रिय विषयों से लेकर न्यून प्रिय विषयों तक की सूची यथाक्रम इस प्रकार है—(१) धार्मिक विषय, (२) राजनीतिक विषय, (३) रेल की सड़कें, (४) विद्यालय, (५) आय-व्यय संबंधी विषय, (६) शासन संबंधी विषय।

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट हुआ होगा कि जनता को शासन-संबंधी विषय ही सबसे कम प्रिय हैं तथा उन्हीं पर सम्मति देनेवाले भी बहुत ही कम पहुँचते हैं। यह क्यों ? यह इसी लिये कि जनता जो विषय समझ सकती है तथा जिसपर विचार सकती है, अधिकतर उसी पर सम्मति देने के लिये जाती है। शासन संबंधी कठिन विषय उसकी समझ में नहीं आ सकते, अतः उन पर वह सम्मति देने के लिये नहीं जाती। ऐसे कठिन विषय में जनता के बहुत ही थोड़े व्यक्तियों का प्रवेश होता है; अतः उस पर सम्मति देने के लिये भी बहुत ही थोड़े व्यक्ति जाते हैं, और यह उचित भी प्रतीत होता है। दूसरा आक्षेप जन-सम्मति-विधि पर यह किया जाता है कि जनता को पर्याप्त साधन प्राप्त नहीं हैं जिनसे वह किसी विषय पर गंभीर रूप से अपनी सम्मति निश्चित करे। यह आक्षेप बहुत कुछ सत्य है। परंतु इस दूषण को दूर करने के लिये स्विस् राज्य ने जो कुछ यत्न किया है, वह भी प्रशंसनीय है। राज्य उन प्रस्तावों को अपने प्रेस द्वारा छपवाकर जनता के पास भेज देता है जिन पर उसे 'जन-सम्मति' लेनी होती है। इस कार्य में राज्य का बहुत धन खर्च होता है। गणना से पता लगा है कि राज्य के १३०००० फ्रैंक् (७७००० रु०) के लगभग केवल इसी कार्य में व्यय होते हैं। प्रस्तावों की मुद्रित प्रति मिलने से विषय जनता के सामने आ जाता है और उसके समझाने के लिये अभी तक कोई साधन स्विस् राज्य को नहीं सूझा है।

तीसरा आक्षेप इस विधि पर यह किया जाता है कि इस विधि के प्रचलित होने से यह बहुत संभव है कि कालांतर में जनता के प्रतिनिधि राज्यकार्य में अपना उत्तरदायित्व बहुत ही कम समझने लगें। परंतु यह आक्षेप कहाँ तक सत्य है, इसका निर्णय करना अत्यंत कठिन है। क्या होगा, यह कौन कह सकता है। जो कुछ सामने है, वह तो यही है कि अभी तक स्विट्ज़लैंड में यह दशा नहीं हुई है। प्रतिनिधि राज्यकार्य में बहुत कुछ अपने उत्तरदायित्व को समझते हैं। इस प्रकार यह दिखाया जा चुका है कि जन-सम्मति-विधि पर क्या क्या आक्षेप भिन्न भिन्न विद्वानों की ओर से किए जाते हैं। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि स्विट्ज़लैंड में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो इस विधि का मूलोच्छेदन करना चाहे। जो कुछ आक्षेप किए जाते हैं, वे केवल इसी लिये कि यह विधि जनता के लिये अतिशय लाभकर है। अतः इसमें जो दूषण हैं, उन्हें भी किसी प्रकार से दूर कर दिया जाय। इस विधि के कारण ही स्विट्ज़लैंड की शासन-पद्धति सब देशों की अपेक्षा आदर्श शासन-पद्धति समझी जाती है। महाशय ब्राइस जैसे राजनीतिज्ञ तथा योग्य विद्वान् का कथन है कि जनसम्मति की विधि स्विट्ज़लैंड में अभी तक बहुत ही बुद्धिमत्ता से काम में लाई गई है। अतः इसने उस देश को हानि की अपेक्षा बहुत कुछ लाभ ही पहुँचाया है। मनुष्यों के प्रत्येक कार्य के सदृश यह भी अपूर्ण ही है। जो

कुछ लोगों को करना चाहिए, वह केवल यही है कि इसके परित्याग की अपेक्षा इसके दूषणों के दूर करने का ही विशेषतः यत्न हो। जन-सम्मति-विधि ने स्विस् राष्ट्र-संघटन को बहुत ही अधिक लाभ पहुँचाया है।

बाध्य तथा अबाध्य जनसम्मति पर जो कुछ लिखना था, वह लिखा जा चुका है। अब नियामक जनसम्मति पर भी मैं कुछ लिख देना आवश्यक समझता हूँ। बाध्य तथा अबाध्य जनसम्मति की विधि एक मात्र निषेधात्मक है; अर्थात् इस विधि के द्वारा जो कुछ स्विस् जनता कर सकती है, वह केवल यही है कि अपने प्रतिनिधियों द्वारा पास किए हुए नियमों को चाहे राज्य में प्रचलित करे, चाहे प्रचलित होने से रोक दे। परंतु स्विस् विद्वानों की सम्मति है कि प्रजासत्तात्मक राज्य तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक जनता का नियम-निर्माण में पूर्ण रूप से हाथ न हो। अतः इस बात की पूर्णता के लिये भी वहाँ एक विधि प्रचलित की गई है जिसे नियामक-जन-सम्मति विधि (The Initiative) के नाम से पुकारा जाता है। नियामक-जन-सम्मति-विधि के अनुसार जातीय सभाओं के सभ्यों के विरुद्ध भी कुछ व्यक्ति एक नियम बनाते हैं तथा उस पर बहुत से व्यक्तियों के हस्ताक्षर करवाकर राज्य के पास भेज देते हैं। राज्य उस नियम को अपनी नियामक सभाओं में भेजता है। यदि वह नियम पास हुआ, तब तो कोई बात

नहीं है, वह राज्यनियम हो ही गया जो कि जनता को अभीष्ट था। परंतु यदि वह नियम वहाँ पास न हो, तब राज्य उस नियम पर जनसम्मति लेता है। यदि जनसम्मति उस नियम को पास कर दे, तब वह राज्यनियम हो जाता है तथा राज्य को अपनी सम्मति के विरुद्ध भी उस पर कार्य करना ही पड़ता है। कई बार ऐसा होता है कि प्रार्थनापत्र भेजनेवाले साधारण तौर पर किसी नियम के सुधार का ही जिक्र करते हैं; परंतु जब जनता सुधार करना स्वीकृत कर लेती है, तब प्रार्थीजन या राज्य कोई उस नियम को सुधारकर पुनः जनता में पेश करते हैं तथा वहाँ से पास होने पर वह सुधार राज्यनियम का रूप धारण कर लेता है। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि मुख्य राज्य के किसी प्रस्ताव पर 'नियामक-जन-सम्मति' लेने के लिये पचास हजार पुरुषों का प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर करना आवश्यक है। जूरिच राष्ट्र का नियम है कि पाँच हजार आदमी जिस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करके भेजें, वह प्रस्ताव राज्य को नियामक-जन-सम्मति के लिये भेजना पड़ता है। इसी प्रकार 'नियामक-जन-सम्मति' का किसी प्रस्ताव के संबंध में विचार करवाने के लिये भिन्न भिन्न राष्ट्रों की ओर से हस्ताक्षर करनेवालों की भिन्न भिन्न संख्या नियत है।

१८४८ में स्विस् शासन-पद्धति के निर्माताओं ने अमेरिकन शासन-पद्धति के अनुसार ही अपने देश की शासन-पद्धति

का निर्माण किया। उन्हें यह पसंद न था कि वे भी अपने देश में साम्राज्य के शासन का संपूर्ण अधिकार एक प्रधान के ही हाथ में दे दें। अतः उन्होंने प्रधान के स्थान पर एक 'राष्ट्रीय उपसमिति' का निर्माण किया। राष्ट्रीय उपसमिति में उन्होंने सात सभ्य रखे और उनमें से किसी दो का एक-राष्ट्रीय होना सर्वथा निषिद्ध किया। स्विस् शासन-पद्धति के निर्माताओं ने यहीं पर बस न की। उन्होंने राष्ट्रीय उपसमिति की शक्ति भी इस बात से न्यून कर दी कि उसे प्रतिनिधि सभा का ही एक अंग बना दिया। इस प्रकार उन विद्वानों ने स्विस् शासन-पद्धति के जो मुख्य मुख्य अंग बनाए, वे ये हैं—(१) प्रतिनिधि सभा, (२) राष्ट्र सभा, (३) जातीय सभा, (४) राष्ट्रीय उपसमिति और (५) न्याय सभा।

स्विस् राष्ट्र-संघटन की शासन-पद्धति के अंग

अमेरिकन शासन-पद्धति को सामने रख कर ही स्विस् शासन-पद्धति का निर्माण किया गया है, यह अभी लिखा जा चुका है। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि दोनों देशों की शासन-पद्धतियाँ कार्य में एक दूसरी से सर्वथा विपरीत हैं। जहाँ स्विस् शासन-पद्धति प्रबल है और अमेरिकन शासन-पद्धति दुर्बल है; और जहाँ द्वितीय प्रबल है, वहाँ प्रथम दुर्बल है। दृष्टांत के तौर पर अमेरिकन शासन-पद्धति में राष्ट्र सभा तथा न्याय सभा प्रशंसा के योग्य समझी

जाती हैं, परंतु स्विस् शासन-पद्धति में ये ही दोनों निर्बल समझी जाती हैं। स्विस् शासन-पद्धति में राष्ट्रीय उपसमिति तथा प्रतिनिधि सभा प्रशंसनीय हैं, पर अमेरिकन शासन-पद्धति में वे अप्रशंसनीय हैं। सारांश यह कि दोनों ही देशों में शासन-पद्धति के उन उन अंगों ने सफलता से काम किया है जो उनकी स्वजातीय हैं।

स्विस् प्रतिनिधि सभा के सभ्यों की संख्या १४७ है। इसमें राष्ट्र द्वारा विभक्त ५२ प्रांतों से प्रतिनिधि आते हैं। स्विट्-

प्रतिनिधि सभा

जलैंड में जनसंख्या तथा प्रतिनिधि का अनुपात १: २०००० है। बीस हजार से कम जनसंख्यावाले राष्ट्रों को एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त है; और यदि किसी राष्ट्र की इतनी जनसंख्या हो कि उसे २० हजार से भाग देने पर १० हजार से ऊपर शेष बचता हो, तो उसे एक और प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। प्रतिनिधि सभा का एक बार जो प्रधान या उपप्रधान होता है, वही अगली बार उस पद पर नहीं चुना जा सकता। यही नियम राष्ट्र के साथ भी है। अर्थात् एक राष्ट्र का जो एक बार प्रधान या उपप्रधान हो, दूसरी बार उसी राष्ट्र का व्यक्ति उस पद पर नहीं चुना जा सकता।

स्विस् राष्ट्र सभा में पूर्ण राष्ट्र के दो सभ्य आते हैं और अर्धराष्ट्र का केवल एक ही सभ्य आता है। स्विस् राष्ट्र सभा

का निर्माण अमेरिकन राष्ट्र सभा को देखकर किया गया था। परंतु कुछ कारणों से दोनों ही एक दूसरी से सर्वथा भिन्न भिन्न हैं। स्विट्ज़र्लैंड में राष्ट्र सभा का जो पूर्व मान था, वह अब नहीं रहा। भिन्न भिन्न दलों के नेता अब प्रतिनिधि सभा में जाना अधिक लाभदायक समझते हैं। यह क्यों? यह इसी लिये कि राष्ट्रीय उपसमिति के सभ्य प्रायः प्रतिनिधि सभा से ही चुने जाते हैं तथा उसके कार्य का निरीक्षण आदि करने में प्रतिनिधि सभा ही अधिक शक्तिशालिनी है। राष्ट्र सभा के कुल मिलाकर ४४ सभ्य हैं। ये २२ राष्ट्रों द्वारा चुनकर आते हैं। राष्ट्र सभा में प्रतिनिधियों को भेजने, उनकी तनखाहें देने तथा प्रतिनिधियों के स्वराष्ट्र संबंधी मामलों में राष्ट्र-संघटन के नियम नहीं लगते; अपितु भिन्न भिन्न राष्ट्रों के अपने अपने नियम ही इन मामलों में काम करते हैं। एक राष्ट्र अपने प्रतिनिधि को चार वर्ष के लिये भेजता है और दूसरा राष्ट्र केवल एक ही वर्ष के लिये। भिन्न भिन्न राष्ट्रों में राष्ट्र सभा के प्रतिनिधियों के चुनने का तरीका भी भिन्न भिन्न है। राष्ट्र सभा के प्रधान और उपप्रधान के चुनाव में प्रतिनिधि सभा के ही नियम लगते हैं।

राष्ट्र सभा

दोनों सभाओं के कार्य

दोनों सभाओं के, स्विस् शासन-पद्धति के अनुसार, निम्नलिखित कार्य कहे जा सकते हैं—

१—(क) विदेशीय राष्ट्रों के साथ संधि आदि करना।

(ख) शांति या युद्ध की उद्घोषणा करना।

(ग) राष्ट्र-संघटन की सेना का प्रबंध करना।

(घ) स्विट्ज़र्लैंड को युद्धों में उदासीन रखना तथा बाह्य स्वरक्षा करना।

२—(च) राष्ट्रों के अधिकारों के विरुद्ध राष्ट्र-संघटन के अधिकारों को सुरक्षित रखना।

(छ) देश की अंतरीय स्वरक्षा तथा शांति के लिये भिन्न भिन्न नियमों को पास करना तथा भिन्न भिन्न कार्य करना।

(ज) राष्ट्र-संघटन की शासन-पद्धति के अनुसार राष्ट्रों के लिये तथा राष्ट्र-संघटन के लिये भिन्न भिन्न नियम बनाना।

३—(झ) आय-व्यय का बजट बनाना।

(ट) साम्राज्य के शासन के लिये भिन्न भिन्न राजकीय विभागों पर राज्याधिकारियों को नियत करना तथा उनका वेतन आदि निश्चित करना।

४—राष्ट्रीय उपसमिति के कार्यों का निरीक्षण करना तथा उपसमिति के शासन संबंधी निर्णयों के विरुद्ध शिकायतों का निर्णय करना।

५—जन-सम्मति विधि द्वारा राष्ट्र-संघटन की शासन-पद्धति में परिवर्तन करना तथा उसको सुधारना।

जब दोनों सभाओं का सम्मिलित अधिवेशन जातीय सभा के रूप में होता है, तब उसके अधिकार भी भिन्न हो जाते हैं। वे ये हैं—

जातीय सभा

१—(क) राष्ट्रीय उपसमिति के सभ्यों को नियत करना।

(ख) राष्ट्रीय न्यायाधीश, महामंत्री तथा राष्ट्रीय सेना के सेनापतियों को नियत करना।

२—अपराधियों को क्षमा प्रदान करना।

३—राष्ट्रीय अधिकारियों की पारस्परिक कलह शांत करना इत्यादि।

प्रतिनिधि सभा का प्रधान ही इसका प्रधान होता है तथा उसी के नियम जातीय सभा के कार्यक्रम के लिये काम में आते हैं।

राष्ट्रीय उपसमिति

राष्ट्रीय उपसमिति के सभ्यों का चुनाव जातीय सभा द्वारा होता है। सभ्यों का चुनाव केवल तीन वर्ष के लिये होता है। परंतु यदि जातीय सभा के सभ्यों का चुनाव तीन वर्ष से पूर्व ही हो जाय, तो इसके सभ्यों का चुनाव भी बीच ही में हो जाता है। सारांश यह कि उपसमिति का जन्म मरण जातीय सभा के साथ हुआ करता है, क्योंकि वही इसकी चुनने-वाली है। उपसमिति के सात सभ्य होते हैं और राष्ट्रकार्य भी सात ही विभागों में विभक्त हैं। इस प्रकार एक एक

सभ्य को एक एक विभाग का शासन मिल जाता है। भिन्न भिन्न विभागों का प्रधान ही राष्ट्रीय उपसमिति का सभ्य हुआ करता है। संपूर्ण विभागों के कार्य का निरीक्षण करने के लिये उन्हीं में से किसी एक को प्रधान के तौर पर चुन लिया जाता है। उपप्रधान भी उन्हीं में से किसी को नियत कर लिया जाता है जो प्रधान को समय समय पर सहायता पहुँचाता रहता है। उपसमिति के प्रधान और उपप्रधान को चुननेवाली एक मात्र जातीय सभा ही है। प्रधान तथा उप-प्रधान प्रति वर्ष बदलते रहते हैं। एक ही व्यक्ति को दूसरी बार उस पद पर नहीं चुना जाता। स्विट्ज़लैंड में यह एक रीति सी चल गई है कि उपप्रधान को ही अगले वर्ष प्रधान के तौर पर चुन लिया जाता है तथा इस प्रकार क्रमश: उपसमिति के प्रत्येक सभ्य को इस पद पर आने का अवसर मिलता रहता है। प्रधान के शासन संबंधी अधिकार उपसमिति के सभ्यों के तुल्य ही हैं। अपने साथियों की अपेक्षा जो विशेष कार्य प्रधान के हाथ में है, वह केवल यही है कि वह अपने साथियों के कार्यों से सदा परिचित रहता है तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम को सुचारु रीति पर चलाने के लिये प्रधान का पद ग्रहण करता है। १८८८ में विदेशीय विभाग का कार्य प्रधान के सपुर्द किया गया था; परंतु इसके लिये जब स्थिरता की आवश्यकता हुई, तब यह निश्चित हुआ कि प्रधान जिस विभाग का कार्य अपने हाथ में लेना चाहे, ले ले। स्विट्ज़लैंड में राजकार्य के

सात विभाग हैं, यह पूर्व ही लिखा जा चुका है। उनके नाम निम्नलिखित हैं—

(१) विदेशीय विभाग, (२) न्याय तथा पुलिस विभाग, (३) कृषि विभाग तथा व्यवसाय विभाग, (४) युद्ध विभाग, (५) आयव्यय विभाग, (६) डाक तथा रेल विभाग, और (७) अंतरीय (गृह्य प्रबंध) विभाग।

उपसमिति के कार्य बहुत से हैं। उपसमिति के बहुत से न्यायालय संबंधी कार्य हैं और शासन संबंधी कार्य भी उसके पास पर्याप्त हैं। स्विट्ज़लैंड में यद्यपि मुख्य न्यायालय है जिसमें राज्यनियम संबंधी झगड़े भेजे जाते हैं, परंतु कुछ शासन संबंधी विवाद उसके हाथ से लेकर जातीय सभा ने उपसमिति के सपुर्द कर दिए हैं। इसमें संदेह नहीं कि उपसमिति न्याय करने में केवल न्याय का ही ध्यान नहीं रखती, वरन् राजनीति का भी ध्यान रखा करती है। परिणाम इसका यह होता है कि उसके बहुत से निर्णय दूसरों को निर्णय नहीं प्रतीत हो सकते। यहाँ पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यदि स्विट्ज़लैंड की शासक राष्ट्रीय उपसमिति न्यायवितरण का भी काम करती है, तो वह स्वेच्छाचारिणी क्यों नहीं हो जाती? क्योंकि जहाँ कहीं शासन तथा न्याय का कार्य एक ही व्यक्ति के हाथ में सपुर्द कर दिया जाता है, वहाँ ऐसा होना संभव है। इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि स्वतंत्रता देवी की उपासक स्वतंत्र

जातियों में यह घटना प्रायः नहीं होती। और यदि कभी ऐसी बात होनेवाली भी हो, तो भी अखबारों, पुस्तकों तथा जनता के विक्षोभों का शासकों को इतना भय होता है कि वे प्रायः ऐसा करने का साहस ही नहीं करते। युरोप के अन्य देशों में 'अंतरीय या गृह्य विभागों' के मंत्री जब कभी स्वेच्छाचारित्व प्रकट करते हैं, तो उसका कारण यह होता है कि उनके हाथ में असीम शक्ति दे दी जाती है। परंतु स्विस् राष्ट्र-संघटन में यह कब संभव है? उपसमिति के सभ्य जो कुछ काम करते हैं, वह केवल यही है कि वे देखें कि प्रबंधकर्त्ता लोग नियमों को कार्य में उचित विधि पर लाते हैं या नहीं। उपसमिति के सभ्य राष्ट्रीय प्रबंधकर्त्ताओं के साथ बहुत कुछ प्रेम से व्यवहार करते हैं, तथा बड़ी बुद्धिमत्ता से प्रत्येक नियम के भावों को समझकर काम करते हैं। यदि कभी किसी राष्ट्र से उपसमिति के सभ्यों का झगड़ा हो जाय तथा वह राष्ट्र जातीय नियमों का पालन करने के लिये उद्यत न हो, तो उपसमिति उस राष्ट्र में जातीय सेना को पहुँचा देती है जो बिना किसी प्रकार के उत्पात के वहीं पर रहने लगती है। इस सेना का व्यय उसी राष्ट्र पर पड़ता है जिसमें वह शांति के लिये जाती है। परिणाम इसका यह होता है कि प्रायः स्विस् राष्ट्र इस आर्थिक व्यय के भय से राष्ट्र-संघटन के नियमों का अतिक्रमण ही नहीं करते।

स्विट्जर्लैंड में शासन का नियम के साथ संबंध सब सभ्य जातियों से भिन्न है। राष्ट्राय उपसमिति शासन के विषय में जातीय सभा के अधीन है। जातीय सभा ने अभी तक उपसमिति के शासन संबंधी किसी कार्य को सर्वथा पलटा नहीं है। उपसमिति प्रति वर्ष अपनी वार्षिक कार्रवाई जातीय सभा में पढ़ती है और जातीय सभा उसके कार्यों की समालोचना करती है तथा उन उन कार्यों पर अपनी असम्मति प्रकट करती है जिनसे उसकी असहमति होती है, जिससे भविष्य में उन कार्यों के शासन में ध्यान रखा जाय।

राष्ट्रीय उपसमिति की तुलना अँगरेजी मंत्रिसभा की उपसमिति से भी की जा सकती है। यद्यपि स्विस् उपसमिति के सभ्य जातीय सभा की किसी सभा के सभ्य नहीं होते, परंतु दोनों ही सभाओं में उन्हें बोलने का पूर्ण अधिकार मिला है। इस प्रकार वे लोग राज्यनियम-निर्माण में अपना पूरा पूरा प्रभाव डाल सकते हैं और डालते भी हैं। स्विस् उपसमिति जातीय सभा की सम्मति पर बहुत से प्रस्ताव बनाती है जो जातीय सभा में पास किए जाते हैं। वास्तव में बात तो यह है कि राष्ट्र के प्रायः संपूर्ण नियम जातीय सभा में पास करवाने के लिये भेजने से पूर्व एक बार इसके हाथों से अवश्यमेव गुजरते हैं। इस प्रकार शासन तथा नियम का संबंध अँगरेजी मंत्रिसभा की उपसमिति के सदृश स्विस् उपसमिति में भी अत्यंत समीप का ही है; परंतु यहाँ पर

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दोनों देशों की उपसमितियों के ही ये संबंध कुछ भिन्न भिन्न सिद्धांतों पर आश्रित हैं। स्विस् उपसमिति किसी प्रस्ताव के पास न होने पर इस्तीफा नहीं देती। इसके विपरीत यदि जातीय सभा शासन या नियम संबंधी किसी कार्य में अपना मतभेद प्रकट करे, तो स्विस् उपसमिति अपनी सम्मति के विरुद्ध भी जातीय सभा की सम्मति पर बड़ी प्रसन्नता से कार्य करती रहती है। स्विस् उपसमिति के सभ्यों में यह सिद्धांत काम करता रहता है कि वे जातीय सभा के सामने जब कोई प्रस्ताव पेश करते हैं, तो वह इसी लिये करते हैं कि जातीय सभा को शासन या नियम के विषय में एक उचित सलाह मिल सके, न कि इसलिये कि वे संपूर्ण शासन के जिम्मेवार हैं। अतः यह उचित नहीं है कि जातीय सभा को उनकी सम्मति पर ही चलना चाहिए; तथा यदि जातीय सभा उनकी सम्मति पर चलने को तैयार न हो तो वे राष्ट्र के शासन की जिम्मेवारी लेने में असमर्थ हैं, अतः वे इस्तीफा दे दें। इस दशा में जातीय सभा दूसरे व्यक्तियों की उपसमिति बनावे जिनकी सम्मति जातीय सभा की सम्मति से मिलती हो और जो राष्ट्र के कार्य की जिम्मेवारी ले लें। यही सिद्धांत है जिस पर स्विस् उपसमिति कार्य करती हुई अपनी इच्छाओं के विरुद्ध होते हुए भी कई एक बातों पर जातीय सभा की सम्मति पर कार्य करती रहती है तथा अपना पदत्याग नहीं करती। १८४८ से

लेकर अब तक केवल दो ही बार उपसमिति के सभ्यों ने इस्तीफा दिया है जिसमें केवल एक बार नियम संबंधी झगड़े के ऊपर उपसमिति ने इस्तीफा दिया था। स्विस् विद्वानों की सम्मति में राष्ट्र के लिये यह अविवेचनापूर्ण बात है कि उपसमिति के सभ्यों को सम्मति-विसंवाद के कारण इस्तीफा दे देना पड़े, जब कि उनमें शासन संबंधी अनेक गुण विद्यमान हों।

स्विस् उपसमिति को एक प्रकार से प्रबंधकारिणी सभा भी कह सकते हैं। इसके सभ्यों के चुनाव में प्रायः उनकी प्रबंध या शासन की शक्ति ही मुख्य तौर पर देखी जाती है; उनमें यह नहीं देखा जाता कि वे राजनीतिक नेता हैं या नहीं। स्विस् उपसमिति का एक मात्र कार्य यह है कि स्विट्जलैंड का शासन उचित विधि पर किया जाय तथा समय समय पर नियमों के विषय में जातीय सभा को उचित सलाह दी जाया करे। उपसमिति से जातीय सभा यह आशा नहीं करती कि वह राष्ट्र की राजनीति को अपने ही हाथ में कर ले; और इसी बात में उपसमिति की राष्ट्र में क्या स्थिति है, इसका रहस्य छिपा हुआ है। प्रायः भिन्न भिन्न दलों में से ही उपसमिति के सभ्य चुने जाते हैं; पर विचित्रता यह है कि इस पर भी उपसमिति का कार्य बहुत ही अच्छी तरह पर चलता है, जब कि उनके प्रत्येक सभ्य की आपस में सम्मति एक नहीं होती। इसका कारण यही है कि उप-

समिति के सभ्य अपने कार्य में स्वतंत्र नहीं हैं। वे जातीय सभा के एक प्रकार से सेवक हैं। कुछ भी हो, यह स्विट्जर्लैंड की ही विशेषता है कि वहाँ राष्ट्रीय उपसमिति के सभ्य बड़ी दूरदर्शिता से तथा निष्पक्ष होकर अपना कार्य करते हैं। वे लोग भिन्न भिन्न दलों में से चुनकर आते हैं, पर वे लोग अपने आपको एक मात्र दलों के सिद्धांतों में ही नहीं जकड़े रखते हैं। उपसमिति के सभ्यों का यह विशेष गुण समझना चाहिए कि वे लोग जातीय सभा में बड़ो बुद्धिमत्ता से भिन्न भिन्न दलों के विचारों की भिन्नता मिटाते हुए राज्य-कार्य बड़ी शांति से चलाते हैं।

उपसमिति के वे ही सभ्य प्राय: बारंबार चुने जा सकते हैं, और प्राय: ऐसा होता भी है। १८४८ से १८९३ तक कुल मिलाकर ३१ व्यक्ति उपसमिति के सभ्य बन चुके थे जिनमें से ७ अभी उस समय कार्य भी कर रहे थे। गणना से प्रत्येक व्यक्ति के कार्य का औसत १० वर्ष निकला है। वास्तव में बात तो यह है कि १५ सभ्य लगभग १५ वर्ष से ऊपर तक काम कर चुके थे तथा ४ सभ्य २० वर्ष से ऊपर तक और एक सभ्य ने तो ३० वर्ष से ऊपर तक राष्ट्र की सेवा की थी।

उपसमिति का जब कोई सभ्य मर जाता है या इस्तीफा दे देता है, उस समय उसके स्थान पर जातीय सभा किसी दूसरे व्यक्ति को सभ्य के तौर पर चुनकर भेज देती है। उपसमिति

के सभ्यों को प्राय: कार्य बहुत ही अधिक करना पड़ता है। बहुत से यत्न किए जा रहे हैं जिनसे सभ्यों का परिश्रम कम किया जाय। इस प्रकार राष्ट्रीय उपसमिति पर जो कुछ लिखना था, लिखा जा चुका। अब हम कुछ शब्द स्विस् न्यायालय विभाग पर लिख देना आवश्यक समझते हैं।

न्यायालय विभाग

स्विट्ज़लैंड का न्यायालय विभाग एक विचित्र प्रकार का है। वहाँ मुख्य न्यायालयों के साथ साथ राष्ट्रीय न्यायालय अपना कार्य बहुत ही अच्छी तरह से संपादित करते हैं। मुख्य न्यायालय के अतिरिक्त जातीय सभा तथा राष्ट्रीय उपसमिति भी वहाँ न्याय संबंधी कार्य करती है। स्विट्ज़लैंड में प्रत्येक सभा के कार्यों की सीमाएँ शासन-पद्धति द्वारा पूर्ण रूप से निर्दिष्ट हैं। १८४८ में मुख्य न्यायालय की शक्ति बहुत कम थी। १८७४ की नियम-धारा से उसे भी मुख्य शक्ति मिल गई।

फौजदारी मुकदमों के निर्णय के लिये मुख्य न्यायालय सारे प्रांतों में भ्रमण करता है। न्यायालय के भ्रमण की दृष्टि से संपूर्ण स्विट्ज़लैंड पाँच भागों में विभक्त है जिनमें बारी बारी से मुख्य न्यायालय चक्कर लगाता है। वे भाग निम्नलिखित हैं—

(१) फ्रेंच स्विट्ज़लैंड, (२) बर्न तथा उसके चारों ओर का प्रदेश, (३) जूरिच तथा उसके समीपवर्ती राष्ट्र,

(४) मध्य तथा पूर्वीय स्विट्ज़लैंड का कुछ भाग और
(५) इटैलियन स्विट्ज़लैंड ।

मुख्य न्यायालय निम्नलिखित विषयों में निर्णय करता है—

१—(क) सार्व-राष्ट्रीय विषय ।

(ख) राष्ट्रों की सीमा का निश्चय ।

(ग) राजकीय अधिकारियों के राज्यनियम संबंधी झगड़ों का निर्णय ।

(घ) शासन-पद्धति से निश्चित नागरिकों के अधिकार संबंधी झगड़े ।

मुख्य न्यायालय के हाथ में यह शक्ति नहीं है कि वह शासन-पद्धति के अनुकूल या प्रतिकूल कोई राज्यनियम प्रकट करे। जनता ने यह शक्ति अपने ही हाथ में ली है। इसमें निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं।

२—(क) भिन्न भिन्न समितियों के साथ राष्ट्रों के झगड़े।

(ख) राष्ट्रों के प्रति राष्ट्रों के झगड़े ।

(ग) राष्ट्र-संघटन तथा राष्ट्रों के झगड़े ।

३—(क) राष्ट्रीय अधिकारियों के प्रति विद्रोह का षड्यंत्र ।

(ख) सार्वजातीय नियमों का भंग ।

(ग) बड़े बड़े राजनीतिक अपराध ।

राष्ट्रीय उपसमिति के अधिकार में इन विषयों का निर्णय है—

(१) राष्ट्रीय सेनाओं को एकत्र करने के विषय में।

(२) राष्ट्रीय विद्यालयों के शिक्षापद्धति संबंधी विषयों में।

(३) व्यापार की स्वतंत्रता।

(४) आगत कर (Import duties)।

(५) व्यय कर (Consumptive taxes)।

(६) धार्मिक स्वतंत्रता।

(७) राष्ट्रीय सभ्यों के चुनाव का औचित्य, अनौचित्य इत्यादि।

सातवाँ परिच्छेद

इँगलैंड

संसार की अन्य सब शासन-पद्धतियों में अँगरेजी शासन-पद्धति निराली ही है। और देशों की शासन-पद्धतियाँ तो बहुधा लिपिबद्ध दशा में पाई जाती हैं और वे किसी खास समय को और किसी खास व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को अपने जन्म का आधार मान सकती हैं। फ्रांस की शासनप्रणाली का जन्म सन् १८७५ ईस्वी में हुआ और उसको बनाने में भिन्न भिन्न दलों के नेता एक जगह एकत्र हुए। जर्मनी में भी सन् १९१९ में वीमर नामक स्थान में बैठकर वहाँ के प्रतिनिधियों ने शासन-पद्धति निर्माण की। यही अमेरिका में भी हुआ। आज इनकी शासन-पद्धतियों की धाराएँ हमें लिपिबद्ध प्राप्त हो सकती हैं। परंतु इँगलैंड में न तो शासन-पद्धति का कोई जन्म-दिवस ही कहा जा सकता है और न कोई खास मनुष्य या मनुष्यों का समूह उसका निर्माणकर्त्ता कहा जा सकता है। यहाँ की सारी शासन-पद्धति लिपिबद्ध धाराओं के रूप में भी नहीं मिल सकती। वास्तव में बात यह है कि इँगलैंड की शासन-प्रणाली कई अवसरों पर टुकड़े टुकड़े करके बनी और बनती जा रही है। बहुत सा हिस्सा तो केवल परिपाटी और

लोगों के आचार पर ही निर्भर है। वह लिपिबद्ध नहीं है। यथा अँगरेजी शासन-पद्धति में कोई ऐसा लिखित नियम नहीं है कि प्रतिनिधि सभा के अविश्वास पर मंत्रिसभा इस्तीफा दे दे, परंतु यह बात ऐसी स्थापित हो गई है जैसे किसी राज्यनियम की आज्ञा हो। इसी प्रकार अँगरेजी शासन-प्रणाली में कई एक ऐसी बातें भी पाई जाती हैं जो दिखाई कुछ देती हैं, परंतु वास्तव में हैं कुछ। सच पूछा जाय तो अँगरेजी शासन-पद्धति की यही एक सब से बड़ी विचित्रता है। किसी महाशय ने ठीक ही कहा है—'अँगरेजी शासन-प्रणाली में जो दिखाई देता है, वह वास्तव में है ही नहीं; और जो कुछ है, वह दिखाई ही नहीं देता।' राज्यनियम के अनुसार इँगलैंड का राजा सारे साम्राज्य का सम्राट् है और उसकी शक्ति बहुत ही ज्यादा है, जैसा कि हम आगे चलकर लिखेंगे। परंतु क्या वास्तव में उसे ऐसी शक्ति प्राप्त है? कदापि नहीं। सच पूछा जाय तो इँगलैंड का राजा वास्तव में कुछ भी नहीं है, उसकी कुछ भी शक्ति नहीं है। इस गोरखधंधे का कारण क्या है? कारण यही है कि इँगलैंड में बहुत सी बातें परिपाटी पर ही निर्भर हैं। अतः अँगरेजी शासन-प्रणाली समझने के लिये जब तक इस बात पर ध्यान नहीं दिया जायगा, तब तक उसका सच्चा स्वरूप ध्यान में आना असंभव है।

यहाँ हम अँगरेजी शासन-प्रणाली की एक और विचित्रता बता देना उचित समझते हैं। वह यह कि अन्य देशों में

शासन-प्रणाली के नियमों और राज्यनियमों में भेद है। राज्यनियम तो जातीय सभा रोजमर्रा बना सकती है और मिटा भी सकती है। परंतु वहाँ शासन-पद्धति के नियमों को बनाने और बदलने के लिये दूसरे ही तरीके का अवलंबन करना पड़ता है। इँगलैंड में राज्यनियमों और शासन-प्रणाली के नियमों में कोई भेद नहीं है। दोनों प्रकार के नियम एक ही विधि से बनाए जा सकते हैं और बदले जा सकते हैं। और जगह तो इस बात की जाँच करने के लिये बहुधा न्यायालय रहते हैं कि कहीं शासन-प्रणाली के भिन्न भिन्न अंग, शासन-प्रणाली द्वारा प्रदत्त अपने अपने अधिकारों से परे तो नहीं जाते। इँगलैंड में पार्लिमेंट जो कुछ नियम बना दे, सब मान्य होंगे। कोई न्यायालय यह नहीं कह सकता कि पार्लिमेंट का कोई नियम शासन-पद्धति के विरुद्ध है। इन विशेषताओं को बताकर अब हम अँगरेजी शासन-पद्धति के भिन्न भिन्न अंगों पर कुछ लिखेंगे।

अँगरेजी शासन-पद्धति के अंग

अँगरेजी शासनपद्धति में निम्नलिखित अंग ध्यान देने योग्य हैं—

(१) राजा, (२) मंत्रिसभा तथा उसकी उपसमिति, (३) गुप्त सभा, (४) प्रतिनिधि सभा, (५) लार्ड सभा।

इँगलैंड में बड़ी बड़ी उपाधियाँ देना, लार्ड बनाना नौ तथा स्थल सेना के मुख्य मुख्य अधिकारियों को नियत करना, मुख्य न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट, बिशप, आर्च बिशप

तथा अन्य मुख्य मुख्य राज्य-कर्मचारियों को भिन्न भिन्न राज-कार्य-विभागों में प्रबंधादि के लिये नियत करना राजा के ही नाम पर होता है। मंत्रिसभा की उप-समिति की सहमति से वह अन्य भी बहुत से अधिकारों को कार्य में ला सकता है, परंतु इसका उत्तरदायित्व उपसमिति पर ही होता है, न कि राजा पर। इँगलैंड में राजा बनने का अधिकार पूर्व राजा के बड़े पुत्र को ही है और उसका प्रोटस्टेंट मत का होना भी आवश्यक है। प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन बुलाना, उसको कुछ समय के लिये बंद कर देना तथा यदि आवश्यकता पड़े तो उसे पुनः नवीन ढंग पर चुनाव के लिये प्रेरित करना आदि कार्य राजा के ही हाथ में हैं। यही नहीं वरन् उपसमिति की अनुमति लेकर राजा युद्ध भी उद्घोषित कर सकता है। राज्ञी विक्टोरिया के अधिकारों का वर्णन करते हुए महाशय बेज्हाट ने लिखा था कि राज्ञी संपूर्ण सेना के हथियार रखवा सकती है, लगभग सबके सब राज्याधिकारियों को पदच्युत कर सकती है, सब जहाजों को बेच सकती है, कार्नवाल को देकर संधि कर सकती है और ब्रिटेन की विजय के लिये युद्ध आरंभ कर सकती है, सब अपराधियों के अपराध क्षमा कर सकती है, और सबसे बढ़कर बात यह है कि वह इँगलैंड के सब मनुष्यों को लार्ड बना सकती है। सारांश यह कि राज्ञी अँगरेजी शासन-पद्धति के अनुसार चलती हुई

राजा की शक्ति तथा अधिकार

इँगलैंड के अंतरीय प्रबंध को उलट पुलट सकती है और एक बुरी संधि या लड़ाई करके सारी जाति को अपमानित कर सकती है तथा नौसेना और स्थलसेना से हथियार रखवा-कर सारे देश को अरक्षित कर सकती है। महाशय बैज्हाट के उपरिलिखित कथन से स्पष्ट हो गया होगा कि शासन-पद्धति के अनुसार अँगरेजी राजा के क्या अधिकार तथा क्या शक्तियाँ हैं। किंतु जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, राजा वास्तव में इनमें से एक भी कार्य अपने इच्छानुसार नहीं कर सकता। वास्तव में राजा कुछ भी नहीं है। जो कुछ कार्य उसके नाम से होते हैं, वे प्रायः प्रधान मंत्री द्वारा ही होते हैं; और जैसा प्रधान मंत्री चाहता है, वैसा ही वह राजा से करा सकता है। अब हम अँगरेजी मंत्रिसभा तथा उसकी उपसमिति की पर्यालोचना करेंगे।

मंत्रिसभा तथा उसकी उपसमिति

इँगलैंड में राजा तथा प्रजा दोनों ही शासक हैं। मंत्रि-सभा अपने प्रत्येक कार्य के लिये प्रतिनिधि सभा के आगे उत्तर-दायिनी है और इसी में उसकी शक्ति समझनी चाहिए; क्योंकि यदि वह राजा के प्रति जिम्मेवार होती, तो इँगलैंड की शासन-पद्धति में राजा की शक्ति असीम हो जाती। अँगरेजी शासन-पद्धति में जो कुछ विचित्र बात है, वह यही है कि महामंत्री राजा द्वारा चुना जाता है, पर उसका उत्तर-दायित्व उसके प्रति नहीं रहता, अपितु प्रतिनिधि सभा के

प्रति होता है। अँगरेजी राजा विजयी दल के किसी मुख्य व्यक्ति को (उसकी स्वीकृति लेकर) महामंत्री बना देता है। महामंत्री अपनी इच्छा के अनुसार अपनी एक मंत्रिसभा बनाता है जिसका प्रत्येक सभ्य उसके साथ बहुत सी बातों में प्राय: सहमत होता है। इँगलैंड की शासन-पद्धति में महामंत्री की शक्ति बहुत ही अधिक है। उसकी सम्मति के अनुसार ही नए नए व्यक्तियों को लार्ड बनाया जाता है, और साम्राज्य के प्रत्येक भाग के शासकों को नियत करना भी उसी की इच्छा पर है। मंत्रिसभा प्राय: अपना कार्य उपसमिति द्वारा ही किया करती है। उस उपसमिति के सभ्य प्राय: निम्नलिखित अधिकारियों में से ही होते हैं--

(१) मुख्य कोषाध्यक्ष।

(२) लार्ड सभा का प्रधान।

(३) गुप्त सभा का प्रधान।

(४) मुद्रा-सचिव।

(५) आयव्यय सचिव।

(६) छ: राष्ट्रीय सचिव —

(क) स्वदेश सचिव,

(ख) विदेश सचिव,

(ग) भारत सचिव,

(घ) उपनिवेश सचिव,

(ङ) युद्ध सचिव,

(च) वायु सचिव।

(७) नौ सेनाधिपति।

(८) स्वास्थ्य सचिव।

(९) स्काटलैंड का मंत्री।

(१०) डाक सचिव।

(११) शिक्षा सचिव।

(१२) कृषि और मत्स्य सचिव।

(१३) व्यवसाय-सभा-प्रधान।

(१४) मजदूर सचिव।

(१५) लंकास्टर की डची का चांसलर।

(१६) राजकीय कार्यों का मुख्य निरीक्षक।

यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि इँगलैंड में यद्यपि मंत्रियों को मुख्य मंत्री ही नियत करता है, तथापि उसके लिये उसे राजा की स्वीकृति लेनी पड़ती है। महामंत्री के भिन्न भिन्न पदों के ग्रहण करने से उपसमिति के सभ्यों की उपरिलिखित संख्या घटती बढ़ती रहती है। इँगलैंड में उपसमिति ही राज्य का कार्य करती है तथा विरोधियों के आक्षेपों का उत्तर देती है। उपसमिति की पराजय होने पर सबके सब मंत्रियों को अपना पद छोड़ देना पड़ता है तथा नवीन महामंत्री अपनी नई मंत्रिसभा तथा उपसमिति का निर्माण करता है।

अँगरेजी शासन-पद्धति में मंत्रिसभा की यह उपसमिति एक बड़ा भारी अंग है। गुप्त सभा के विषय में हम आगे चलकर

लिखेंगे कि उसमें सभ्यों की संख्या बहुत अधिक होती है, अतः वह राजा को उचित सम्मति देने के लिये अयोग्य है। आज-कल गुप्त सभा का यह कार्य मंत्रिसभा की उपसमिति ही करती है। उपसमिति के कारण राज्यकार्य ठीक तौर पर चलता है और संपूर्ण कार्य की जिम्मेवारी ले लेने में भी वह समर्थ हो जाती है।

जब तत्कालीन प्रतिनिधि सभा को मुख्य मंत्री की राजनीति स्वीकृत न हो, उस दशा में मुख्य मंत्री राजा से प्रार्थना कर उसके द्वारा प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त करवाकर नए सिरे से चुनाव के लिये प्रेरित करता है। इस प्रकार करने से मुख्य मुख्य प्रश्नों तथा प्रस्तावों पर 'प्रजा की क्या सम्मति है' इसका राज्य को पता लगता रहता है। यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि मुख्य मंत्री को राजा ही नियत करता है।

जिस समय मंत्रिसभा तथा उसकी उपसमिति की रीति प्रचलित न हुई थी, उस समय राजा जनता द्वारा मुख्य मंत्री पर आक्षेप किए जाने पर अपना अपमान समझ लिया करता था, क्योंकि मुख्य मंत्री को वही नियत किया करता था। अपने आदमी की रक्षा कौन नहीं करता? परंतु मंत्रिसभा की रीति से यह दूषण हट गया है। राजा अब एक निष्पक्ष न्यायाधीश की स्थिति में है, जो जनता में जिस दल का नेता प्रबल हो, उसी को राज्यभार सपुर्द कर देता है, और उसे

इससे कुछ भी प्रयोजन नहीं होता कि उसका कौन मित्र है तथा कौन मित्र नहीं है। प्रतिनिधि सभा तथा राजा को परस्पर मिलानेवाली संस्था भी मंत्रिसभा कही जा सकती है। अँगरेजी राज्यनियमों के अनुसार राजा सदैव निर्भ्रांत तथा निर्दोष हुआ करता है। यह तभी हो सकता है जब कि राजा की किसी कार्य में जिम्मेवारी न हो। मंत्रिसभा की प्रणाली से अब सब कार्यों का जिम्मेवार मंत्री ही हो गया है। यदि शासन में कुछ भी बुराई आती है तो मंत्री को ही पदच्युत होना पड़ता है तथा दूसरा मंत्री उसके स्थान पर शासन के लिये नियत कर दिया जाता है। सारांश यह कि मंत्रिसभा की प्रणाली से अब ब्रिटेन का राजा सर्वप्रिय हो गया है। यदि अब प्रजा में किसी की समालोचना होती है तो तात्कालिक मुख्य मंत्री तथा उसकी उपसमिति की ही।

फ्रांस में भी मंत्रिसभा है; परंतु उसकी अँगरेजी मंत्रिसभा से तुलना करना कठिन है। अँगरेजी मंत्रिसभा के मंत्रियों के अधिकार बहुत कुछ रीति-रिवाजों पर निर्भर हैं और इसका कारण भी है। अँगरेजी शासन-पद्धति का जन्म आकस्मिक नहीं हुआ है, अपितु उसके प्रत्येक अंग को वर्त्तमान कालीन स्वरूप प्राप्त करने में पर्याप्त काल लगा है। इस दशा में लिखित अधिकारों की अपेक्षा रीति रिवाज का शासन-पद्धति में बहुत भाग होना स्वाभाविक है। फरांसीसी शासन-पद्धति का

जन्म आकस्मिक है, अतः उसमें मंत्रियों के अधिकार शासन-पद्धति द्वारा निर्णीत तथा लिखित हैं। फ्रांस की जनता को स्वतंत्रता से अत्यंत प्रेम है। मंत्रियों की स्वेच्छाचारिता उसे पसंद नहीं है। परिणाम इसका यह है कि फरांसीसी प्रतिनिधि सभा यदि किसी साधारण बात पर भी फरांसीसी मंत्रियों के विरुद्ध सम्मति दे दे तो उन्हें अपना पद छोड़ना पड़ता है; परंतु इँगलैंड में यह बात नहीं है। इँगलैंड में मंत्रिसभा के पास पर्याप्त शक्तिशाली साधन विद्यमान हैं। अँगरेजी मंत्रि-सभा राजा की स्वीकृति से प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर पुनः चुनाव के लिये प्रेरित कर सकती है। फरांसीसी मंत्रिसभा ऐसा करने की शक्ति रखते हुए भी असमर्थ है। प्रधान तथा राष्ट्र सभा की स्वीकृति से फरांसीसी मंत्रिसभा, प्रतिनिधि सभा को बरखास्त कर सकती है, परंतु फरांसीसी प्रधान नाम मात्र का ही शासक होता है। वह प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर अपने प्रति विरोध नहीं खड़ा करना चाहता। परिणाम इसका यह हो गया है कि फरांसीसी मंत्रिसभा यद्यपि अँगरेजी शासन-पद्धति को देखकर बनाई गई थी, तथापि अँगरेजी मंत्रि-सभा की अपेक्षा वह शक्ति में अत्यंत न्यून हो गई है। अँगरेजी मंत्रिसभा का नियम-निर्माण में बड़ा भारी हाथ है। फ्रांस में नियम-निर्माण का कार्य प्रायः उपसमितियों के अधीन है। इस कार्य का फल यह है कि फरांसीसी मंत्रिसभा अँगरेजी मंत्रिसभा की अपेक्षा शक्तिहीन है।

फ्रांस में कुछ ऐसे और भी कारण हैं जिनसे फरांसीसी मंत्रिसभा अँगरेजी मंत्रिसभा के सदृश काम करने में असमर्थ हो गई है। फ्रांस में 'दलों का इतिहास' नामक शीर्षक में हमने विस्तृत तौर पर दिखाया है कि वहाँ पर बहुत से दल हैं। जितने बड़े बड़े व्यक्ति उस देश में विद्यमान हैं, उतनी ही वहाँ दलों की संख्या है। विचित्रता यह है कि एक फरांसीसी मंत्रिसभा पराजित होकर जब टूटती है तो उसके बहुत से सभ्य प्राय: नवीन मंत्रिसभा में भी ले लिए जाते हैं। सारांश यह कि फ्रांस तथा इँगलैंड की मंत्रिसभा की रीति आपस में एक दूसरी से भिन्न है।

अँगरेजी गुप्त सभा के निम्नलिखित व्यक्ति सभ्य होते हैं—(१) राजपरिवार के सभ्य, (२) कैंटरबरी का आर्चबिशप,

गुप्त सभा

(३) लंडन का बिशप, (४) लार्ड चांसलर, (५) मुख्य न्यायाधीश, (६) मुख्य बोर्ड्स का प्रधान, (७) प्रतिनिधि सभा का 'प्रवक्ता', (८) इँगलैंड के राजदूत, (९) उपनिवेशों के शासक, (१०) इँगलैंड का मुख्य सेनापति, (११) सब मंत्री, (१२) गुप्त सभा के सभ्य की उपाधि-प्राप्त अन्य सब पुरुष।

गुप्त सभा का अधिवेशन राजप्रासाद में होता है। नए राजा की उद्घोषणा यही सभा करती है और प्रतिनिधि सभा के बर्खास्त करने तथा बुलाने के लिये राजा के द्वारा निकाले हुए घोषणापत्र इसी में तैयार होते हैं। इसकी कई एक उप-

समितियाँ हैं जो भिन्न भिन्न राजकीय कार्यों का संपादन किया करती हैं। दृष्टांत के तौर पर 'न्याय उपसमिति' ही को लीजिए। इसके हाथ में भारत तथा उपनिवेशों की जनता की प्रार्थनाओं को सुनना है। इसी प्रकार गुप्त सभा की 'शिक्षा उपसमिति' शिक्षा संबंधी प्रबंध करती है। इसकी कृषि तथा व्यापार संबंधी उपसमितियाँ भी हैं जो अपने अपने विभाग का निरीक्षण तथा प्रबंध करती हैं।

प्रतिनिधि सभा

इँगलैंड की प्रतिनिधि सभा में आजकल सभ्यों की जो संख्या है, वह सदा से उसमें नहीं चली आई है। समय समय पर सभ्यों की संख्या बढ़ते बढ़ते अब ६१५ के लगभग है। प्रतिनिधि सभा के सभ्य ५ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। इँगलैंड में प्रतिनिधियों का जन-संख्या से अनुपात १: १५००० है। लार्ड, न्यायाधीश, रोमन कैथोलिक पादरी, राज्य-पदाधिकारी, राज्य-दंडित पुरुष, दिवालिए आदि तथा अन्य कई प्रकार के ऐसे ही व्यक्तियों को छोड़कर प्रतिनिधि सभा के सभ्य चुने जाने का प्रायः सभी २१ वर्ष या इससे अधिक उम्रवाले अँगरेजों को अधिकार है। यद्यपि सभ्य के तौर पर चुने जाने के लिये कोई शिक्षा तथा संपत्ति संबंधी कैद नहीं लगाई गई है, परंतु संपत्ति के बिना प्रतिनिधि बनना भी कठिन ही है; क्योंकि इँगलैंड में भी प्रति-निधि सभा के सभ्य बनने में बहुत व्यय करना पड़ता है। इस दशा में निर्धन पुरुषों का प्रतिनिधि सभा का सभ्य बन-

कर लंडन में निवास करना कठिन है। गणना से मालूम हुआ है कि सभ्यों का प्रति दिन ५ पौंड के लगभग व्यय होता है। यह शक्ति निर्धनों के पास कहाँ है कि वे लोग इतना व्यय कर सकें। सन् १९१८ से पहले यहाँ स्त्रियों को सभ्य चुने जाने और वोट देने का अधिकार नहीं था, परंतु सन् १९१८ के बाद से ३० वर्ष की या इससे अधिक उम्रवाली प्रत्येक स्त्री, जो कि कुछ खास जायदाद वाली और शिक्षित हो, वोट देने की अधिकारिणी हो गई है।

कुछ वर्षों से प्रतिनिधि सभा के सभ्यों को ६०००) की वार्षिक वृत्ति मिलती है।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि प्रतिनिधि सभा के सभ्यों का समय पाँच वर्ष है। परंतु अँगरेजी शासन-पद्धति में मंत्रिसभा की रीति ही मुख्य है। परिणाम इसका यह हुआ है कि अभी तक प्रायः कोई प्रतिनिधि सभा अपने पूर्ण समय तक विद्यमान नहीं रही है। औसत से जहाँ इसकी स्थिरता का समय चार वर्ष से भी कम निकलता है, वहाँ पिछली सदी की सब से लंबी प्रतिनिधि सभा छः वर्ष, एक मास तथा बारह दिन तक ही विद्यमान रही थी।

प्रतिनिधि सभा अपना 'प्रवक्ता' आप चुनती है, पर उसके क्लार्क तथा सार्जेण्ट एट् आर्म्स राजा द्वारा चुने जाते हैं। प्रतिनिधि सभा का बहुत सा समय तो मंत्रिसभा की उपसमिति के प्रस्तावों आदि के पास करने में लगता है। प्रतिनिधि

सभा के सभ्यों के अपने वैय्यक्तिक अधिकार भी पर्याप्त हैं। फौजदारी मुकदमा, न्यायालय का अपमान, दिवाला आदि अपराधों को छोड़कर अन्य किसी अपराध में प्रतिनिधि सभा का सभ्य पकड़ा नहीं जा सकता। प्रतिनिधि सभा अपने सभ्यों को अपराध करने पर सभा से निकाल सकती है, परंतु उन्हें पुनः चुने जाने से नहीं रोक सकती। प्रतिनिधि सभा अपने विरुद्ध अपराध करनेवाले को कैद कर सकती है और यह कैद तात्कालिक प्रतिनिधि सभा के समय तक ही रहती है, आगे नहीं। वह अपने अधिकार स्वयं ही नहीं बढ़ा सकती। सब प्रस्ताव पहले पहल इसी सभा में आते हैं। आय-व्यय संबंधी बजट तो प्रतिनिधि सभा में ही पहले उपस्थित किया जाता है।

लार्ड सभा

प्रतिनिधि सभा के सदृश लार्ड सभा की संख्या भी बदलती रहती है, जिसका ब्योरा इस प्रकार है—

सन्			सभ्य
१२६५	...	...	१३९
१६००	...	...	५९
१७६५	...	...	२०२
१८५५	...	...	४४५
१८६५	...	...	४५४
१८९५	...	...	५७१
१८९७	...	...	५८०

सन्			सभ्य
१६००	...	...	५८६
१६०६	...	...	६१८
आजकल	...	...	७४०

लार्ड सभा में भिन्न भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति हैं—रायल, आर्चबिशप, ड्यूक, मार्क्विस, अर्ल्ज़, वैकाउंट, बिशप और बैरन। इस सभा में ६०० से अधिक इँग्लिश पियर्स हैं। स्काटलैंड और आयरलैंड के प्रतिनिधि के तौर पर २८-२८ पियर्स हैं। इसके अलावा दो इंग्लिश चर्च के आर्चबिशप हैं और २४ बिशप। जब कोई बिशप अपनी बिशपगिरी से इस्तीफा दे देता है, तो वह लार्ड सभा का सभ्य नहीं रह जाता। इन सब सभ्यों में अधिकांश जन्मपरंपरा से चले आते हैं। राजा प्राइम मिनिस्टर की सिफारिश पर चाहे जिसको लार्ड सभा का सभ्य बना सकता है। पहले प्राइम मिनिस्टर इस अधिकार से बहुत फायदा उठाया करते थे। जब लार्ड सभा प्रतिनिधि सभा के किसी प्रस्ताव को नहीं मानती थी और वह प्रस्ताव महत्त्व का होता था, तब प्राइम मिनिस्टर अपने दलवाले व्यक्तियों को लार्ड बनवाकर लार्ड सभा में उनकी अधिकता कर देता था। अब भी उसे यह अधिकार है, परंतु उसे काम में लाने की आवश्यकता उसे शायद ही कभी पड़े।

लार्ड सभा के जहाँ समूहरूपेण अपने अधिकार हैं, वहाँ प्रतिनिधि सभा के सदृश उसके व्यक्तियों को भी

पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं, जो इस प्रकार गिनाए जा सकते हैं—

(१) लार्ड सभा अपने विरुद्ध अपराध करनेवालों को कैद तथा उन पर जुर्माना कर सकती है। (२) प्रत्येक लार्ड को सभा में वक्तृता देने की पूर्ण स्वतंत्रता है। (३) जब कोई नया लार्ड बनाया जाता है, तब लार्ड सभा यह देखती है कि कहीं कोई गलती तो नहीं हुई है। (४) लार्ड सभा के पास अपीलें जाती हैं। (५) प्रतिनिधि सभा के राज्यकर्मचारियों के विरुद्ध अभियोग इसी सभा में होते हैं तथा यही निर्णय देती है। (६) नाबालिग, विदेशी, अविश्वासपात्र (जिसने वफादारी की शपथ न खाई हो) लार्ड सभा में नहीं बैठ सकता। (७) सभा में प्रत्येक लार्ड नया प्रस्ताव पेश कर सकता है। प्रतिनिधि सभा के पास किए हुए प्रस्ताव इसी सभा में आते हैं और यदि यह न पास करे तो वे प्रस्ताव राजा के पास नहीं भेजे जाते। परंतु यदि कोई प्रस्ताव तीन बार प्रतिनिधि सभा में स्वीकृत हो चुका हो तो लार्ड सभा की अस्वीकृति रहने पर भी वह नियम बन जाता है।

लार्ड सभा के अधिकार

(१) लार्ड सभा में जाते हुए या बैठे हुए लार्ड पकड़े या कैद नहीं किए जा सकते। (२) पार्लिमेंट के खुलने की सूचना राजा को प्रत्येक लार्ड के पास भेजनी पड़ती है। (३) लार्ड जूरी के सभ्य नहीं हो सकते।

लार्डों के अधिकार

लार्ड सभा के अधिकार बतलाते हुए लिखा गया है कि प्रजा की अपीलें लार्ड सभा के पास ही जाती हैं। लार्ड सभा ने न्यायालय के तौर पर संतोषप्रद काम किया है, यह कहना अति कठिन है। अँगरेज जाति के झगड़ों की सूची जिस प्रकार बढ़ती गई, लार्ड सभा की इस मामले में सर्वथा अयोग्यता भी जनता को क्रमशः मालूम होती गई। महाशय अर्स्किन की सम्मति में आक्लात्रि के अनंतर लार्ड सभा में एक भी अच्छा प्राड्विवाक न रहा जो जनता की अपीलों का उचित रीति पर निर्णय कर सकता। १८५६ में इँगलैंड में यह खबर फैली कि लार्ड सभा में राज्यनियमों से अभिज्ञ किसी न किसी व्यक्ति को सभ्य अवश्य होना चाहिए तथा इस बात के लिये एक प्रस्ताव पास किए जाने का इरादा भी था, परंतु लार्ड सभा की गलती से ऐसा न हो सका। परिणाम इसका यह हुआ कि कुछ ही समय के बाद 'मुख्य न्यायालय के न्याय संबंधो नियम' (Supreme Court of Judicature Act) से लार्ड सभा के हाथ से न्याय संबंधी यह अधिकार सर्वथा ले लिया जाता; परंतु १८७५ के नियम से उसको कुछ कुछ अधिकार पुनः प्राप्त हो गए। अब यह राज्यनियम हो गया है कि जब तक लार्ड सभा में निम्नलिखित तीन व्यक्ति उपस्थित न हों, तब तक उसमें अपीलें नहीं सुनी जा सकती हैं। वे तीन व्यक्ति ये हैं--(१) लार्ड चांसलर (Lord Chancellor),

लार्ड सभा का न्यायालय संबंधी अधिकार

(२) अपील के लार्ड्स (Lords of Appeal in Ordinary) और (३) कोई एक लार्ड जो न्यायालय विभाग में अधिकारी रह चुका हो।

लार्ड सभा के सभ्य न्याय संबंधी विषयों से चाहे परिचित हों या न हों, अपीलों का निर्णय उस सभा में बहुसम्मति से ही होता है। इस प्रकार लार्ड सभा के न्याय संबंधी अधिकार पर जो कुछ लिखना था, लिखा जा चुका है। अब हम इसके नियम संबंधी अधिकारों का उल्लेख करेंगे।

लार्ड सभा के नियम-निर्माण संबंधी अधिकार

लार्ड सभा के नियम-निर्माण में प्रायः प्रतिनिधि सभा के सदृश ही अधिकार हैं। प्रतिनिधि सभा को आर्थिक विषयों में लार्ड सभा की अपेक्षा कुछ अधिक अधिकार प्राप्त हैं। किसी सभा में आर्थिक विषयों के अतिरिक्त कोई प्रस्ताव पेश हो सकता है तथा उससे पास होकर दूसरी से पास करवाया जा सकता है। वैयक्तिक प्रस्तावों में तो लार्ड सभा की ही प्रधानता है और इसका कारण यह है कि उसके प्रधान के पास बहुत से राज्यकार्य नहीं होते; अतः वह इसी प्रकार के प्रस्ताव संबंधी कार्यों पर विशेष ध्यान दे सकता है। आर्थिक प्रस्तावों का तो प्रतिनिधि सभा में ही पहले पहल पेश होना आवश्यक है। सुधार संबंधी प्रस्ताव भी प्रायः प्रतिनिधि सभा में ही पहले पहल जाते हैं। इसका कारण यह है कि प्रतिनिधि सभा

ही लार्ड सभा की अपेक्षा अधिक उदार विचार की है। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि इँगलैंड में संकुचित विचारवाली मंत्रिसभा की जब कभी प्रधानता होती है, तब यह बात नहीं रहती। सर विलियम ऐंसन का कथन है कि महाशय ग्लैडस्टन तथा डिजरैली के मंत्रित्व काल में प्रायः बहुत से प्रस्ताव लार्ड सभा में ही पहले पहल पेश हुए थे। इस विषय पर इतना ही लिखकर अब लार्ड सभा के शासन संबंधी अधिकारों पर कुछ विशेष प्रकाश डाला जायगा।

यह कहना सर्वथा भ्रम में पड़ना होगा कि इँगलैंड में लार्ड सभा की शक्ति को प्रतिनिधि सभा ने चूस लिया है।

लार्ड सभा के शासन संबंधी अधिकार

वास्तविक बात तो यह है कि इँगलैंड की दोनों ही मुख्य सभाओं की शक्ति को अँगरेजी मंत्रिसभा ने ले लिया है। आजकल दोनों ही सभाओं में वैयक्तिक प्रस्तावों की संख्या दिन प्रति दिन कम हो रही है। अँगरेजी शासन-पद्धति पर लिखनेवालों की सम्मति में मंत्रिसभा की बढ़ती हुई यह शक्ति इँगलैंड के लिये हानिकर है। महाशय लो ने बड़े गंभीर विचार के अनंतर कहा है—"प्रतिनिधि सभा को नियामक सभा कहना निरर्थक है। यह तो आजकल मंत्रियों के नियामक प्रस्तावों की एक मात्र विवाद-भूमि हो गई है। आजकल राजनीतिक विवादों की सभा का काम एक मात्र प्रतिनिधि सभा

कर रही है।" लार्ड सेसिल ने एक बार प्रतिनिधि सभा में स्पष्ट शब्दों में कहा था—"हम लोग वैयक्तिक अधिकारों का अतिक्रमण प्रायः सुना करते हैं, परंतु यहाँ पर यह सुना देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रतिनिधि सभा की संपूर्ण नियामक शक्ति मंत्रिसभा के ही हाथ में दिन पर दिन चली जा रही है।......इसका क्या कारण है ? इसकी कोई परवाह नहीं करता। सभ्यों के अधिकार छिन रहे हैं, परंतु इस सभाभवन के बाहर किसी व्यक्ति को इसकी कुछ भी चिंता नहीं है.........।" महाशय लार्वेल ने बहुत सी गणनाओं के अनुसार यह स्पष्ट तौर पर दिखाया है कि किस प्रकार राजकीय प्रस्तावों के सुधारों में प्रतिनिधि सभा दिन प्रति दिन कम हाथ दे रही है। आपका कथन है कि १८५१ से १८६० तक राजकीय प्रस्तावों में ४७ प्रस्तावों में सुधार किया गया था; और १८७४ से १८७८ तक केवल एक ही प्रस्ताव में तथा १८९४ से १९०३ तक केवल दो ही प्रस्तावों में सुधार किया गया था। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि केवल लार्ड सभा ने ही अपनी शक्ति नहीं खोई है, अपितु प्रतिनिधि सभा भी वैसी ही दशा में है। इन दोनों सभाओं की शक्ति यदि किसी ने चूस ली है तो वह केवल मंत्रिसभा ने। सारांश यह कि लार्ड सभा ने यदि अपनी शक्तियाँ खोई हैं तो यह न समझना चाहिए कि उसने वे शक्तियाँ प्रतिनिधि सभा को दे दी हैं। बेचारी प्रतिनिधि सभा तो स्वयं ही

शक्तिहीन हो गई है। इन दोनों सभाओं की शक्ति मंत्रि-सभा ले गई है। प्रतिनिधि सभा तथा लार्ड सभा के बीच में एक अंतर अवश्यमेव है। वह यह कि मंत्रिसभा पहले पहल प्रतिनिधि सभा को ही नशा पिलाया करती है।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि आर्थिक विषयों में प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा लार्ड सभा की शक्ति न्यून है। आर्थिक प्रस्तावों का प्रतिनिधि सभा में ही पहले पहल पेश होना आवश्यक है और यह उचित भी प्रतीत होता है, क्योंकि जिस समय संपूर्ण राष्ट्र के चलाने के लिये प्रतिनिधि सभा को ही धन देना हो, उस समय धन संबंधी प्रस्ताव भी उसी में पेश होने चाहिएँ।

प्रतिनिधि सभा ने लार्ड सभा से यह अधिकार सर्वथा ही अपने हाथ में ले लेने के लिये पहले पहल १६६१ में प्रयत्न किया। उस समय लार्ड सभा ने वेस्ट मिनिस्टर की सड़कों को सुधारने के लिये धन संबंधी एक प्रस्ताव पास करके प्रतिनिधि सभा में भेजा। प्रतिनिधि सभा ने उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार उसे पास न किया और कहा—'धन संबंधी प्रस्ताव पहले पहल उन्हीं के पास पेश होने चाहिएँ जब कि रुपए उन्हीं को देने हैं।' इस कार्य के अनंतर प्रतिनिधि सभा ने अपने यहाँ उसी प्रकार का एक प्रस्ताव पास करके लार्ड सभा के पास भेजा। लार्ड सभा ने उस पर एक टिप्पणी चढ़ाकर अपने यहाँ से पास करके प्रतिनिधि सभा के पास

पुनः भेज दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह प्रस्ताव जहाँ का तहाँ रह गया। अगले वर्ष पुनः इसी प्रकार का एक प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा में पास होकर लार्ड सभा में पहुँचा। लार्ड सभा ने ढील ढाल की तथा कुछ बंदर-घुड़कियाँ दिखलाकर उसे पास कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रतिनिधि सभा ने यह अधिकार उसके हाथ से सदा के लिये छीन लिया। १८७८ में लार्ड सभा आर्थिक विषयों में सर्वथा निःशक्त हो गई तथा उसके अनंतर शासन-पद्धति में यह नियम स्थिर रीति पर काम करने लगा—"राजा को प्रत्येक प्रकार की आर्थिक सहायता देनेवाले प्रस्तावों का पहले प्रतिनिधि सभा में पेश होना आवश्यक है और लार्ड सभा उनमें कुछ भी काट-छाँट नहीं कर सकती। जो कुछ उसके हाथ में है, वह यही है कि चाहे वह उन प्रस्तावों को पास करे या न पास करे"।

यह भी पूर्व में लिखा जा चुका है कि लार्ड सभा प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा संकुचित विचार की है। उदार दलवालों की यह सभा बहुत ही अधिक काट छाँट किया करती है।

प्रतिनिधि सभा के बहुत से प्रस्ताव उचित रीति पर ध्यान रखकर नहीं बनाए जाते। लार्ड सभा उन प्रस्तावों का संशोधन किया करती है। संशोधन करने के लिये साहस, स्वतंत्रता और निष्पक्षता इन तीन गुणों की अत्यंत अधिक आवश्यकता होती है। लार्ड सभा में साहस तथा स्वतंत्रता ये

दोनों गुण विद्यमान हैं, पर दुःख की बात है कि उसमें निष्पक्षता का गुण नहीं है।

लार्ड सभा जातीय दलों के विचारों से प्रायः प्रभावान्वित हो जाया करती है जिससे प्रस्तावों का संशोधन उचित रीति पर नहीं होने पाता। राजनीतिज्ञों की सम्मति है कि समय पाकर लार्ड सभा में यह गुण भी आ ही जायगा।

इँगलैंड में लार्ड सभा से जाति को जो कुछ लाभ पहुँचते हैं, वे भुलाए नहीं जा सकते। इँगलैंड एक मात्र लार्ड सभा के कारण भयानक आक्रांतियों का पात्र न हो सका। लार्ड सभा का उच्छेद कर राज्य की संपूर्ण नियामक शक्ति एक सभा के हाथ में दे देना इँगलैंड के लिये सर्वथा हानिकर है। यदि किसी देश को आक्रांतियों की चाह हो तो वह यह काम करे। संपूर्ण सभ्य देशों की शासन-पद्धतियाँ यही बता रही हैं कि देश की नियामक शक्ति को एक सभा के हाथ में कभी न देना चाहिए। ईंगलैंड ने तो क्रामवेल के समय में ऐसा करके फल भोग ही लिया है। रंप ने १६४६ की १७ मार्च को राजा के पद को जाति के लिये अनावश्यक तथा भयानक ठहराया और उसी के दो दिन बाद लार्ड सभा पर भी अपनी छुरी चला दी तथा उसका भी एक नियम द्वारा सदा के लिये मूलोच्छेदन कर दिया। उस नियम का रूप निम्नलिखित है—

लार्ड सभा का समुच्छेद

'The Commons of England—finding by long experience that the House of Lords is useless and dangerous to the people of England to be continued—have thought fit to ordain and enact that from henceforth the House of Lords in Parliament shall be and hereby is wholly abolished and taken away; and that the Lords shall not from henceforth meet or sit in the said House, called the Lords' House, or in any other house or place whatsoever, as a House of Lords; nor shall sit, vote, advise, adjudge or determine on any matter or thing whatsoever, as a House of Lords in Parliament'

इस प्रकार लार्ड सभा को सर्वथा नष्ट कर अँगरेज जाति के कुछ सभ्यों ने इँगलैंड पर एक सभा द्वारा ही शासन करने का यत्न किया, परंतु वे लोग सफल न हो सके तथा अँगरेज जाति को कुछ ही समय के बाद 'राजा' तथा लार्ड सभा इन दोनों का ही पुनः उद्धार करना पड़ा। हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि एक नियामक सभा द्वारा किसी जाति का शासन सफलता से नहीं चल सका है। अत्यंत उन्नत आचारवाली जातियों में यह संभव है। परंतु आजकल कोई जाति इतने उच्च आचार की नहीं है। अतः एक नियामक सभा

द्वारा सफलता से शासन होना भी कठिन ही हो गया है। महाशय वाल्टर बैज्हाट ने बहुत ही ठीक कहा है—

"परिपूर्ण तथा अति योग्य प्रतिनिधि सभा यदि किसी देश में हो तो उस देश के लिये किसी दूसरी राष्ट्र सभा या लार्ड सभा का होना सर्वथा ही निरर्थक है। परिपूर्ण तथा अति योग्य प्रतिनिधि सभा से हमारा तात्पर्य यह है कि वह पूर्ण रीति पर जाति की प्रतिनिधि हो, उसके सभ्य उच्च आचार के हों, जिनमें क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि दूषणों की सत्ता न हो तथा जिनमें विचार शक्ति इस सीमा तक हो कि उनके कार्यों तथा विचारों में त्रुटि का स्थान तक न रहता हो, तथा जिनके पास किए हुए प्रस्तावों के पुनः निरीक्षण की कुछ भी आवश्यकता न हो। यदि इस प्रकार के सभ्य किसी देश की प्रतिनिधि सभा में विद्यमान हों तो उस देश के लिये किसी दूसरी राष्ट्र सभा या लार्ड सभा का रखना सर्वथा अनावश्यक है; अनावश्यक ही नहीं अपितु अत्यंत हानिकर भी है। परंतु यदि ऐसी दशा न हो, तब तो दूसरी सभा का होना बहुत ही आवश्यक है; और यदि दूसरी सभा कोई उद्देश्य न रखे तो उसे उसका बुरा फल भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा, इसमें संदेह करना वृथा है।"

आठवाँ परिच्छेद

आस्ट्रिया, हंगरी तथा इनसे उत्पन्न राष्ट्र

युरोपीय महासमर के पहले आस्ट्रिया और हंगरी दोनों एक ही साम्राज्य में थे। अपने अपने अंतरीय विषयों में ये दोनों स्वतंत्र अवश्य थे, परंतु आस्ट्रिया का राजा इन दोनों के संघटन का सम्राट् था। इन दोनों राष्ट्रों का सम्मिलन विचित्र था और इनकी शासन-पद्धति भी अपूर्व ही थी। आस्ट्रिया तथा हंगरी में बहुत सी भिन्न भिन्न भाषाभाषी जातियों का निवास था। वे जातियाँ आपस में सदा लड़ती रहती थीं तथा एक जाति दूसरी को कुचलने का यत्न करती रहती थी। हंगरी में मगयार जाति की प्रधानता थी, पर आस्ट्रिया में ऐसी बात नहीं थी। आस्ट्रिया में जर्मनों की शक्ति को अन्य जातियाँ कम नहीं कर सकती थीं। राजनीतिक मामलों को छोड़कर आस्ट्रिया के साथ हंगरी का वैसा ही संबंध था जैसा कि एक विदेशीय राष्ट्र का होता है। दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र समझे जाते थे। दोनों की शासन-प्रणाली भिन्न भिन्न थी, दोनों की पार्लिमेंटें भिन्न भिन्न थीं और दोनों के न्यायालय भी भिन्न भिन्न थे। किंतु ऐसा होते हुए भी दोनों मिल गए थे। दोनों का सम्राट् एक था, झंडा एक था, दोनों का नागरिकत्व (citizenship) एक था और दोनों अपने अपने

प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन द्वारा अपनी एक नीति भी स्थापित रखते थे। हम इन दोनों राष्ट्रों की प्राचीन शासन-प्रणाली पर भी कुछ लिखेंगे।

आस्ट्रिया

आस्ट्रिया की प्राचीन शासन-प्रणाली का निर्माण सन् १८६७ में हुआ था। इस शासन-प्रणाली के अनुसार आस्ट्रिया का सम्राट् राज्य का मुख्य पदाधिकारी था। इस पद का अधिकार सम्राट् के वंशजों को ही था। एक जातीय सभा थी और एक मंत्रि-सभा भी थी। सम्राट् की समस्त आज्ञाएँ किसी न किसी मंत्री द्वारा हस्ताक्षरित होती थीं। किंतु यह कहीं नहीं स्पष्ट किया गया था कि मंत्रिसभा पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी होगी। शासन-पद्धति के निर्माण के कुछ काल बाद मंत्रिसभा का पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायित्व ऊपरी रीति रिवाजों में तो स्थापित हो गया था, किंतु पार्लिमेंट में दलबंदी ठीक तरह से न होने के कारण सम्राट् मनमानी करा सकता था।

लार्ड सभा

आस्ट्रिया की जातीय सभा या पार्लिमेंट दो सभाओं से मिलकर बनी थी—एक तो लार्ड सभा और दूसरी प्रतिनिधि सभा। लार्ड सभा के सभ्य राजपुत्र, राजवंशज, कुलीन व्यक्ति, पादरी, महापादरी आदि होते थे। सम्राट् बहुत से व्यक्तियों को लार्ड सभा का जीवन भर के लिये सभ्य बना सकता था। लार्ड सभा तथा प्रतिनिधि सभा के अधिकार एक ही सदृश थे।

प्रतिनिधि सभा के सभ्य छः वर्षों के लिये चुने जाते थे। प्रतिनिधि सभा को सम्राट् जब चाहे तब विसर्जित कर सकता था। प्रतिनिधि सभा के सभ्यों का चुनाव प्रांतों के निवासियों द्वारा सीधे तौर पर होता था। आस्ट्रिया में प्रतिनिधि सभा के सभ्यों को चुननेवालों की पाँच श्रेणियाँ थीं—

प्रतिनिधि सभा

(१) भूमिपति, (२) नगरनिवासी, (३) व्यापारीय समितियाँ, (४) ग्रामवासी, (५) साधारण जनसमूह।

इन पाँच श्रेणियों के अनुसार ही चुनाव के प्रांतों का विभाग था। बहुत से ऐसे ऐसे छोटे नगर भी थे जो स्वतः एक प्रांत थे। साधारण तौर पर प्रत्येक प्रांत को एक एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था।

प्रतिनिधि सभा का प्रति वर्ष अधिवेशन होता था। लार्ड सभा तथा प्रतिनिधि सभा किसी में पहले प्रस्ताव पास किया जा सकता था तथा पास करके दूसरी सभा में पास करने के लिये भेजा जा सकता था। प्रत्येक प्रकार के नियम, व्यापारिक संधियाँ तथा कर आदि विषयों का दोनों सभाओं में पास होना आवश्यक था।

आस्ट्रिया के सदृश हंगरी की भी अपनी स्वतंत्र शासन-पद्धति थी; किंतु हंगरी का भी अधिपति आस्ट्रिया का सम्राट् ही था। सम्राट् को आस्ट्रिया तथा हंगरी दोनों ही की राजधानियों में दो बार

हंगरी

राज्याभिषेक कराना तथा शपथ लेनी पड़ती थी। आस्ट्रिया का सम्राट् "हंगरी का ईश्वर प्रेषित राजा" की उपाधि से भी पुकारा जाता था। बुडापेस्ट में हंगरी की राजधानी थी और यहाँ पर वह हंगरी की मंत्रिसभा स्वयं चुनकर स्थापित करता था। परंतु यहाँ की मंत्रिसभा प्रतिनिधि सभा के प्रति पूरी तरह से उत्तरदायी थी। कारण यह था कि हंगरी में मगयार लोग अधिक थे और उनमें एकता थी। सम्राट् यहाँ अपनी चाल नहीं चल सकता था। यहाँ की पार्लिमेंट में भी दो सभाएँ थीं। प्रथम तथा अंतरंग सभा में वंशपरंपरा से चले आए हुए सभ्य रहते थे और दूसरी तथा प्रतिनिधि सभा में जनता द्वारा चुने हुए सभ्य होते थे।

सम्राट् ही आस्ट्रिया हंगरी की स्थल तथा जल सेना का निरीक्षण करता था। कुछ विभागों के पदाधिकारियों को दोनों देशों में सम्राट् ही नियत करता था। दोनों ही राष्ट्र विदेशी राष्ट्रों के साथ संधि, व्यापार तथा अन्य सार्वजातीय विषयों पर पृथक् पृथक् बात नहीं कर सकते थे। सारांश यह कि दोनों ही राष्ट्रों का कार्य बहुत कुछ मिलकर किया जाता था। आस्ट्रिया तथा हंगरी की अपनी अपनी सेनाएँ थीं, परंतु जातीय सभा की आज्ञा के बिना वे युद्ध पर नहीं भेजी जा सकती थीं। दोनों राष्ट्रों का व्यय समय समय पर दोनों ही राष्ट्रों की सभाएँ नियत कर देती थीं; परंतु यदि ऐसा न हो सकता था तो सम्राट स्वयं व्यय नियत

कर देता था तथा कौन राष्ट्र कितना दे, यह भी स्वयं ही निर्धारित कर देता था।

आस्ट्रिया हंगरी की सम्मिलित शासन-पद्धति अति विचित्र थी। दोनों ही देशों के प्रतिनिधियों की एक एक राष्ट्र-संघटन की सभा होती थी। प्रत्येक देश साठ साठ सभ्य भेजता था। उन साठ सभ्यों में से ४० सभ्य राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा के द्वारा चुनकर आते थे और २० सभ्य राष्ट्रीय लार्ड सभा की ओर से। इनका चुनाव प्रति वर्ष होता था। इनका अधिवेशन एक बार वाइना में होता था तो दूसरी बार बुडापेस्ट में। जिस बार सभा का अधिवेशन आस्ट्रिया में होता था, उस बार उसकी कार्रवाई जर्मन भाषा में होती थी, परंतु जब उसका अधिवेशन बुडापेस्ट में होता था, उस समय उसकी कार्रवाई मगयार भाषा में ही लिखी जाती थी। कोरम ८० सभ्यों का होता था। राष्ट्र-संघटन की सभाओं में सम्मति देने का अधिकार भी दोनों राष्ट्रों के सभ्यों को समान ही था। सारांश यह कि राष्ट्र-संघटन की सभाओं में आस्ट्रिया तथा हंगरी को शक्ति में समान समझकर ही काम किया जाता था। यह घटना इस बात को भी स्पष्ट करती है कि किस प्रकार दोनों राष्ट्र अपने आपको एक दूसरे से पृथक् समझते थे।

किंतु आस्ट्रिया हंगरी की इस शासन-प्रणाली से वहाँ के सब निवासी संतुष्ट नहीं थे। जैसा कि हम ऊपर बता आए

हैं, आस्ट्रिया में जर्मन और हंगरी में मगयांर ये ही सारे देश में वास्तव में सुखी थे। अतः जब सन् १९१४ में आस्ट्रिया हंगरी के ही सर्बिया को चुनौती देने पर युरोपीय महासमर छिड़ा और बाद में इसमें आस्ट्रिया हंगरी की हार होने लगी, तब आस्ट्रिया हंगरी की दबी हुई जातियों ने अपनी स्वतंत्रता का अच्छा मौका देखा। पोल्स, जेक्स, स्लोवेक्स तथा जूगोस्लेव्ज, सभी अपनी स्वतंत्रता की आवाज उठाने लगे। सन् १९१८ में सम्राट् ने इनको कुछ अधिकार देने की घोषणा की, किंतु 'का बरषा जब कृपी सुखाने'। लोग इससे संतुष्ट नहीं हुए। हंगरी ने आस्ट्रिया से अपना संबंध तोड़ लिया। एक के बाद एक एक जाति ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और अपनी अपनी काम चलाऊ सरकार स्थापित कर ली। ११ नवंबर सन् १९१८ को जिस दिन युद्ध की शांति हुई, सम्राट् अपने पद से अलग हो गया और समष्टिवादियों (Social Democrats) की एक सभा ने शेष आस्ट्रिया में प्रजा के प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य की घोषणा कर दी। अतः आस्ट्रिया हंगरी के सम्मेलन से निम्नलिखित छः नए राष्ट्र उत्पन्न हुए—(१) आस्ट्रिया, (२) हंगरी, (३) पोलैंड, (४) जेकोस्लोवेकिया, (५) जूगोस्लेविया और (६) रूमानिया।

(क) नवीन आस्ट्रिया का प्रतिनिधितंत्र राज्य—नवीन आस्ट्रिया में प्राचीन आस्ट्रिया के केवल सात ही प्रांत हैं।

इनके भी कुछ हिस्से अन्य राष्ट्रों द्वारा ले लिए गए हैं। इसकी जनसंख्या प्राचीन आस्ट्रिया की जनसंख्या से केवल $\frac{1}{4}$ ही है।

(ख) हंगरी—सन् १९१८ के नवंबर मास में हंगरी ने भी अपने को प्रजा का प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य घोषित किया था और कई महीनों तक एक कामचलाऊ सरकार द्वारा शासित भी होता रहा। इसके बाद कुछ दिनों तक किसानों तथा मजदूरों की सोवियट सरकार रही (जैसा कि रूस में है)। किंतु यह सोवियट सरकार रूमानिया की सेना द्वारा दबा दी गई और पहली सरकार पुनः स्थापित हुई। सन् १९२० में एक जातीय सभा का निर्वाचन हुआ। इसके सदस्यों को चुनने के लिये प्रत्येक स्त्री पुरुष को मत देने का अधिकार था। इस जातीय सभा ने कोई नई शासन-प्रणाली नहीं बनाई और महासमर के पहले-वाली पुरानी शासन-पद्धति में ही समयानुकूल कुछ अदल बदल करके हंगरी को परिमित एकसत्तात्मक राज्य घोषित कर दिया। किंतु सम्राट् का पद खाली ही रखा। महासमर के फल-स्वरूप हंगरी की बहुत कुछ जमीन जाती रही और नवीन हंगरी की जनसंख्या प्राचीन हंगरी से आधी ही रह गई।

(ग) पोलैंड का प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य—नवीन पोलैंड आस्ट्रिया, जर्मनी और रूस के साम्राज्यों के कुछ कुछ हिस्सों से मिलकर बना है। अठारहवीं शताब्दी के

अंतिम चरण में पोलैंड एक स्वतंत्र एक-सत्तात्मक राज्य था। यह अपनी विचित्रता के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ का राजा जनता द्वारा चुना हुआ होता था। इस विचित्रता के अतिरिक्त पोलैंड में एक और बड़ी विचित्रता थी। वह यह कि जातीय सभा में जब तक सबकी एक राय न हो, कोई काम नहीं हो सकता था—कोई नियम नहीं बन सकता था। कोई सभ्य यदि उठकर यह कह दे कि 'मैं विरोध करता हूँ' तो चाहे बाकी सबके सब उसे क्यों न चाहते हों, वह प्रस्ताव गिर ही जाता था। इस बेहूदगी से यहाँ झगड़ों का घर ही बन गया। पोलैंड के आसपास जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस सदृश बलशाली और लालची साम्राज्य थे ही। सबकी आँखें बेचारे पोलैंड पर गड़ गईं। सन् १७९५ तक पोलैंड का टुकड़ा टुकड़ा हड़प कर लिया गया और स्वतंत्र पोलैंड का कोई टुकड़ा युरोप के नक़शे पर न बचा। इसके बाद करीब एक शताब्दी तक पोलैंड में जातीय आंदोलन मचते रहे, परंतु वे हमेशा इन्हीं तीनों साम्राज्यों द्वारा दबा दिए जाते थे।

युरोपीय महासमर में पोलैंड का भाग्य चमका। मित्र राष्ट्रों की यह इच्छा थी कि पोलैंड को स्वतंत्रता दे दी जानी चाहिए। इनकी जीत होने पर ऐसा ही हुआ और पोलैंड को घर बैठे स्वतंत्रता प्राप्त हो गई। जर्मनी और आस्ट्रिया के हारने पर पोलैंड के सब हिस्सों ने मिलकर एक जातीय सभा

बनाई और पोलैंड की शासन-प्रणाली निर्मित की। यह शासन-प्रणाली प्रतिनिधिसत्तात्मक है।

(घ) जेकोस्लोवेकिया का प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य—जेकोस्लोवेकिया में बोहेमिया का प्राचीन राज्य, मोरेविया, सिलोशिया और स्लोवेकिया शामिल हैं। महासमर के पहले स्लोवेकिया हंगरी का एक हिस्सा था और बाकी के हिस्से आस्ट्रिया के अंतर्गत थे। इसकी जनसंख्या लगभग १४०००००० है। इनमें $\frac{२}{३}$ जेक्स लोग हैं। इसकी स्वतंत्रता महासमर के अंतिम दिनों में घोषित हुई थी और महीने भर बाद ही कार्य में भी लाई गई थी। सन् १९२० में यह कामचलाऊ शासनप्रणाली स्थायी बना दी गई।

(ङ) और (च) रूमानिया, और 'सर्ब्स, क्रोट्स और स्लोवेन्स' के राज्य—रूमानिया और जूगोस्लेविया वास्तव में प्राचीन आस्ट्रिया हंगरी के ही हिस्से नहीं कहे जा सकते। महासमर के पहले रूमानिया एक छोटा सा राज्य था। अब उसमें बेसार्विया, बूकोनिया और ट्रान्सल्वेनिया भी शामिल हो गए हैं। अतः वह अब पहले से दुगना हो गया है।

जूगोस्लेविया तो प्राचीन सर्विया ही है जो कि अब उससे तिगुना है। इसमें मांटीनीग्रो भी शामिल हो गया है। जूगोस्लेविया का राजकीय नाम 'सर्ब्स, क्रोट्स और स्लोवेन्स का राज्य' (The Kingdom of the Serbs, Croats, and Slovens) है। इसकी नवीन शासन-प्रणाली सन् १९२१ में जनता की

निर्वाचित जातीय सभा द्वारा निर्मित हुई है। ये दोनों राज्य 'परिमित एकसत्तात्मक राज्य' हैं।

उपर्युक्त छहों राष्ट्रों में राष्ट्र का एक ही एक अधिपति है। जूगोस्लेविया और रूमानिया में राजा हैं, और ये लड़ाई के पहलेवाले राजवंश के ही हैं और इनके बाद भी इन्हीं के पुरुष वंशज राज्याधिकारी होंगे। हंगरी में अभी तक कोई राजा गद्दी पर नहीं बैठाया गया है, किंतु शासन-प्रणाली के अनुसार यहाँ भी एकसत्तात्मक राज्य ही रहेगा। आस्ट्रिया, पोलैंड और जेकोस्लोवेकिया में जातीय सभा की दोनों सभाओं के एक साथ बैठकर चुने हुए प्रधान मुख्याधिपति हैं। आस्ट्रिया में प्रधान की अवधि चार वर्ष की है और पोलैंड तथा जेकोस्लोवेकिया में सात सात वर्ष की है।

जूगोस्लेविया में केवल एक ही सभा की व्यवस्थापिका सभा है और इसके सभ्य जनता द्वारा चुने जाते हैं जिसमें प्रत्येक स्त्री-पुरुष को मत देने का अधिकार है। हंगरी ने अभी तक निश्चित नहीं किया है कि वह एक सभा की ही जातीय सभा रखेगी या दो सभाओं की। आस्ट्रिया, पोलैंड, जेकोस्लोवेकिया और रूमानिया में जातीय सभाओं में दो दो सभाएँ हैं—अंतरंग सभा और प्रतिनिधि सभा। इनमें प्रतिनिधि सभा जनता द्वारा चुने हुए सभ्यों की ही होती है।

नवाँ परिच्छेद

रूस

सन् १९१७ के पहले रूस एक कट्टर एकसत्तात्मक राज्य था। यहाँ का राजा जार कहलाता था। उसने लोगों पर बड़ा अन्याय मचा रखा था। सन् १९०५ में, लोगों के क्रांति करने पर, उसने एक राष्ट्र सभा की स्थापना की और समस्त बालिग पुरुषों को इसके सभ्यों के निर्वाचन का अधिकार दिया। परंतु दो साल के अनुभव से इस निर्वाचन विधि को अपने अधिकारों में कंटक समझकर उसने इसको बंद कर दिया और एक ऐसी विधि निर्मित की जिससे राष्ट्र सभा में उसके ही पक्षपाती सभ्य रह सकें। ऐसा ही हुआ। यद्यपि सामान्यतः लोग अत्यंत ही असंतुष्ट थे, तथापि कुछ काल तक यही व्यवस्था चलती रही। सन् १९१४ में महा-समर छिड़ गया। संकट का समय समझकर सब दलों ने मिलकर सरकार का साथ देने का निश्चय किया। १९१४-१९१५ में रूस के कई जगह हार जाने के बाद राष्ट्र सभा ने सरकार के सन्मुख युद्ध सफल बनाने की कुछ सलाह उपस्थित की। किंतु विनाशकाले विपरीतबुद्धिः,—इन सलाहों की बुरी तरह अवहेलना की गई। सेना और शासन के अन्य

विभागों की कमजोरी पर लोग पहले ही से भड़के बैठे थे। यह अवहेलना अग्नि में घी का काम कर गई। इतना ही नहीं, जार ने इस अवसर पर ऐसे बेहूदे और जनता के प्रतिकूल मंत्री रखे थे कि राष्ट्र सभा के 'जी हुजूर' सभ्य भी जार के विरुद्ध हो गए। इस कंटक को भी दूर करने के लिये जार ने राष्ट्र सभा के बरखास्त होने का हुकम दिया। पर अब जार हद से बाहर पहुँच चुका था। राष्ट्र सभा के सभ्यों ने उसकी बात नहीं मानी और अपना एक मंत्रिदल कायम करके एक नई कामचलाऊ सरकार (Provisional Government) स्थापित कर ली; और यह घोषणा की कि शीघ्र ही एक सुव्यवस्थित प्रतिनिधि सभा बुलाई जायगी जो नए सिरे से रूस की शासन-प्रणाली का निर्माण करेगी। इस कामचलाऊ सरकार के साथ ही मार्च सन् १९१७ की प्रसिद्ध क्रांति सारे रूस में हो गई और जार राजपद से विहीन हो गया।

इधर तो यह कामचलाऊ सरकार स्थापित हुई, उधर उसी दिन पेट्रोग्रेड में भी श्रमजीवियों के प्रतिनिधियों की एक सभा सोव्हियट स्थापित हुई जो दो दिन बाद श्रमजीवियों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की सोव्हियट कहलाई। इसने भी शासन का अधिकार अपने हाथ में ले लिया। रूस में अब दो सरकारें हो गईं जो अपनी अपनी भिन्न भिन्न आज्ञाएँ देने लगीं। अंत में सोव्हियट ने उपर्युक्त राष्ट्र सभा की कामचलाऊ सरकार को दबा लिया। नवंबर सन् १९१७ में यह काम-

चलाऊ सरकार सेना के ज़ोर से बिलकुल उखाड़ डाली गई। राजनीतिक क्रांति के साथ ही साथ आर्थिक और सामाजिक क्रांति का भी डंका पीटा गया। इसके मुख्य कर्ता-धर्ता बोलशेविक नामी दल से मशहूर हैं।

इस घटना के बाद रूस भर की सारी सोव्हियटों ने एक अखिल रूसी-सोव्हियट-कांग्रेस की और संसार के प्रसिद्ध पुरुष निकोलाइ लेनिन की अध्यक्षता में एक कार्यकारिणी सभा स्थापित की। इसने लड़ाई में मित्र राष्ट्रों का साथ छोड़ दिया। प्रथम श्रेणी और मध्यम श्रेणी के लोगों से उनकी संपत्ति छुड़ा ली और श्रमजीवी मजदूरों को बाँटी। रेल, फैक्टरी इत्यादि सब लोगों के फायदे के लिये अपने हाथ में ली, जार तथा उसके संबंधियों को जान से मार डाला, कई बड़े बड़े धनियों, अफसरों और उपाधिधारियों को खतम किया, कइयों को जेल में ठूँसा और कइयों को देशनिकाला दिया। गिरजा-घर भी साफ कर डाला। तात्पर्य यह कि रूस की बिलकुल काया पलट कर दी। जिधर देखो, उधर साम्यवादियों का ही बोलबाला हो गया।

सन् १९१८ के ग्रीष्म काल में इन बोलशेविकों ने अखिल-रूसी-सोवियट के सन्मुख एक शासन-प्रणाली उपस्थित की। यह शासन-प्रणाली स्वीकृत हो गई; और आज भी रूस में वही शासन-प्रणाली प्रचलित है, यद्यपि सन् १९१८ से अब तक उसमें कई जगह रद्दोबदल भी कर दिया गया है। इसी बीच

में रूस के कई हिस्सों ने अपनी पृथक् पृथक् स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और अपनी अपनी पृथक् पृथक् सोव्हियट स्थापित कर दी। सन् १९२२ में इन सबका एक संघटन हो गया और इस राष्ट्र-संघटन की शासन-प्रणाली सन् १९२३ में निर्मित की गई। यह राष्ट्र-संघटन 'यूनियन आफ सोव्हियट सोशिअलिस्ट रिपबलिक' (SSSR) के नाम से प्रसिद्ध है।

रूसी शासन-पद्धति के मूल तत्त्व

शासन-पद्धति की यह प्रथम घोषणा है कि रूस सोव्हियटों का प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य है। इसका अर्थ यह है—रूस की मुख्य सभा में सीधे जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि नहीं हैं, किंतु इसमें सोव्हियटों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि हैं। यह किस तरह है, यह हम आगे चलकर बतलावेंगे।

सोव्हियटों के चुनाव के लिये १८ वर्ष की अवस्था के और इससे अधिक अवस्थावाले समस्त एशियानिवासी स्त्री-पुरुषों को मत देने का अधिकार है, बशर्ते कि वे स्वयं अपने परिश्रम से अपनी जीविका चलाते हों और अपने लाभ के लिये दूसरों से परिश्रम न कराते हों। यह स्पष्ट कर दिया गया है कि निम्नलिखित लोग मत देने के अधिकारी नहीं होंगे—

(क) जो लाभ के लिये दूसरों से मजदूरी कराते हैं (इसमें घरू नौकर शामिल नहीं हैं)।

(ख) जो ऐसी पूँजी से अपनी जीविका चलाते हैं जो उनके परिश्रम की कमाई नहीं है। जैसे ब्याज, किराया, मुनाफा इत्यादि।

(ग) रोजगारी, बनिए, महाजन, एजेंट लोग, मध्यम श्रेणीवाले लोग इत्यादि।

(घ) पादरी और पुरोहित।

(ङ) वे लोग जो जार के जमाने में बड़े बड़े ओहदों पर थे।

(च) पागल और चोरी इत्यादि में पकड़े गए कैदी।

इसके साथ ही साथ उन परदेशियों को भी मत देने का अधिकार दिया गया है जो रूस में रहते हैं और श्रमजीवी हैं।

केवल मजदूर पेशेवाले ही सब अधिकारों के अधिकारी हैं।

रूसी शासन-प्रणाली के मूल तत्त्व जानने के बाद अब यह जानना आवश्यक है कि शासन-प्रणाली का ढाँचा किस

राष्ट्र-संघटन SSSR की शासन-प्रणाली

प्रकार का है। पहले हम रूसी राष्ट्र-संघटन की शासन-प्रणाली का वर्णन करेंगे जो सन् १९२२ में प्राचीन रूस के अलग अलग स्वतंत्र राष्ट्र बने हुए चार हिस्सों ने निर्मित की थी। ये चार स्वतंत्र राष्ट्र इस प्रकार हैं—रूस (खास), यूक्रेनिया, व्हाइट रूस और ट्रांस-काकेशिया। इन राष्ट्रों का संघटन अमेरिकन राष्ट्रसंघटन के ही सदृश है। इस संघटन की मुख्य सभा संघ सोव्हियट महासभा (Union Congress of Soviets) है। इसके सभ्य प्रांतीय सोव्हियट तथा नगर सोव्हियट द्वारा चुने जाते हैं। प्रांतीय सोव्हियट प्रति १,२५,००० ग्रामवासियों पीछे एक सभ्य संघ-सोव्हियट महासभा में भेजती है; और नगर सोव्हियट प्रति २५,००० उद्योग धंधेवाले नागरिकों पीछे

एक सभ्य भेजती है। इस महासभा की बैठक साल में केवल एक ही बार होती है। साल भर का काम चलाने के लिये प्रति वर्ष महासभा एक उपसभा चुनती है जो संघ-केंद्रीय प्रबंधकारिणी सभा (Union Central Executive Committee) कहलाती है। यह प्रति तीन मास बाद बैठती है और इसके हाथ में नियम बनाने का मुख्य अधिकार है। यह प्रबंध-कारिणी सभा भी काफी बड़ी होती है। इसके सभ्यों की संख्या करीब करीब ४०० के होती है। इसलिये इस सभा की भी एक उप-सभा है जिसमें केवल २१ ही सभ्य रहते हैं। यह उप-सभा ही रोजमर्रा का सारा काम देखती है।

शासन कार्य के लिये एक मंत्रिसभा है जिसे संघ-जनता पोषक-सभा (Union Council of Peoples Commissars) कहते हैं। इसमें १५ सभ्य होते हैं और ये संघ-केंद्रीय प्रबंध-कारिणी सभा द्वारा चुने जाते हैं। इनमें एक प्रधान होता है और ४ उपप्रधान। प्रधान को छोड़कर प्रत्येक सभ्य पर एक न एक शासनविभाग का भार रहता है। इस सभा की आज्ञा राष्ट्र-संघटन के प्रत्येक व्यक्ति के लिये मान्य होती है और उनके विशेष राष्ट्र द्वारा कार्य में लाई जाती है। इस सभा में भी एक उप-सभा बन गई है जो मामूली विषयों का निपटारा करती है। यह सभा संघ-सोव्हियट-महासभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

राष्ट्र-संघटन की शासन-प्रणाली ने उपर्युक्त सभाओं के

हाथ में बड़े बड़े अधिकार दे दिए हैं। उनमें निम्नलिखित अधिकार भी शामिल हैं— विदेश-संबंध और संधि की देखभाल,

संघ सरकार के अधिकार

युद्ध करना और शांति स्थापित करना, कर्ज लेना, विदेशीय रोजगार को सँभालना, रेलों, डाकखानों और तारघरों की देखभाल करना, सेना का प्रबंध करना, संघटन के चारों राष्ट्रों में एक सा सिक्का चलाना, बाट और तौल की एक सी स्थापना करना, एक से कर लगाना इत्यादि। इसके अतिरिक्त संघ के किसी राष्ट्र के उन कानूनों और नियमों को रद्द करना जो सन् १९२२ की संधि के खिलाफ हों।

यह तो हुई राष्ट्र-संघटन की शासन-पद्धति। यह सन् १९१८ में रूस (खास) के लिये बनाई गई शासन-प्रणाली के ही ढंग पर है। अब हम रूस (खास) की शासन-प्रणाली का कुछ वर्णन करेंगे। संघ के अन्य राष्ट्रों की भी शासन-प्रणाली करीब करीब इसी प्रकार की है।

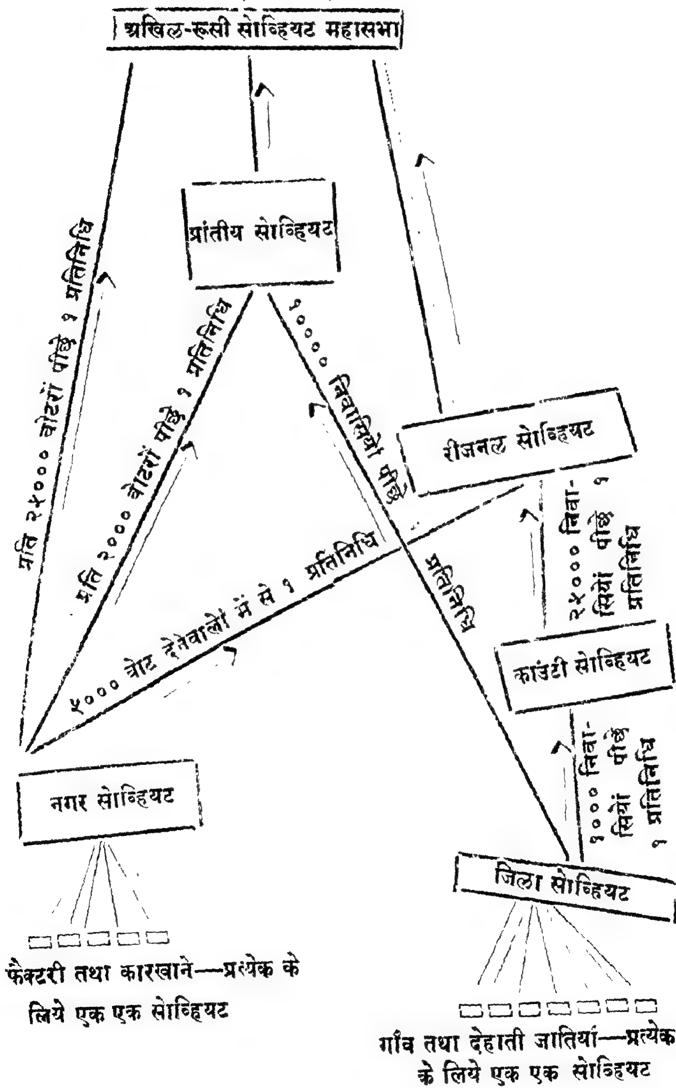
हम ऊपर कह ही आए हैं कि पेट्रोग्रेड सोव्हियट ने राष्ट्र-सभा द्वारा स्थापित कामचलाऊ सरकार को उखाड़कर एक

रूसी सोव्हियट

अखिल-रूसी-सोव्हियट महासभा स्थापित की थी। सन् १९१८ में जो शासन-पद्धति निर्मित हुई, उसने भी इसे रहने दिया। आजकल रूस की यही सब से बड़ी राष्ट्र सभा है। इसमें रूस भर की सारी सोव्हियटों के प्रतिनिधि आते हैं। इनके चुनाव का

ढंग विचित्र है। अब हम उसी का वर्णन करेंगे। साथ में पाठक यह ध्यान में रखें कि यह अखिल-रूसी-सोव्हियट महासभा, राष्ट्र-संघटन की संघ-सोव्हियट महासभा से बिलकुल भिन्न है, तो भी इसके सभ्यों का निर्वाचन इत्यादि उससे बिलकुल मिलता जुलता है।

इस पृष्ठ के सामने के वृक्ष पर दृष्टि डालिए। इसकी जड़ में एक ओर तो शहरों की फैक्टरियों और कारखानों में काम करनेवाले दलों की सोव्हियट हैं और दूसरी ओर गाँवों की और देहाती जातियों की सोव्हियट हैं। ये दोनों प्रकार की सोव्हियट क्रम से नगर और जिला सोव्हियट में अपने अपने प्रतिनिधि भेजती हैं। प्रांत भर की सारी नगर सोव्हियट मिलकर प्रांतीय सोव्हियट में अपने प्रतिनिधि भेजती हैं। इसमें वे प्रति २००० वोटरों पीछे १ प्रतिनिधि भेजती हैं। इसी प्रकार एक रीजन भर की सारी नगर सोव्हियट प्रति ५००० वोटरों पीछे १ प्रतिनिधि रीजनल सोव्हियट में भेजती हैं। रूस भर की सारी नगर सोव्हियट मिलकर अखिल-रूसी-सोव्हियट-कांग्रेस में भी, सीधे, प्रति २५००० वोटरों पीछे १ प्रतिनिधि भेजती हैं। इसी प्रकार जिला सोव्हियट एक ओर तो प्रति १०,००० निवासियों पीछे १ प्रतिनिधि प्रांतीय सोव्हियट में भेजती है और दूसरी ओर प्रति १००० निवासियों पीछे १ प्रतिनिधि काउंटी सोव्हियट में भेजती है। ये काउंटी सोव्हियट प्रति २५००० निवासियों पीछे १ प्रतिनिधि रीज-


अखिल-रूसी सोव्हियट महासभा
प्रांतीय सोव्हियट
रीजनल सोव्हियट
काउंटी सोव्हियट
नगर सोव्हियट
जिला सोव्हियट
प्रति २५००० वोटरों पीछे १ प्रतिनिधि
प्रति २००० वोटरों पीछे १ प्रतिनिधि
१०००० निवासियों पीछे प्रतिनिधि
५००० वोट देनेवालों में से १ प्रतिनिधि
२५००० निवासियों पीछे १ प्रतिनिधि
१००० निवासियों पीछे १ प्रतिनिधि
फैक्टरी तथा कारखाने—प्रत्येक के लिये एक एक सोव्हियट
गाँव तथा देहाती जातियां—प्रत्येक के लिये एक एक सोव्हियट

नल सोव्हियट में भेजती हैं, जहाँ नगर सोव्हियट के भी प्रतिनिधि आकर मिलते हैं। ये रीजनल सोव्हियट भी किसी किसी अवसर पर अखिल-रूसी-सोव्हियट-महासभा में अपने प्रतिनिधि भेजती हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट ही है कि प्रतिनिधित्व जन-संख्या और वोटरों के किसी एक अनुपात पर नहीं है। शहर के मजदूरों और उद्योग-धंधेवालों के हाथ में कहीं अधिक अधिकार हैं। उनको इतना अधिक अधिकार देने का कारण यह है कि रूसी सरकार की सारी स्थिति इन उद्योग-धंधेवालों ही पर निर्भर है। ये ही इस शासन-प्रणाली के खास भक्त हैं। ऊपर यह भी देखने में आया होगा कि शहरों में प्रतिनिधि चुनने का हिसाब वोटरों की संख्या से लगाया जाता है; किंतु गाँवों में यह सब जनसंख्या के हिसाब से होता है। यह भी उद्योग-धंधेवालों के हाथ में विशेष अधिकार देने का तरीका है। इतना ही नहीं, शहरवालों को तो सीधे अखिल रूसी-सोव्हियट महा-सभा में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, परंतु गाँववालों को केवल प्रांतीय सोव्हियट और कभी कभी रीजनल सोव्हियट के जरिए ही महासभा में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है।

अखिल रूसी-सोव्हियट महासभा रूस के लिये अंतिम और सर्वोपरि व्यवस्थापक सभा है, संघ के लिये नहीं। इसके सभ्यों की कोई खास संख्या बँधो हुई नहीं है। यह तो प्रतिनिधि भेजनेवाली सोव्हियटों पर निर्भर है। महासभा

की बैठक साल में दो बार मास्को में होती है। इसको नियम और कानून बनाने का पूरा अधिकार है; किंतु जो अधिकार संघ-सोव्हियट महासभा को दे दिए गए हैं, उनमें यह हस्तक्षेप नहीं कर सकती। अखिल-रूसी सोव्हियट महासभा की एक प्रबंधकारिणी सभा भी है जो महासभा की अनुपस्थिति में उसका सारा काम सँभालती है। इसमें ३८६ सभ्य होते हैं। इसकी भी एक उपसभा है।

जैसे राष्ट्र-संघटन के लिये एक मंत्रिसभा है, वैसे रूस (ख़ास) के शासन कार्य के लिये भी एक मंत्रिसभा है और वह भी जनतापोषक सभा (Peoples Commissars Council) कहलाती है। इसमें बारह सभ्य होते हैं। इनमें से १ प्रधान होता है और बाकी ११ के हाथ में पृथक् पृथक् निम्नलिखित शासनविभाग हैं; खेती, खाद्य पदार्थ, अर्थ, मजदूर, न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक भलाई, मजदूरों और किसानों की देख रेख, आर्थिक सभा और आंतरिक (Interior)। ये १२ सभ्य प्रबंध-कारिणी सभा द्वारा चुने जाते हैं और उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं; परंतु अखिल रूसी महासभा को भी खबर देते रहते हैं।

न्यायालय

रूस में न्याय करने के लिये एक के ऊपर एक ऐसे दर्जेवार न्यायालय हैं। न्यायाधीश और असेसर (ये न्याया-धीश के साथ मुकदमे के फैसले के लिये बैठते हैं और उसे अपनी राय बताते हैं) जनता द्वारा चुने हुए होते हैं।

रूस की शासन-प्रणाली इसी प्रकार की है। इसकी विचित्रता क्या है? अन्य देशों की शासन-प्रणाली का वर्णन करते समय यह बताया गया है कि वहाँ निर्वाचन भौगोलिक मूल पर होता है। एक भौगोलिक हिस्से जैसे प्रांत, नगर, जिला इत्यादि के लिये कुछ खास प्रतिनिधि चुने जाते हैं जो उस हिस्से के समस्त निवासियों के प्रतिनिधि होते हैं। वे किसी खास जाति के प्रतिनिधि नहीं होते। परंतु रूस में निर्वाचन का मूल भिन्न ही है। यहाँ प्रत्येक जाति अपना अपना प्रतिनिधि चुनती है, चाहे वे अलग अलग स्थान में रहनेवाले क्यों न हों। लुहारों का प्रतिनिधि अलग है; किसानों का अलग है इत्यादि। इस जातीय प्रतिनिधित्व में सचमुच कई बड़े बड़े गुण हैं और रूस ने संसार के सन्मुख एक राजनीतिक पाठ रख दिया है, जिससे अन्य राष्ट्र लाभ उठा सकते हैं। किंतु इसमें भलाई के साथ एक बड़ा ऐब भी है। वह यह कि इससे जातीय भेद बढ़ जाने का डर रहता है।

रूसी शासन-पद्धति की दूसरी विचित्रता यह है कि यद्यपि रूस प्रतिनिधिसत्तात्मक है, तथापि इसके सब अधिकारी जनता से बहुत दूर के और टेढ़े ढंग से संबंध रखते हैं। अमेरिका इत्यादि देशों में तो मुख्य अधिकारी जनता द्वारा सीधा चुना जाता है, परंतु रूस में कई सीढ़ियों के अनंतर मुख्य अधिकारी रहते हैं।

रूस का भविष्य क्या होगा, इसी प्रकार की शासन-प्रणाली स्थायी रूप से चलती जायगी या नहीं, यह कहना बड़ा टेढ़ा काम है। अभी तो रूस संसार की आँखों में बड़ा ही बलशाली प्रतीत होता है। किंतु इतनी थोड़ी उम्र में भी रूस में घुन के चिह्न दिखाई देने लग गए हैं। खास रूस में ही, जो कुछ काल पूर्व इस शासन-प्रणाली के और इसके साम्यवाद के कट्टर पक्षपाती थे, वे ही अब इससे ऊबकर इसका विरोध करने लग गए हैं। अतः रूस के भविष्य के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रूस का भविष्य

दसवाँ परिच्छेद

अन्यान्य स्वाधीन राज्य

इस परिच्छेद में अब हम अन्यान्य मुख्य मुख्य स्वाधीन देशों का वर्णन करेंगे।

अफगानिस्तान

यह एक शुद्ध राजसत्तात्मक राज्य है, यद्यपि राजा ने अपनी सहायता के लिये एक पार्लिमेंट भी स्थापित कर ली है। यह पार्लिमेंट 'लुई जुगरी' कहलाती है और इसका कार्य केवल सलाह देना ही होता है। यहाँ का राजा "अमीर" कहलाता है जो पूर्ण स्वतंत्र है और अपने राज्य में जो चाहता है, सो कर सकता है। सब राज-कार्य्य उसी के हाथ में है और उसकी इच्छा ही कानून है। सारा देश चार प्रांतों में विभक्त है। प्रत्येक प्रांत में एक हाकिम रहता है जो नायब-उल्-हुक्म कहलाता है। इसकी अधीनता में रईस और बड़े आदमी प्राचीन ग्राम्य-प्रथा के अनुसार मुकदमे सुनते और फैसला करते हैं। सारे देश में लूट-मार और चोरी खूब होती है और डाके पड़ते हैं। आजकल के अमीर अमानुल्ला हाल ही में अपनी बेगम के साथ यूरोप भ्रमण करने को गए थे। वहाँ से लौटकर इन्होंने अफगानिस्तान को एकदम युरोपीय रंग में रँगने

का प्रयत्न किया। परदा हटा दिया, जनता को युरोपीय रीति के वस्त्र पहनने का हुक्म दिया और राज्य की तरफ से कई विद्यार्थी पश्चिमी देशों में विद्याप्राप्ति के लिये भेजे। कई मुल्लाओं को अफगानिस्तान की यह प्रगति पसंद नहीं आई और फल यह हुआ कि आजकल वहाँ घोर विप्लव मचा हुआ है।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। १४ प्रांतों के ३०० प्रतिनिधिगण मिलकर छः वर्ष के लिये एक सभापति चुनते हैं। वही राज्य के सब कार्य्य करता है।

अरगेंटाइन रिपब्लिक

कानून बनाने के लिये एक राष्ट्रीय-परिषद् (National Congress) है। उसमें ३० सदस्यों का सिनेट और १५८ सदस्यों का एक हाउस आफ डेप्यूटीज (House of Deputies) होता है। सिनेट के मेंबरों का चुनाव राजधानी के मुख्य मुख्य हाकिमों और प्रांतों के व्यवस्थापकों द्वारा होता है और डिप्टियों का चुनाव प्रजा के द्वारा। सिनेट की अवधि ९ वर्ष की है और हाउस आफ डेप्यूटीज (प्रतिनिधि सभा) की चार वर्ष की। सिनेट के $\frac{1}{3}$ सभ्य प्रति तीसरे वर्ष बदले जाते हैं और प्रतिनिधि सभा के $\frac{1}{2}$ सभ्य प्रति दूसरे वर्ष बदले जाते हैं। सभापति के साथ ही एक उप-सभापति भी चुना जाता है जो सिनेट का सभापति होता है। सभापति ही प्रधान सेनापति भी होता है और वही शासन, न्याय तथा सेना आदि विभागों के कर्म्मचारियों को नियुक्त करता है। सभापति और उप-सभा-

पति के लिये यह आवश्यक है कि उनका जन्म अरगेंटाइन में ही हुआ हो और वे रोमन कैथोलिक संप्रदाय के हों। एक बार का चुना हुआ सभापति या उप-सभापति उस पद पर पुनः नहीं चुना जा सकता।

एक मंत्रिसभा भी होती है जिसके मंत्री सभापति द्वारा समय समय पर नियुक्त होते हैं। यहाँ कोई प्रधान मंत्री का विशेष पद नहीं है, परंतु जो मंत्री अंतरीय विषयों का भार लेता है, वही प्रधान मंत्री कहलाता है।

इंग्लैंड के सदृश इटली भी एक परिमित-राजसत्तात्मक राज्य है। यहाँ की पार्लिमेंट में दो सभाएँ हैं—सिनेट और चेंबर आफ डेपुटीज। यहाँ एक मंत्रिसभा भी है जिसके ऊपर एक महामंत्री या प्राइम मिनिस्टर है। मंत्रिसभा डिप्टियों की सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। पहले डिप्टियों की सभा में बहुत से दल थे और उनमें कभी कोई दल प्रधानता पाता था, कभी कोई। फल यह होता था कि मंत्रिसभा सदा खतरे में रहती थी। डिप्टी सभा की अवधि पाँच साल की रखी गई थी; परंतु यह और मंत्रिसभा पूरे पाँच वर्ष कभी बिता नहीं पाती थी और बीच ही में टूट जाती थी। सन् १९२३ में मुसोलिनी ने यहाँ की निर्वाचन विधि बदलवा डाली और अब इस नवीन विधि से एक न एक दल को डिप्टी सभा में खासी प्रधानता प्राप्त हो जाती है। राजा इसी प्रधान दल के मुखिया को

इटली

महामंत्री चुनता है और महामंत्री अपने मंत्री आप चुनता है। फल यह होता है कि मंत्रिसभा को डिप्टी सभा का पूरा सहारा रहता है और वह बिना बरखास्त किए जाने के डर के अपना कार्य बेखटके कर सकती है। आजकल मंत्रिसभा में १४ मंत्री हैं। महामंत्री की शक्ति, इँग्लैंड के महामंत्री के सदृश बहुत ज्यादा है।

यहाँ की सिनेट में आजकल लगभग ४०० सभ्य हैं। इनमें कुछ तो वंशपरंपरा से चले आते हैं; किंतु अधिकांश जन्म भर के लिये नामजद किए जाते हैं। जो वंशपरंपरा से चले आते हैं, वे राजकीय घराने के ही होते हैं। नामजद किए जानेवाले सिनेटर कुछ खास श्रेणी के होने चाहिएँ और उनकी अवस्था कम से कम ४० वर्ष अवश्य होनी चाहिए। ये राजा द्वारा महामंत्री की सिफारिश से नामजद होते हैं। वे श्रेणियाँ इन चार विभागों के अंतर्गत आती हैं—(क) चर्च से संबंध रखनेवाले बिशप और अन्य बड़े बड़े पदाधिकारी, (ख) स्थलसेना और जलसेना के बड़े बड़े पदाधिकारी और बड़े बड़े राजकीय सेवक, (ग) विद्वान् और देश का मान बढ़ानेवाले पुरुष, (घ) वे मनुष्य जो कुछ खास रकम टैक्स में देते हैं। यहाँ की सिनेट की यह विचित्रता है कि राजा के नामजद करने पर भी वह किसी सभ्य को अपना सभ्य न बनने दे; परंतु यह तभी हो सकता है जब वह यह दिखलावे कि वह व्यक्ति उन श्रेणियों में का नहीं है जिनमें से सिनेट के सभ्य लिए जाते हैं।

प्रतिनिधि सभा और डिप्टियों की सभा में ५३५ सभ्य हैं। आजकल प्रत्येक बालिग पुरुष को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है। स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है। पहले प्रत्येक जिले से एक एक सभ्य चुना जाता था, किंतु आजकल दूसरी ही रीति काम में लाई जाती है। यह रीति मुसोलिनी के महामंत्रित्व में सन् १९२३ में प्रचलित हुई थी। अब इटली १५ प्रांतों में विभक्त है और प्रत्येक प्रांत के लिये भिन्न भिन्न दल अपने अपने उम्मेदवारों की सूची बनाते हैं। वोट देनेवाले को पूरी सूची के लिये वोट देना पड़ता है। जिस सूची को सबसे अधिक वोट मिलते हैं, वह पूरी डिप्टी सभा के $\frac{2}{3}$ हिस्से की अधिकारी हो जाती है, फिर चाहे उस सूची पर वोट देनेवालों की संख्या आधे से भी कम क्यों न हो। इसका फल यह होता है कि डिप्टियों की सभा में एक न एक दल प्रधान रहता है। बाकी दल अपने अपने वोटों के अनुपात से जगह पाते हैं।

इँगलैंड के सदृश यहाँ भी राज्यनियम बनाने के लिये दोनों सभाओं की सम्मति आवश्यक है; तथापि डिप्टियों की सभा दोनों में प्रधानतर है। धन संबंधी बिल डिप्टी सभा ही पेश कर सकती है।

इजिप्ट या मिस्र एक राजसत्तात्मक राज्य है। यहाँ का राजा सन् १९१७ में सुल्तान के नाम से गद्दी पर आया और १६ मार्च सन् १९२२ को इसे राजा का पद प्राप्त हुआ। इजिप्ट में

एक मंत्रिसभा भी है जिसके सिर पर एक प्रधान मंत्री है। यहाँ की जातीय सभा की दो सभाएँ हैं। उच्च सभा या सीनेट में

इजिप्ट या मिस्र

१२१ सभ्य हैं। इनमें से $\frac{२}{५}$ वाँ हिस्सा राज्य द्वारा नामजद होता है और बाकी $\frac{३}{५}$ जनता द्वारा चुना जाता है। इसकी अवधि १० साल होती है। आधे सभ्य प्रति पाँच वर्ष बाद बदले जाते हैं। प्रतिनिधि-सभा में २१० सभ्य हैं। वे जनता द्वारा चुने जाते हैं और इनकी अवधि पाँच वर्ष की होती है। इजिप्ट पहले इँगलैंड का एक रक्षित राज्य था, परंतु सन् १९२२ में इँगलैंड ने इजिप्ट को स्वतंत्रता दे दी। अब वह एक स्वतंत्र राष्ट्र कहलाता है। इसी लिये हमने इसे स्वतंत्र राष्ट्रों की श्रेणी में रखा है। परंतु वास्तव में इजिप्ट अब भी पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। इँगलैंड अब भी उस पर अपना हाथ रखे हुए है और इजिप्ट की पार्लिमेंट को कोई नियम बनाने के पहले इँगलैंड की मर्जी का भी कुछ विचार करना पड़ता है।

यहाँ प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य है। चार वर्ष के लिये एक सभापति चुना जाता है जो शासन-कार्य करता है। कानून

ईक्वेडर

बनाने के लिये एक कांग्रेस है जिसमें सिनेटरों तथा डिप्टियों के दो हाउस सम्मिलित हैं। सभापति के अतिरिक्त एक उपसभापति भी होता है जो सभापति के चुने जाने के दो वर्ष बाद चुना जाता है और आवश्यकता पड़ने पर सभापति का काम करता है।

पहले यहाँ का शासन मुसलमानी धर्म के अनुसार पूर्ण रूप से राजा के ही हाथ में था जो शाह कहलाता था।

ईरान (फारस)

सन् १९०७ में शाह की स्वीकृति से एक राष्ट्रीय सभा स्थापित हुई जिसमें अमीरों, सरदारों, जागीरदारों, व्यापारियों और मुल्लाओं आदि में से उन्हीं के चुने हुए १५६ सदस्य थे। सन् १९०६ में शाह ने राष्ट्रीय सभा तोड़ दी। प्रजा ने विद्रोह किया। पुनः यह सभा स्थापित कर दी गई, किंतु शाह ने गद्दी छोड़ दी और उसके बड़े लड़के ने शाह का पद ग्रहण किया। आजकल यहाँ की राष्ट्रीय सभा, जो मजलिस कहलाती है, १३६ सभ्यों की बनी है और यह सन् १९२६ में दो साल के लिये चुनी गई थी। यहाँ का शाह भी जनता द्वारा चुना जाता है। आजकल यहाँ का शाह रजा शाह पहलवी है जो १३ दिसंबर १९२५ को चुना गया था और २५ अप्रैल १९२६ को इसने अभिषेक की शपथ ली थी। यहाँ की मंत्रिसभा के मंत्री शाह द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

एबीसीनिया

इसका दूसरा नाम इथिओपिया है। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। गाँवों का शासन प्रायः वहाँ के सरदारों के हाथ में होता है और जिलों या प्रांतों के शासन के लिये राज्य द्वारा अधिकारी नियुक्त होते हैं। यहाँ की शासन-प्रणाली प्रायः युरोप के मध्यकालिक युग की शासन-प्रणाली से मिलती जुलती है।

यहाँ एक राज-सभा भी है। इसी के सदस्यों के अधीन प्रांतों के शासक और गाँवों के सरदार होते हैं। अभी हाल में यहाँ के राजा ने एक मंत्रि-मंडल भी स्थापित किया है जिसमें भिन्न भिन्न विभागों के अनेक मंत्री हैं। राज्य का आंतरिक प्रबंध तो स्वतंत्र है, पर फिर भी वहाँ ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली को अनेक व्यापारिक सुभीते प्राप्त हैं जिनके कारण विदेशी राज्यों से राज्य का स्वतंत्र संबंध नहीं हो सकता। वहाँ की शांति-रक्षा का भार भी इन्हीं तीनों ने मिलकर अपने ऊपर लिया है। वहाँ के व्यापार तथा रेलों आदि के बनाने का प्रबंध भी ये ही तीनों करते हैं और बाहर से राज्य में हथियार या गोला बारूद आदि नहीं आने देते।

कोस्टा रीका

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। शासन सभापति के द्वारा होता है जो चार वर्ष के लिये चुना जाता है। कानून बनाने के लिये एक प्रतिनिधि सभा है जिसमें ४३ प्रतिनिधि होते हैं। राजकार्य में सभापति को सहायता या सम्मति देने के लिये ५ प्रतिनिधियों की एक स्थायी समिति भी है। जिस समय प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन नहीं होता, उस समय यही समिति काम चलाती है। सभापति पाँच विभागों के लिये पाँच मंत्री नियुक्त करता है और वे सब उसी के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

कोलंबिया में प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये एक कांग्रेस है जिसमें सीनेट तथा प्रतिनिधि सभा

सम्मिलित हैं। आजकल सीनेट में ६८ सभ्य हैं जो विशेषतः इसी कार्य्य के लिये चुने हुए लोगों के द्वारा चुने जाते हैं। सीनेट की अवधि चार वर्ष की होती है। प्रतिनिधि सभा में ११२ सदस्य हैं। इसकी अवधि दो वर्ष की होती है। प्रति ५०,००० निवासियों की ओर से चुना हुआ एक प्रतिनिधि होता है। दोनों की सम्मिलित कांग्रेस में बहुमत से चार वर्ष के लिये एक सभापति और एक उपसभापति चुना जाता है। भिन्न भिन्न विभागों के लिये छः मंत्री हैं।

कोलंबिया

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये एक जातीय कांग्रेस है, जिसमें छः प्रांतों के २४ सदस्यों का एक सिनेट तथा १२७ प्रतिनिधियों की एक सभा सम्मिलित है। चुनाव में सम्मति देने का अधिकार प्रत्येक पुरुष को है। सिनेट की अवधि आठ वर्ष की है। इसके आधे सभ्य प्रति चौथे वर्ष बदले जाते हैं। प्रतिनिधि सभा की अवधि चार वर्ष की है और $\frac{1}{2}$ सभ्य प्रति दूसरे वर्ष बदले जाते हैं। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न विभागों के मंत्रियों का एक मंत्रि-मंडल भी है। शासन कार्य्य के लिये चार वर्ष के लिये एक सभापति और एक उपसभापति चुना जाता है जो लगातार दो बार से अधिक अधिकारारूढ़ नहीं हो सकता।

क्यूबा

ग्वेटेमाला में प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये सर्वसाधारण द्वारा चुने हुए ६९ सदस्यों की एक जातीय

सभा है। प्रति २०,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि इस सभा में होता है। प्रत्येक पुरुष को वोट देने का अधिकार है। शासक सभापति वोट द्वारा छः वर्ष के लिये चुना जाता है, और एक बार चुने हुए सभापति का चुनाव आगे बराबर हो सकता है। १३ सदस्यों की एक राजसभा भी है। उसके कुछ सदस्य जातीय सभा चुनती है और कुछ सभापति द्वारा नियुक्त होते हैं।

ग्वेटेमाला

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये वहाँ सिनेटरों और डिप्टियों की एक जातीय सभा है। आठ वर्ष के लिये चुने हुए ४५ सिनेटर होते हैं और चार वर्ष के लिये चुने हुए १३५ डिप्टी। २१ वर्ष से अधिक की अवस्था के प्रत्येक पढ़े लिखे युवक को चुनाव में सम्मति देने का अधिकार है। ६ वर्ष के लिये एक शासक सभापति चुना जाता है जो फिर दोबारा नहीं चुना जा सकता। यदि किसी बिल पर सभापति को कुछ आपत्ति हो और वह बिल डिप्टियों की सभा में वापस भेजा जाय तथा यदि उस सभा के उपस्थित सदस्यों में से दो तृतीयांश सदस्य उस बिल के पक्ष में हों, तो उस दशा में वह बिल अवश्य पास हो जायगा। राजकार्य्य में सभापति को सहायता देने के लिये राज्यसभा के पाँच सदस्य सभापति द्वारा नियुक्त होते हैं, और छः कांग्रेस द्वारा। इसके अतिरिक्त छः मंत्रियों का एक मंत्रि-मंडल भी है।

चिली

सन् १९१२ के आरंभ तक यहाँ राजसत्तात्मक राज्य था और यहाँ का सारा राजकार्य्य एक मात्र सम्राट् के इच्छानुसार ही होता था। पर इधर कई वर्षों से यहाँ के लोग शासन-प्रणाली में सुधार करने लग गए थे। अंत में १२ फरवरी सन् १९१२ से यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य स्थापित हो गया। किंतु यह भी अधिक दिन न टिक सका। महायुद्ध छिड़ने के बाद जापान ने यहाँ के अनेक राजकार्यों में बहुत कुछ अधिकार प्राप्त कर लिया था। अन्य युरोपीय राष्ट्रों ने विशेषकर इँगलैंड ने चीन पर अपनी धाक जमाने का यत्न किया। चीनी लोगों ने अपनी दशा अच्छी नहीं देखी; इससे जबरदस्त क्रांति शुरू हो गई। अभी हाल तक वहाँ पर क्रांति जारी रही, किंतु अब शांति है। अब वहाँ पर प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। इसके ऊपर एक प्रधान है और एक जातीय सभा भी है। शासन के सारे कार्य पाँच विभागों में बाँटे गए हैं और इनका स्वतंत्र रीति से शासन होता है। यहाँ की शासनपद्धति पर अभी विशेष नहीं लिखा जा सकता, और न यही कहा जा सकता है कि यह स्थायी रह सकेगी। संसार के अन्य राष्ट्रों ने इस शासन-प्रणाली को मान लिया है और हाल ही में इँगलैंड ने इससे संधि कर ली है।

चीन

जापान में राजसत्तात्मक राज्य है। यहाँ का सम्राट् आज-कल हिरोहितो है। इसका सिंहासनारोहण २५ दिसंबर १९२६

को हुआ था। मंत्रिमंडल की सम्मति और सहायता से सम्राट् सारे राज्य का शासन और प्रबंध करता है। मंत्रियों को सम्राट् स्वयं नियत करता है। इसके अतिरिक्त एक प्रीवी काउंसिल भी है, जिससे आवश्यकता पड़ने पर सम्राट् सम्मति और सहायता लेता है। युद्ध या संधि आदि करने का पूरा अधिकार सम्राट् का ही है: पार्लिमेंट की सम्मति से कानून बनाने का अधिकार भी सम्राट् को ही है। कानूनों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करना और पार्लिमेंट रखना, बंद करना या तोड़ना आदि सब सम्राट् के अधिकार में है। पार्लिमेंट में दो सभाएँ हैं—एक हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) और एक प्रतिनिधि सभा। ये दोनों सभाएँ इँगलैंड की लार्ड्स और कामंस सभाओं की तरह ही हैं। प्रत्येक कानून के लिये पार्लिमेंट की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। हाउस आफ पीयर्स में राजघराने के तथा अन्यान्य बड़े आदमी और रईस होते हैं। आजकल हाउस आफ पीयर्स में ४०७ सभ्य हैं जिनमें से १८७ जन्म भर के लिये रहेंगे। बाकी खास खास समाजों द्वारा चुने जाते हैं। इनकी अवधि सात वर्ष की है। प्रतिनिधि सभा में इस समय ४६४ सदस्य हैं। प्रतिनिधियों के चुनाव में आजकल प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष को मत देने का अधिकार है। ३० वर्ष से अधिक अवस्था का प्रत्येक जापानी पुरुष प्रतिनिधि सभा में निर्वाचित हो सकता है।

जापान

परंतु सम्राट् के निज के कर्म्मचारी, धर्म्माधिकारी, विद्यार्थी और पाठशालाओं के अध्यापक आदि उक्त सभा के सदस्य नहीं हो सकते। दोनों सभाओं के सभापतियों और उप-सभापतियों को सम्राट्, उन्हीं में से, नियत करता है। पार्लिमेंट का अधिवेशन प्रति वर्ष होना आवश्यक है। सारा आर्थिक प्रबंध पार्लिमेंट ही करती है। जेरिसा, फारमोसा, डेस्काडोर्स (फिशर्स द्वीपपुंज), क्वाटङ्ग, सखेलिन और कोरिया ये छः जापान के अधीनस्थ राज्य हैं।

टर्की

यहाँ पहले राजसत्तात्मक राज्य था और यहाँ का राजा सुलतान कहलाता था। सन् १८७६ में सुलतान ने शासन-कार्य्य में प्रजा को कुछ अधिकार दिए थे, पर दूसरे ही वर्ष फिर छीन लिए थे। तब से मुसलमानी धर्म्म के अनुसार समस्त राज्य में सुल-तान का ही अनियंत्रित राज्य था। किंतु महासमर के बाद टर्की भी पुराना टर्की नहीं रहा। यहाँ भी अब प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य है। यहाँ का सभापति प्रसिद्ध कमाल पाशा है जिसने १ नवंबर सन् १६२७ को अपना पद ग्रहण किया था। यह टर्की में बहुत सुधार कर रहा है और टर्की को बिलकुल युरोपीय ढंग का बनाने के प्रयत्न में है। इसने यहाँ की स्त्रियों का पर्दा राज्यनियम द्वारा हटवा डाला और राजनीति से धर्म को अलग कर दिया। और तो और, राष्ट्रीय लिपि तक को बदलकर उसके बदले रोमन लिपि प्रचलित

कर दी। जैसा हम ऊपर बता आए हैं, इसी का उदाहरण अफगानिस्तान के अमीर ने भी ग्रहण किया; किंतु अफगानी इस प्रगति को नहीं अपना सके और आजकल इसके विरुद्ध भयंकर क्रांति हो रही है। टर्की में एक मंत्रि-मंडल भी है जिसके ऊपर एक महामंत्री या प्राइम मिनिस्टर है।

यहाँ की राष्ट्रीय सभा में ३१६ सभ्य हैं। इसकी अवधि चार वर्ष की है। शासन-पद्धति के प्रत्येक अंग में सभापति कमाल पाशा के ही दल के लोग भरे हुए हैं।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है और शासन का कार्य राजा तथा मंत्रियों के हाथ में है। नया कानून बनाने अथवा पुराने कानून में परिवर्त्तन करने का अधिकार पार्लिमेंट को है जो राजा से मिलकर कार्य करती है। पार्लिमेंट में दो सभाएँ हैं, एक उच्च और दूसरी साधारण। उच्च सभा में ७६ सदस्य हैं। इनमें से १९ सभ्य सभा ने १० सितंबर १९२० को स्वयं चुने और बाकी १ अक्टूबर १९२० को जनता द्वारा चुने गए। इनकी अवधि आठ वर्ष की है। आधे सदस्य प्रति चौथे वर्ष चुने जाते हैं। इस सभा में केवल बड़े आदमी ही निर्वाचित हो सकते हैं। साधारण सभा में १४९ सदस्य हैं जो सर्वसाधारण द्वारा चार वर्ष के लिये चुने जाते हैं। पार्लिमेंट का अधिवेशन प्रति वर्ष होता है। उच्च सभा कानून बनाने के अतिरिक्त न्याय-विभाग के लिये अपने ही सदस्यों

डेन्मार्क

में से जज भी चुनती है। मंत्रिगण दोनों सभाओं में जा सकते हैं, पर बिना उनके सदस्य हुए सम्मति नहीं दे सकते। आइसलैंड, ग्रीनलैंड, फैरोज तथा वेस्ट-इंडीज के कुछ द्वीप डेन्मार्क के अधीनस्थ राज्य हैं।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। शासन संबंधी समस्त अधिकार राजा को है जो मंत्रि-मंडल की सहायता से सब काम करता है। कानून बनाने के लिये स्टारटिंग (Starting) नाम की एक व्यवस्थापिका सभा है। इसमें आजकल १५० सभ्य हैं। इसकी अवधि तीन वर्ष की है। राजा किसी बिल को दो बार अस्वीकृत कर सकता है; परंतु यदि वही बिल व्यवस्थापक सभा की तीन बैठकों में स्वीकृत हो चुका हो तो राजा की सम्मति के बिना ही पास हो जाता है। ५ वर्ष से नारवे में रहनेवाले प्रत्येक विदेशी, नारवे के २५ वर्ष से अधिक अवस्थावाले प्रत्येक पुरुष और कुछ निश्चित कर देनेवाली प्रत्येक स्त्री को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है। प्रति तीसरे वर्ष व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों का चुनाव होता है। व्यवस्थापिका सभा अधिवेशन के समय उक्त दो सभाओं में विभक्त हो जाती है। उसमें से एक सभा लैगटिंग (Lagting) और दूसरी ओडेल्स्टिग (Odelsting) कहलाती है। पहली में एक चौथाई और दूसरी में तीन चौथाई सदस्य होते हैं। दोनों सभाएँ अपने अपने सभापति आप नियत करती हैं। कानून-संबंधी प्रश्नों

नारवे

पर दोनों सभाओं में पृथक् पृथक् विचार होता है। पहले ओडेलस्टिग के सामने उपस्थित होने के उपरांत तब लैगटिंग के सामने स्वीकृत या अस्वीकृत होने के लिये बिल आते हैं। यदि दोनों सभाओं में मतभेद होता है तो विचार के लिये दोनों का सम्मिलित अधिवेशन होता है, और दो तृतीयांश सदस्यों का जो मत होता है, वही अंतिम निश्चय समझा जाता है। मंत्रिगण इन सभाओं में जा सकते हैं, पर बिना सदस्य हुए सम्मति नहीं दे सकते। जल और स्थल सेना पर केवल राजा का ही अधिकार है।

निकारागुआ

यहाँ प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य है। शासनाधिकार सभापति के हाथ में होता है जो ४ वर्ष के लिये चुना जाता है और जिसकी सहायता के लिये एक मंत्रि-मंडल है। कानून बनाने के लिये एक कांग्रेस है जिसमें २४ सदस्यों की सिनेट और ४३ सदस्यों की चेंबर आफ डिप्टीज है। सिनेट की अवधि ६ वर्ष की है। इसके $\frac{१}{३}$ सभ्य प्रति दूसरे वर्ष चुने जाते हैं। चेंबर आफ डिप्टीज़ की अवधि ४ वर्ष की है और आधे सभ्य प्रति दूसरे वर्ष बदले जाते हैं। सिनेटर और डिप्टी सर्वसाधारण द्वारा चुने जाते हैं। इसलिये सब कार्य्य एक निश्चित कानून के अनुसार होते हैं।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है और राजगद्दी पर रानी विल-हेल्मिना है जो ६ सितंबर सन् १८९८ में राजसिंहासन

पर बैठी थी। मंत्रि-मंडल की सहायता से सब काम रानी करती है। मंत्रियों को रानी नियुक्त करती है, पर वे व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। पार्लिमेंट में दो सभाएँ हैं—एक उच्च या प्रथम और दूसरी साधारण या द्वितीय। प्रथम सभा में ६ वर्ष के लिये चुने हुए ५० सदस्य होते हैं जिनमें से $\frac{1}{3}$ प्रति तीसरे वर्ष बदले जाते हैं; और द्वितीय सभा में चार वर्ष के लिये चुने हुए सौ सदस्य होते हैं। सदस्य चुनने का अधिकार प्राप्त करने के लिये पुरुषों को अपनी रजिस्टरी करानी पड़ती है। २५ वर्ष से कम अवस्था का पुरुष सदस्य नहीं चुन सकता। नए बिल उपस्थित करने का अधिकार या तो सरकार को है या साधारण अथवा द्वितीय सभा को। उच्च या प्रथम सभा उन्हें केवल स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकती है। उनमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन तक करने का अधिकार उच्च सभा को नहीं है। इसके अतिरिक्त एक राजसभा भी है जिसमें चौदह सदस्य होते हैं। इसकी सभानेत्री स्वयं रानी होती है और वही इसके सदस्य भी चुनती है। शासन संबंधी कुल काम इस सभा के हाथ में हैं; पर बहुधा इससे कानूनी विषयों में ही सम्मति ली जाती है। इस समय यहाँ का शासनाधिकार रानी के हाथ में है जिसकी माता रीजेंट के रूप में कार्य करती है। ईस्ट-इंडीज के द्वीप-पुंज में बहुत से द्वीप नेदर्लैंड के उपनिवेश हैं जिनमें से

नेदर्लैंड्स

सुमात्रा, जावा, बाली, लंबक, बोर्नियो, सेलीबीस आदि प्रसिद्ध हैं। वेस्ट-इंडीज में भी सुरीनम तथा छः और छोटे छोटे द्वीप इसके उपनिवेश हैं।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है; पर राजा के अधिकार बहुत ही संकुचित हैं। शासन आदि के संबंध के कुल अधिकार प्रधान मंत्री को ही हैं।

नेपाल

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। शासनाधिकार सभापति के हाथ में है जो चार वर्ष के लिये चुना जाता है और जिसका चुनाव दोबारा नहीं हो सकता। प्रति १०,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि के हिसाब से, प्रतिनिधि सभा में ४६ सदस्य हैं जिनका सम्मेलन प्रति चौथे वर्ष होता है।

पनामा

पहले यहाँ राजसत्तात्मक राज्य था, पर अक्तूबर सन् १९१० से प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य हो गया है। सन १९२५ में यहाँ एक राष्ट्रीय परिषद् थी जिसमें प्रजा के द्वारा, तीन वर्ष के लिये चुने हुए १६१ सदस्य रहते थे। इसके अतिरिक्त म्युनिसिपल कौंसिलों के चुने हुए ७० सदस्यों की एक और सभा थी। दोनों सभाएँ मिलकर चार वर्ष के लिये एक सभापति चुनती थीं। सभापति की अवस्था ३५ वर्ष से कम न होनी चाहिए थी। वही मंत्रियों को नियुक्त करता था; परंतु वे मंत्री पार्लिमेंट

पुर्त्तगाल

के सम्मुख उत्तरदायी होते थे। किंतु सन् १९२६ में यहाँ की सरकार सेना द्वारा उखाड़ डाली गई और ९ जुलाई को एक नवीन सरकार स्थापित हो गई। आजकल यहाँ कोई पार्लिमेंट या राज्य परिषद् नहीं है और वह सरकार बिना किसी रोक-टोक के अपना शासन कर रही है। परंतु शीघ्र ही नए सिरे से नवीन राज-परिषद् का सम्मेलन होगा। आजकल जनरल अंटोनियो यहाँ का सभापति है। इसने दिसंबर १९२६ में सभापति का आसन ग्रहण किया था। इसकी अवधि ४ वर्ष की है।

पेरू

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने का अधिकार सिनेट और प्रतिनिधि सभा को है जिसके सदस्यों का चुनाव सर्वसाधारण की सम्मति से होता है। सिनेटर ३५ और प्रतिनिधि ११० होते हैं। सिनेटर या डिप्टी या तो अच्छी निश्चित आयवाले होने चाहिएँ या विद्वान्। प्रति दूसरे वर्ष एक तृतीयांश सदस्य बदले जाते हैं। कांग्रेस का अधिवेशन प्रति वर्ष तीन मास तक होता है। बीच में भी आवश्यकता पड़ने पर उसका अधिवेशन हो सकता है; पर ऐसा अधिवेशन ४५ दिनों से अधिक तक नहीं हो सकता। ५ वर्ष के लिये चुना हुआ एक वेतनभोगी सभापति होता है जो दोबारा भी चुना जा सकता है। दो उपसभापति भी होते हैं, जिन्हें कुछ वेतन नहीं मिलता। छः मंत्रियों के एक मंत्रिमंडल की सहा-

यता से सभापति शासन कार्य करता है। सभापति की आज्ञाओं आदि पर मंत्रियों के हस्ताक्षर आवश्यक होते हैं।

पैराग्वे

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये पार्लिमेंट में प्रति १२,००० निवासियों की ओर से एक सिनेटर और प्रति ६००० निवासियों की ओर से एक डिप्टी चुना जाता है। जिन प्रांतों की आबादी कुछ कम होती है, उनमें इस हिसाब में कुछ रिआयत की जाती है। सिनेट में २० सभ्य होते हैं। इसकी अवधि ६ वर्ष की है। १/३ सभ्य प्रति दो वर्ष बाद बदले जाते हैं। प्रतिनिधि सभा (चेंबर आफ डेपुटीज) में ४० सभ्य हैं। इसकी अवधि चार वर्ष की है। आधे सभ्य प्रति २ वर्ष बाद बदले जाते हैं। चार वर्ष के लिये चुने हुए एक सभापति के हाथ में शासन का अधिकार होता है जो पाँच मंत्रियों के एक मंत्रि-मंडल की सहायता से शासन करता है।

बलगेरिया

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। राजा की सहायता के लिये एक पार्लिमेंट या जातीय सभा है जिसमें प्रति २०,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। इस समय इसमें २७३ सदस्य हैं। तीस वर्ष से अधिक अवस्था के पढ़े लिखे लोग प्रतिनिधि हो सकते हैं। पार्लिमेंट का समय चार वर्ष तक है। यदि राजा चाहे तो बीच में ही पार्लिमेंट तोड़ सकता है; पर इस दशा में उसे दो मास के अंदर ही नई जातीय

सभा का संघटन करना होता है। इस सभा में जो कानून पास होते हैं, उनके जारी होने के लिये राजा की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। मंत्रियों को भी राजा ही नियुक्त करता है। यदि कोई प्रदेश लेने या छोड़ने, संघटन में परिवर्तन करने, सिंहासन खाली होने पर नए राजा के सिंहासनारूढ़ होने या रीजेंट नियुक्त करने की आवश्यकता हो तो एक विशेष जातीय सभा का संघटन होता है, जिसमें साधारण सभा से दूने सदस्य होते हैं।

बेलजियम

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है; पर तो भी शासन के काम में प्रजा का बहुत कुछ हाथ है। कानून बनाने का अधिकार राजा, सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा को है। राजा की कोई आज्ञा उस समय तक मान्य नहीं होती, जब तक उससे सहमत होकर उस पर कोई मंत्री हस्ताक्षर न कर दे। उस दशा में उसका उत्तरदाता वही मंत्री हो जाता है। राजा अपने इच्छानुसार सिनेट और प्रतिनिधि सभा का संघटन कर सकता है अथवा उन्हें तोड़ सकता है। यदि कोई पुरुष उत्तराधिकारी न हो तो दोनों सभाओं की स्वीकृति से राजा किसी को अपना उत्तराधिकारी चुन सकता है। यदि उत्तराधिकारी अट्ठारह वर्ष से कम अवस्था का हो तो दोनों सभाएँ मिलकर रीजेंट नियुक्त करती हैं। प्रतिनिधि सभा में जितने सदस्य होते हैं, उसके आधे सदस्य सिनेट में प्रजा द्वारा चुने जाते हैं और बाकी प्रांतीय कौंसिलों द्वारा

नियुक्त होते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव प्रजा ही करती है। प्रति ४०,००० निवासियों का एक से अधिक प्रतिनिधि नहीं हो सकता। सिनेटर और प्रतिनिधि चार वर्ष के लिये चुने जाते हैं। सिनेट में आजकल १५३ सभ्य हैं और प्रतिनिधि सभा में १८७। जो सभा तोड़ी जाय, उसका पुनर्घटन ४० दिनों के अंदर और अधिवेशन दो महीने के अंदर होना चाहिए। दस विभागों के दस मंत्रियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मंत्री भी हैं जिनका विशेष अवसरों पर आह्वान होता है।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। सभापति का चुनाव जनसाधारण द्वारा चार वर्ष के लिये होता है और एक बार

बोलीविया

चुना हुआ सभापति दोबारा नहीं चुना जा सकता। इसके अतिरिक्त कानून आदि बनाने के लिये जन-साधारण द्वारा चुने हुए २८ सिनेटर और ७२ प्रतिनिधि हैं। प्रत्येक पढ़े लिखे मनुष्य को चुनाव में सम्मति देने का अधिकार है। सिनेटरों का एक तृतीयांश और डिप्टियों का अर्द्धांश प्रति दो वर्ष के उपरांत बदला जाता है। दोनों सभाओं का सम्मिलित अधिवेशन ६० से ९० दिनों तक प्रति वर्ष होता है। आवश्यकता पड़ने पर बीच में भी अधिवेशन हो सकता है। एक सभापति, दो उप-सभापति और छः मंत्री मिलकर शासन-कार्य्य करते हैं।

ब्रेजिल छोटी छोटी इक्कीस रियासतों का समूह है। प्रत्येक रियासत स्वतंत्र है और अपना प्रबंध आप करती है। समस्त

राष्ट्र-संघटन के लिये राष्ट्रपति की स्वीकृति से जातीय परिषद कानून बनाती है। प्रति वर्ष ३ मई को इसका अधिवेशन आरंभ होता है और चार मास तक होता रहता है। परिषद में ६३ सिनेटर और २१२ डिप्टी होते हैं। सिनेटर ९,६ अथवा ३ वर्ष के लिये और डिप्टी तीन वर्ष के लिये सर्वसाधारण द्वारा चुने जाते हैं। भिखमंगों और सिपाहियों आदि को छोड़कर २१ वर्ष से अधिक अवस्था का पढ़ा लिखा प्रत्येक मनुष्य चुनाव में सम्मति दे सकता है। जल तथा स्थल-सेना पर राष्ट्रपति का पूरा अधिकार होता है और वही मंत्रियों को नियुक्त करता अथवा हटाता है। बहुत से अंशों में युद्ध तथा संधि करने का अधिकार भी उसी को होता है।

ब्रेजिल

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। संघटन प्राय: अन्य प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्यों की तरह ही है। सभापति की अवधि चार वर्ष की है। पार्लिमेंट में दो सभाएँ हैं—अंतरंग सभा और प्रतिनिधि सभा। अंतरंग सभा में ५८ सभ्य हैं और इनकी अवधि चार वर्ष की होती है। आधे सदस्य प्रति दूसरे वर्ष चुने जाते हैं। प्रतिनिधि सभा में २७१ सभ्य हैं। यह सभा प्रति दो वर्ष बाद नई संघटित होती है।

मेक्सिको

यूनान में पहले राजसत्तात्मक राज्य था, किंतु अब यहाँ भी प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। प्रजा द्वारा चुना हुआ एक सभापति है। सभापति की सहायता के लिये एक राष्ट्रीय

सभा भी है जिसके २८७ सभ्य हैं। इसकी अवधि तीन वर्ष की होती है। एक मंत्रि-सभा भी है जिसका मुख्य प्राइम मिनिस्टर है।

यूनान

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। ६ वर्ष के लिये चुने हुए १९ सिनेटरों और ३ वर्ष के लिये चुने हुए १२३ डिप्टियों की कांग्रेस है जो चार वर्ष के लिये सभापति या राष्ट्रपति चुनती है। राष्ट्रपति के पद के लिये एक मनुष्य का चुनाव दोबारा नहीं हो सकता।

युरुग्वे

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। ६ वर्ष के लिये चुने हुए १० सिनेटरों तथा चार वर्ष के लिये चुने हुए २२ प्रतिनिधियों की एक कांग्रेस है। चुनाव में सम्मति देने का अधिकार केवल हब्शियों को ही है। सभापति की सहायता के लिये सात मंत्रियों का एक मंत्रि-मंडल भी है। सभापति और उपसभापति का चुनाव चार वर्ष के लिये होता है। आजकल जो सभापति है, वह १ जनवरी १९२८ को तीसरी बार चुना गया है।

लाईबेरिया

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। इसके अंतर्गत बीस छोटी छोटी स्वतंत्र रियासतें हैं। ३ वर्ष के लिये चुने हुए, तीस वर्ष से अधिक अवस्थावाले ४० सिनेटरों और ३ वर्ष के लिये चुने हुए ६८ डिप्टियों की एक कांग्रेस है। सभापति का चुनाव ७ वर्ष के लिये होता है।

वेनेज्वेला

सालवेडर

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। सभापति का चुनाव प्रजा द्वारा होता है। सभापति की अवधि चार वर्ष है और एक बार का चुना हुआ सभापति दोबारा नहीं चुना जा सकता। जातीय सभा के ४२ प्रतिनिधियों का चुनाव प्रति वर्ष प्रजा द्वारा होता है। इस सभा का अधिवेशन प्रति वर्ष फरवरी से मई तक होता है। प्रत्येक अधिवेशन के लिये यह सभा अपना सभापति और उप-सभापति आप ही चुनती है।

स्पेन

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। यहाँ का राजा एलफोंसो है जो जनमते ही राजगद्दी पर बैठा। यहाँ एक मंत्रिसभा भी है जिसके ऊपर एक प्रधान मंत्री है। पहले यहाँ दो सभाओं की एक जातीय सभा थी। परंतु यह सन् १९२३ में १५ सितंबर को राजाज्ञा से तोड़ डाली गई है। अब इसकी जगह एक पार्लिमेंट है जो सन् १९२७ के १० अक्टूबर को स्थापित हुई थी। इस पार्लिमेंट के सदस्य राजा द्वारा नामजद होते हैं और इसका काम केवल सलाह देना और शासन करना ही होता है। यहाँ एक काउंसिल आफ स्टेट भी है जिसमें भिन्न भिन्न राजनीतिक दलों के नेता, राजनीतिज्ञ, गिरजाघर, उद्योग-धंधे, मजदूर, किसान तथा जल और स्थल सेना के प्रतिनिधि नामजद होते हैं। इस काउंसिल का कार्य मंत्रिसभा को सलाह देना है।

यह एक शुद्ध राजसत्तात्मक राज्य है। यहाँ का राजा प्रजाधिपक सन् १६२६ में गद्दी पर बैठा था। गद्दी पर बैठते ही इसने एक मुख्य सभा (Supreme Council) स्थापित की जिसमें राजवंश के ५ पुरुष हैं। यह पंचायत राजा को गुप्त मामलों में और ऐसे मामलों में जो केवल राजा और राजवंश से संबंध रखते हैं, सलाह देती है। पहले यहाँ एक गुप्त सभा (Privy Council) थी जो सन् १६२७ में तोड़ डाली गई और उसकी जगह एक नवीन गुप्तसभा बनाई गई है। इसका ध्येय यही है कि राजा को जनता के लब्धप्रतिष्ठ लोगों की राय भी मालूम होती रहे। इसके सभ्य राजा द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और वे उसके राजकाल तक और उससे ६ मास बाद तक उसके सभ्य रहेंगे। इस गुप्त सभा की एक ४० सभ्यों की उपसभा है जिसके समक्ष राजा कोई राजकीय विषय रख देता है और उन्हें उस पर अपनी राय देनी होती है। यहाँ एक मंत्रिसभा है और प्रत्येक राजकीय विभाग के मुखिया इसके सभ्य होते हैं। स्वयं राजा ही महामंत्री भी है।

स्याम

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। शासन-प्रबंध में राजा को सहायता देने के लिये, राज्य द्वारा नियुक्त किए हुए मंत्रियों का एक मंत्रिमंडल और कानून बनाने के लिये एक व्यवस्थापिका सभा है। प्रत्येक कानून के प्रचलित होने के लिये राजा की स्वीकृति आवश्यक

स्वीडन

होती है। व्यवस्थापिका सभा या पार्लिमेंट के अंतर्गत दो सभाएँ हैं। पहली सभा में १५० सदस्य होते हैं जो प्रांतीय और म्युनिसिपल सभाओं द्वारा निर्वाचित होते हैं। इसके सदस्य वे ही लोग हो सकते हैं जिनकी अवस्था ३५ वर्ष से अधिक हो और जिनकी अच्छी जमींदारी या आय हो। दूसरी सभा में २३० सदस्य होते हैं जिनका चुनाव सर्वसाधारण द्वारा होता है। २४ वर्ष से अधिक अवस्था के प्रत्येक मनुष्य को चुनाव में सम्मति देने का अधिकार है। दोनों सभाओं का सम्मिलित अधिवेशन होता है और उसमें अधिक संख्या दूसरी सभावालों की होती है; अतः बहुमत भी प्रायः उसी के पक्ष में होता है। राजा प्रत्येक अधिवेशन का सभापति नियुक्त करता है।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। यहाँ का सभापति प्रति चार वर्ष के लिये चुना जाता है। यहाँ एक मंत्रिसभा है, परंतु उसमें प्रधान मंत्री कोई नहीं है। इस मंत्रिसभा में बहुधा सभापति ही अध्यक्ष का आसन ग्रहण करता है, परंतु उसकी अनुपस्थिति में अंतरीय विभाग का मंत्री उसका आसन ग्रहण करता है। यहाँ एक पार्लिमेंट भी है जिसमें २१ सभ्य हैं। ये सब सभापति द्वारा नामजद किए जाते हैं।

हेटी

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। सभापति का चुनाव चार वर्ष के लिये २१ वर्ष की अवस्थावाले प्रत्येक इंडियन

पुरुष अथवा १९ वर्ष की अवस्थावाले शिक्षित और विवाहित पुरुष की सम्मति से होता है। एक बार चुना हुआ सभापति फिर से चुना जा सकता है। कांग्रेस के ४६ डिप्टियों का चुनाव भी चार वर्ष के लिये प्रजा ही करती है। आधे सभ्य प्रति दूसरे वर्ष बदले जाते हैं। प्रति १०,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि होता है। कांग्रेस का अधिवेशन प्रति वर्ष १ जनवरी को आरंभ होता है और ६० दिनों तक होता रहता है।

होंडूरास

ग्यारहवाँ परिच्छेद

उपनिवेश, रक्षित राज्य, अधीन राज्य और आदेशित राज्य

उपनिवेश

उपनिवेश उस देश को कहते हैं जिसमें एक देश या राज्य के लोग आकर सदा के लिये बस जाते और वहीं खेती बारी या व्यापार आदि करके अपना निर्वाह करते हैं। वे लोग किसी विदेशी शक्ति के अधीन नहीं होते, केवल अपनी मातृभूमि से ही थोड़ा बहुत संबंध रखते हैं। प्राचीन काल में फिनीशिया, यूनान, भारत और रोम आदि देशों के निवासी व्यापार करने के लिये विदेश जाया करते थे और उनमें से कुछ लोग किसी देश में सदा के लिये बस भी जाते थे। वहाँ उन्हें बहुत कुछ आर्थिक लाभ होता था जिसका बहुत कुछ अंश उनकी मातृभूमि को भी मिला करता था। दूसरे देशों में बसकर लोग वहाँ अपनी मातृभाषा और धर्म्म आदि का प्रचार भी करते थे। आगे चलकर स्पेन, पुर्त्तगाल, फ्रांस और इँगलैंड आदि देशों के निवासी भी विदेश में आकर बसने, वहाँ उपनिवेश बनाने और फलतः अपने देश को उन्नत और संपन्न करने लगे।

अन्य जातियों की अपेक्षा इधर कई सौ वर्षों में अँगरेज जाति बहुत आगे बढ़ गई है। इस समय समस्त भूमंडल के

स्थल-भाग का छठा अंश प्रायः इसी प्रकार उपनिवेश रूप में बसा हुआ है। ये अँगरेजी उपनिवेश तीन प्रकार के हैं— (१) राजकीय उपनिवेश (Crown Colonies) जिनमें सारा राजकीय प्रबंध इँगलैंड की सरकार के अधीन ही होता है। (२) नियमित शासनात्मक उपनिवेश जिनके राजकर्म्मचारी ता इँगलैंड की सरकार के अधीन होते हैं, पर जो अपने लिये कानून आदि स्वयं बनाते हैं। हाँ, ब्रिटिश सरकार को यह अधिकार अवश्य होता है कि वह उन कानूनों को रद्द कर दे अथवा प्रचलित होने से रोक दे। और (३) स्वराज्यात्मक उपनिवेश जो अपना शासन आप करते हैं। ऐसे उपनिवेशों का केवल गवर्नर ही ब्रिटिश सरकार के मातहत होता है। ब्रिटिश सरकार को वहाँ के पास किए हुए कानूनों को रद्द करने अथवा प्रचलित होने से रोकने का अधिकार होता है। किंतु आंतरिक विषयों में यह अधिकार बिरले ही मौकों पर काम में लाया जाता है। ऐसे उपनिवेशों में गवर्नर अपने राजकीय नियमों के अनुसार स्वयं कौंसिलर आदि नियुक्त करता है और उन्हीं की सम्मति तथा सहायता से राजकार्य्य का संचालन तथा कर्म्मचारियों की नियुक्ति होती है। प्रायः इसी प्रकार के उपनिवेश अन्य राज्यों के भी हैं।

आजकल लोगों की प्रवृत्ति स्वराज्यात्मक या प्रतिनिधिसत्तात्मक शासन की ओर बराबर बढ़ती जाती है, इसलिये उपनिवेशों में भी कुछ लोग पूर्ण प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य

चाहते हैं; मातृभूमि का किसी प्रकार का दबाव या अधिकार मानने के लिये वे तैयार नहीं हैं। दबाव या अधिकार मानने में वे अपनी अनेक हानियाँ भी दिखलाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि उनकी साम्राज्य सरकार कोई युद्ध ठान ले तो उन्हें भी व्यर्थ उसमें सम्मिलित होना पड़ता है। पर इसके विपरीत कुछ लोगों का मत है कि अपने देश की साम्राज्य सरकार से उपनिवेशों का यथासाध्य घनिष्ठ संबंध रहना चाहिए; क्योंकि इससे साम्राज्य के भिन्न भिन्न अंगों की पुष्टि और उन्नति होती है। पर स्वार्थत्याग करके इस प्रकार परोपकार करने की इच्छा करनेवाले देवता संख्या में अपेक्षाकृत थोड़े ही हैं।

प्राय: बड़े बड़े साम्राज्यों को अपने अधीनस्थ देशों या राज्यों के पड़ोसी छोटे मोटे देशों और राज्यों पर, अनेक राजनीतिक कारणों से, कुछ न कुछ अधिकार रखना पड़ता है। ऐसे राज्य या

रक्षित राज्य

तो केवल अपने रक्षक-राज्य के द्वारा अथवा उसकी आज्ञा से ही किसी विदेशी राज्य के साथ कोई राजनीतिक संबंध स्थापित कर सकते हैं। रक्षित राज्य की सब प्रकार से रक्षा करना ही रक्षक-राज्य का कर्त्तव्य है। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो किसी राज्य को अपना रक्षित राज्य बनाना उसे अपनी अधीनता में लेना ही है। पर किसी बलशाली राज्य का अपने से किसी दुर्बल राज्य के साथ राजनीतिक संबंध स्थापित करना भी इसी रक्षण के अंतर्गत आ जाता है।

रक्षक-राज्य बिना लड़ाई झगड़ा किए ही अपने रक्षित राज्य में मनमाना परिवर्तन कर सकता है। संधि, बल-प्रयोग और बल-पूर्वक देश पर अधिकार करके राज्य रक्षित बनाए जाते हैं। भारत सरकार का देशी रियासतों के साथ बहुत कुछ इसी प्रकार का संबंध है।

रक्षित राज्य प्रायः दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिनमें पहले से किसी प्रकार का राज्य स्थापित होता है और जो शक्ति या बल-प्रयोग आदि के द्वारा रक्षण में लाए जाते हैं; और दूसरे वे जिनमें कोई विदेशी सभ्य राज्य आकर पहले अपना अधिकार कर लेता है और तब उन्हें कुछ आंतरिक स्वतंत्रता देकर अपनी रक्षा में रखता है।

जो देश या राज्य अपने ऊपर किसी दूसरे देश या राज्य का कुछ भी अधिकार या दबाव स्वीकार कर लेता है, स्थूलतः

अधीन राज्य

वही मानों अधीन राज्य हो जाता है; और इस दृष्टि से उपनिवेश तथा रक्षित राज्य भी, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है, इसी कोटि में आ जाते हैं। पर सूक्ष्मतः और व्यावहारिक दृष्टि से अधीन राज्य वही माना जाता है जो सब प्रकार से किसी दूसरे बड़े राज्य के अधिकार में रहता है। अधिकारी राज्य अपने नियुक्त किए हुए शासकों आदि के द्वारा अधीन राज्य में सारा राज्य-प्रबंध करता है, उसके लिये नियम और कानून बनाता है, कर उगाहता है, न्यायालय स्थापित करता है, दूसरी

शक्तियों से उसकी रक्षा करता है और इसी प्रकार के दूसरे आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन करता है। अधीन राज्य को किसी प्रकार की शक्ति प्रदान करना केवल अधिकारी राज्य के हाथ में होता है। भारत की गणना इँगलैंड के अधीन राज्यों में होती है; और इसी से अधीन राज्यों की स्थिति का अच्छा परिचय मिल जाता है। कभी कभी अधिकारी राज्य अपने अधीन राज्यों को बहुत कुछ अधिकार और स्वतंत्रता भी दे देते हैं; और कहीं कहीं अधीन राज्य के प्रधान अधिकारी को यह भी अधिकार होता है कि साम्राज्य के जटिल प्रश्नों की मीमांसा में सम्मति और सहायता दे। फ्रांस के दो एक अधीन राज्यों के प्रधान अधिकारियों और प्रतिनिधियों को फ्रांस की व्यवस्थापिका सभाओं तक में आकर बैठने और बोलने का अधिकार है।

आदेशित राज्य

आदेशित राज्य नए ही ढंग के राज्य हैं। इनका निर्माण सन् १९१४ के युरोपियन महासमर के बाद हुआ है। ये राष्ट्र संघ (League of Nations) द्वारा विजेता राज्यों को सौंपे गए हैं; और उन्हें आदेश है कि वे यहाँ के मूल-निवासियों की मानसिक, नैतिक तथा आर्थिक उन्नति का प्रबंध करें। इसके लिये इन्हें राष्ट्र संघ के प्रति उत्तरदायी होना पड़ता है। प्रत्येक आदेशित राज्य की शासन संबंधी रिपोर्ट प्रति वर्ष राष्ट्र संघ की परिषद् में उपस्थित की जाती है और उसकी जाँच एक आदेश कमीशन द्वारा होती है। इस तरह जर्मनी के कई

उपनिवेश ब्रिटिश सरकार और इसके अंतर्गत स्वतंत्र उपनिवेशों के तथा फ्रेंच-सरकार के अधीन आ गए हैं।

(१) ब्रिटिश साम्राज्य

(क) उपनिवेश

ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड, चैनेल आइलैंड्स, आइल आफ मैन तथा भारतवर्ष को छोड़कर ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत प्रत्येक देश उपनिवेश ही माना जाता है। आयर्लैंड यद्यपि उपनिवेश नहीं कहा जा सकता, तथापि इसकी शासन-प्रणाली साम्राज्यांतर्गत अन्य स्वतंत्र उपनिवेशों की शासन-प्रणाली से बहुत कुछ मिलती जुलती है; इस कारण हम उसका वर्णन स्वतंत्र उपनिवेशों के वर्णन के साथ ही करेंगे। उपनिवेशों में कुछ ऐसे भी हैं जो रक्षित राज्य (Protectorates) कहलाते हैं। अतः इस स्थान पर उनका भी एक साथ ही वर्णन किया जाता है। सुभीते के लिये सब उपनिवेशों को चार श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है। पहली श्रेणी उन उपनिवेशों की है जिनमें केवल गवर्नर ही शासन करता और वही कानून बनाता है। इन उपनिवेशों में कोई व्यवस्थापिका सभा नहीं होती। ऐसे उपनिवेश ये हैं—जिब्राल्टर, सेंटहेलना, ऊशांटा, गोल्डकोस्ट का उत्तरी भाग, नाइजीरिया, वसूटोलैंड, बेचुआनालैंड, स्वाजीलैंड और अदन*।

* अदन का सैनिक और राजनीतिक प्रबंध ब्रिटिश सरकार करती है। नागरिक विषयों की देख भाल भारत सरकार द्वारा होती है।

दूसरी श्रेणी में के उपनिवेश वे हैं जिनमें एक शासक या गवर्नर रहता है, जो एक व्यवस्थापिका सभा की सहायता से कानून बनाता और एक कार्य्यकारिणी सभा की सहायता से शासन करता है। इन दोनों सभाओं या कौंसिलों के मेंबरों की नियुक्ति या तो सम्राट् के द्वारा होती है और या सम्राट् के प्रतिनिधि शासक या गवर्नर के द्वारा। इस श्रेणी के अंतर्गत ब्रिटिश होंडूरास, ट्रिनिडाड, विंडवर्ड द्वीपसमुदाय, पश्चिमी अफ्रिका का उपनिवेश, न्यासालैंड, हांकांग, स्ट्रेट सेटलमेंट और सेचलीज है।

तीसरी श्रेणी में वे उपनिवेश हैं जिनमें व्यवस्थापिका सभा के सब या कुछ सदस्य प्रजा द्वारा चुने जाते हैं और कार्य्यकारिणी सभा के सदस्य सम्राट् अथवा उसके प्रतिनिधि शासक (गवर्नर) के द्वारा नियुक्त होते हैं। इस श्रेणी में जमैका, लंका (सिलोन), मारीशस, फीजी, केनिया, ब्रिटिश ग्वाइना, लीवर्ड द्वीप, साइप्रस, यूगेंडा, दक्षिणी रोडेशिया, उत्तरी रोडेशिया, गेंबिया, सीरालियोन, फॉकलैंड, दक्षिणी जार्जिया, पेपुआ, बहामाज, बरबडास, बरमुडास और मालटा है।

उपर्युक्त तीन श्रेणी के उपनिवेश ब्रिटिश सरकार के उपनिवेश विभाग के अधीन हैं। इनके गवर्नर उपनिवेश मंत्री (Secretary of State for the Colonies) की सलाह से सम्राट् द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

चौथी श्रेणी में वे उपनिवेश हैं जो स्वतंत्र उपनिवेश (Dominions) कहलाते हैं। इनका शासन प्रतिनिधि-

सत्तात्मक राज्यों की तरह होता है और सरकार प्रतिनिधि-सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। किंतु कुछ बातों में, विशेषतः बाह्य विषयों में, ब्रिटिश सरकार का इन पर अधिकार रहता है। इनका प्रधान शासक अथवा गवर्नर-जनरल सम्राट् द्वारा ही नियुक्त किया जाता है। इस श्रेणी के अंतर्गत निम्नलिखित उपनिवेश हैं—आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैंड, न्यूफाउंडलैंड और यूनियन आफ साउथ अफ्रिका। इनकी शासन-प्रणाली संक्षेप में नीचे दी जाती है।

स्वतंत्र-उपनिवेशों की शासन-प्रणाली

आस्ट्रेलिया

इसके अंतर्गत कई छोटी छोटी रियासतें हैं जो अपने लिये आप कानून बनाती हैं। सब रियासतों ने मिलकर प्रधान गवर्नमेंट को कुछ निश्चित और विशिष्ट अधिकार दे रखे हैं। यहाँ सम्राट् द्वारा नियुक्त एक गवर्नर-जनरल रहता है जो एक प्रबंधकारिणी सभा की सलाह से काम करता है। इस सभा के ९ मंत्री होते हैं जो अपने शासन-कार्य के लिये प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। एक संघटित पार्लिमेंट है जिसमें सिनेट और प्रतिनिधि मंडल सम्मिलित है। सिनेट में छः रियासतों में से प्रत्येक के छः छः सदस्य, इस प्रकार कुल ३६ सदस्य होते हैं जो सर्व-साधारण की सम्मति से छः वर्ष के लिये चुने जाते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव तीन वर्ष के लिये और आबादी के हिसाब से होता है। लेकिन प्रत्येक

रियासत के कम से कम पाँच प्रतिनिधि होते हैं। कुल प्रतिनिधियों की संख्या लगभग ७५ होती है। यहाँ के मूल निवासियों को छोड़कर शेष सब स्त्री-पुरुषों को चुनाव में मत देने का अधिकार है।

यहाँ का शासन-कार्य्य १८ मंत्रियों की एक प्रीवी कौंसिल की सहायता से एक गवर्नर-जनरल करता है जो सम्राट् द्वारा नियुक्त और उसी का प्रतिनिधि होता है।

कनाडा

कानून बनाने के लिये सिनेट और हाउस आफ कामंस की सम्मिलित एक पार्लिमेंट है। सिनेट में ९६ सदस्य हैं जो कनाडा सरकार की सिफारिश पर सम्राट् द्वारा नामजद किए जाते हैं। सिनेटर आजन्म सदस्य रहते हैं। सिनेटर की अवस्था तीस वर्ष की होनी चाहिए और उसके पास कुछ निश्चित जमींदारी होनी चाहिए। हाउस आफ कामंस के सदस्यों का चुनाव प्रति चार वर्ष बाद होता है। प्रत्येक बालिग स्त्री पुरुष को मत देने का अधिकार है। कुल सदस्यों की संख्या २३५ है। प्रीवी कौंसिल अपने शासन-कार्य के लिये इसके प्रति उत्तरदायी होती है।

यहाँ का शासन सम्राट् द्वारा नियुक्त एक गवर्नर-जनरल के हाथ में है। व्यवस्थापिका सभा तथा प्रतिनिधि मंडल की सम्मिलित एक सार्वजनिक सभा या पार्लिमेंट भी है। व्यवस्थापिका सभा के

न्यूजीलैंड

४३ सदस्य हैं जिनमें तीन मोआरी (न्यूजीलैंड के मूल-

निवासी) सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होते हैं। इनमें से जो लोग १७ सितंबर १८९१ से पहले से नियुक्त हैं, वे तो उसके आजन्म सभासद रहेंगे; पर जिनकी नियुक्ति इसके बाद हुई हो, वे केवल सात वर्ष तक सदस्य रहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर उनकी फिर से नियुक्ति हो सकती है। प्रति-निधि-मंडल में ८० सदस्य हैं जो सर्वसाधारण द्वारा तीन वर्ष के लिये चुने जाते हैं। इनमें चार मोआरी सदस्य भी होते हैं। स्त्रियाँ भी सदस्य हो सकती हैं। गवर्नर-जनरल सम्राट् द्वारा नियुक्त किया जाता है और वह एक कार्यकारिणी सभा की सलाह से काम करता है। इस सभा के १२ मंत्री होते हैं जो अपने शासन कार्य के लिये प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। प्रतिनिधि सभा को तोड़ देने का अधिकार गवर्नर-जनरल को है। पार्लिमेंट के पास किए हुए बिलों में सुधार करने के लिये वह उन्हें वापस भी भेज सकता है और नए बिलों के मसौदे भी उपस्थित कर सकता है।

न्यू फाउंडलैंड

यह सबसे पुराना अँगरेजी उपनिवेश है। यहाँ का शासन ९ सदस्यों की कार्य्यकारिणी सभा की सहायता से सम्राट् द्वारा नियुक्त एक गवर्नर करता है। २४ सदस्यों की एक व्यवस्थापिका सभा भी है जिसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा ही होती है। सर्वसाधारण द्वारा चुने हुए ३६ सदस्यों का एक प्रतिनिधि-मंडल भी है। प्रत्येक बालिग पुरुष को मत देने का अधि-

कार है, परंतु अभी स्त्रियों को यहाँ यह अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है। कार्यकारिणी सभा प्रतिनिधि-मंडल के प्रति उत्तर-दायी रहती है।

इसमें केप आफ गुडहोप, नेटाल, ट्रांसवाल और आरेंज रीवर उपनिवेश सम्मिलित हैं। ३१ मई सन् १९१० को यह संघटन हुआ था। यहाँ सम्राट् द्वारा नियुक्त एक गवर्नर-जनरल शासन करता है। अपनी सहायता के लिये कार्य्यकारिणी सभा के सदस्यों को चुनने का अधिकार उसी को है। राज्यों के भिन्न भिन्न विभागों को स्थापित करने का अधिकार भी उसी को है, पर उनमें वह निश्चित संख्या से अधिक अफसरों को नियुक्त नहीं कर सकता। कानून बनाने के लिये पार्लिमेंट है जिसमें सिनेट और प्रतिनिधि-मंडल है। सिनेट के चालीस सदस्यों में से आठ को गवर्नर जनरल नियुक्त करता है और ३२ सब प्रांतों से चुने जाते हैं। युरोपियन ब्रिटिश प्रजा के व्यक्ति ही इसके सदस्य हो सकते हैं। सिनेट की सदस्यता के उम्मेदवार की अवस्था कम से कम तीस वर्ष होनी चाहिए और उसके पास कम से कम ५०० पौंड की जायदाद भी होनी चाहिए। सीनेट की आयु दस वर्ष की होती है।

यूनियन आफ साउथ अफ्रिका

प्रतिनिधि-मंडल में १३४ सदस्य हैं। इस सभा की अवधि पाँच वर्ष है। यहाँ के प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष को इसके चुनाव में मत देने का अधिकार है। शासन कार्य में

प्रबंधकारिणी सभा इसके प्रति उत्तरदायी रहती है। पार्लिमेंट की बैठक प्रति वर्ष होना आवश्यक है।

आयर्लैंड

हम ऊपर कह आए हैं कि वास्तव में आयर्लैंड ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि यहाँ के निवासी ब्रिटेन को अपनी मातृभूमि नहीं मानते। यहाँ के निवासियों की भाषा और धार्मिक मत भी इँगलैंड-निवासियों से भिन्न हैं। इँगलैंड-निवासी प्रोटेस्टेंट मत के हैं और आयर्लैंड में बहुधा रोमन कैथोलिक मत ही माना जाता है। कई सदियों से आयर्लैंड इँगलैंड का एक अधीन राज्य रहा आया है, किंतु इस बीच में आयर्लैंड भी स्वतंत्रता के लिये सतत प्रयत्न करता रहा। जब जब इँगलैंड पर कोई आपत्ति आती, आयर्लैंड अपनी स्वतंत्रता की प्राप्ति का मौका पाता और एक न एक बखेड़ा खड़ा कर देता। गत महायुद्ध में भी आयर्लैंड ने जर्मनी से मिलकर इँगलैंड के विरुद्ध खड़े होने का प्रयत्न किया, किंतु इँगलैंड ने इसे दबा रखा। लड़ाई के पहले यहाँ के प्रतिनिधि ब्रिटिश पार्लिमेंट में आकर बैठते थे। लड़ाई का अंत होने पर जब आयर्लैंड को अपने प्रतिनिधियों के भेजने का अवसर मिला, तब वहाँ के निवासियों ने ऐसे प्रतिनिधि चुने जिन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि वे ब्रिटिश पार्लिमेंट में न जाकर आयर्लैंड में ही अपनी पार्लिमेंट करेंगे। ऐसा ही हुआ। आयर्लैंड में स्वतंत्र राज्य की घोषणा हो गई।

लड़ाई के पूर्व सन् १९१२ में ब्रिटिश पार्लिमेंट ने आयर्लैंड के लिये एक होमरूल बिल (स्वराज्य का मसविदा) पास किया था और यह १९१४ सन् से कार्य में लाया जाने को था। यह बिल उत्तरीय आयर्लैंड के छः जिलों को तो मंजूर हो गया, परंतु बाकी २६ जिलों को यह मान्य नहीं था। सन् १९१४ में महासमर आरंभ हो जाने से वह होम रूल भी लड़ाई के अंत तक के लिये स्थगित कर दिया गया। जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, लड़ाई के अंत में दक्षिणीय आयर्लैंड के २६ जिलों ने अपनी स्वतंत्र पार्लिमेंट स्थापित कर ली और ब्रिटिश सरकार का होम रूल ग्रहण नहीं किया। उत्तरीय छः जिलों ने इसे स्वीकार कर लिया।

दक्षिणीय आयर्लैंड के स्वतंत्र पार्लिमेंट स्थापित करने पर ब्रिटिश सरकार ने उसको दबाने के अनेक प्रयत्न किए। जनता तो भड़की ही हुई थी। उसने अपनी स्वतंत्रता के लिये जी तोड़कर लड़ाई की। बहुत से लोग मारे गये, खून की नदियाँ बहीं। अंत को ब्रिटिश सरकार को मालूम हो गया कि आयर्लैंड बिना स्वतंत्र हुए नहीं रहेगा; और आयर्लैंड को भी मालूम हो गया कि इँगलैंड भी टक्कर खाने योग्य नहीं है। फल यह हुआ कि दोनों की संधि की इच्छा हुई और सन् १९२१ में ब्रिटिश पार्लिमेंट और आयरिश पार्लिमेंट के बराबर बराबर सदस्यों ने बैठकर संधि कर ली। आयरिश नेताओं को आयर्लैंड के लिये शासन-प्रणाली निर्माण करने

का अधिकार दिया गया। ब्रिटिश और आयरिश सरकारों ने उन नेताओं के मसविदों को मंजूर किया और ६ दिसंबर सन् १९२२ को इस प्रणाली द्वारा शासन प्रारंभ हुआ।

अब हम संक्षेप में आयरिश शासन-प्रणाली पर कुछ लिखेंगे। उपर्युक्त संक्षिप्त इतिहास को ध्यान में रखे बिना आयरिश शासन-पद्धति का समझना असंभव होगा।

यह कहा ही जा चुका है कि उत्तरीय आयर्लैंड अथवा अल्स्टर ने ब्रिटिश सरकार द्वारा दिया हुआ स्वराज्य स्वीकार कर लिया था। अतः यहाँ की शासन-प्रणाली कनाडा इत्यादि उपनिवेशों की शासन-प्रणाली के ही सदृश है।

दक्षिणीय आयर्लैंड अथवा आयरिश स्वतंत्र-राष्ट्र (Irish Free State) की शासन-प्रणाली भी यद्यपि अन्य उपनिवेशों के ही सदृश है, तथापि कई बातों में यह सर्वथा निराली ही है। इसमें मंत्रियों का उत्तरदायित्व और सीनेट के सभ्यों के चुनावों की रीति विशेष उल्लेखनीय है।

आयरिश पार्लिमेंट की दो सभाएँ हैं—राष्ट्र सभा (Senate) और प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies)। राष्ट्र सभा में आजकल ६० सभ्य हैं और प्रतिनिधि सभा में १५३। प्रतिनिधि सभा के लिये २१ वर्ष से ऊपर उम्रवाले प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, मत देने का अधिकार है। प्रति ३०,००० जनसंख्या पीछे कम से कम एक सदस्य अवश्य होना चाहिए।

यहाँ की राष्ट्र सभा निराली ही है। इसके सदस्य केवल वे ही हो सकते हैं जिन्होंने अपनी देशभक्ति, ज्ञान और अन्य प्रकार की सेवा से देश का मान बढ़ाया हो। इन सभ्यों की अवधि बारह वर्ष की होती है, किंतु एक-चौथाई सदस्य हर तीसरे साल बदले जाते हैं। इन सदस्यों का चुनाव भी विचित्र ढंग से ही होता है। प्रति तीसरे वर्ष प्रतिनिधि सभा ३२ और राष्ट्र सभा १६ उम्मेदवारों के नाम तैयार करती है और ये नाम जनता के सामने रखे जाते हैं। इनमें से जनता १५ को चुन लेती है। ये १५ नए सभ्य होते हैं।

पार्लिमेंट को अधिकार है कि वह सन् १९२१ की संधि की सीमा के भीतर चाहे जैसे नियम बना सकती है। अत: आयर्लैंड की जनसंख्या के किसी खास अनुपात से अधिक सेना रखने का अधिकार नहीं है। लड़ाई के मौकों पर अपने बचाव के लिये ब्रिटिश सरकार को अधिकार है कि वह आयर्लैंड के जो बंदरगाह चाहे, ले ले। प्रत्येक सदस्य को राजभक्ति की शपथ भी लेना आवश्यक है। इनको छोड़कर आयर्लैंड से ही खास संबंध रखनेवाली समस्त बातों में पार्लिमेंट को पूरा अधिकार है। परंतु पार्लिमेंट की दोनों सभाओं की ताकत बराबर नहीं है। प्रतिनिधि सभा के अधिकार प्रधान हैं। राष्ट्र सभा समझाने और केवल कुछ काल तक प्रतिनिधि सभा के किसी मसविदे को रोकने के सिवा और कुछ नहीं कर सकती। धन संबंधी मसविदे तो राष्ट्रसभा पेश भी नहीं

कर सकती और प्रतिनिधि सभा द्वारा पेश किए जाने पर १४ दिन से ज्यादा उसे रोक भी नहीं सकती। अन्य मसविदे वह पेश भी कर सकती है और २७० दिनों तक रोक भी सकती है।

उपर्युक्त व्यवस्थापिका सभाओं के अतिरिक्त एक कार्य-कारिणी सभा भी है, जिसमें १२ सदस्य होते हैं। इनमें से चार प्रतिनिधि सभा के सदस्य होते हैं। बाकी आठ में से तीन को प्रतिनिधि सभा पार्लिमेंट का सभ्य बना सकती है। बाकी सदस्य और मंत्री पार्लिमेंट के सभ्य नहीं होते। इस कार्यकारिणी सभा का एक सभापति और एक उपसभापति होता है। सभापति प्रतिनिधि सभा की सिफारिश पर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किया जाता है। नियुक्त होने पर सभापति अपने उन मंत्रियों को चुनता है जिन्हें पार्लिमेंट में बैठने का अधिकार है। बाकी मंत्रा प्रतिनिधि सभा की एक कमेटी द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। कार्यकारिणी सभा प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी होती है, परंतु अविश्वास के अवसर पर सब मंत्रियों को इस्तीफा नहीं देना पड़ता, केवल सभापति और उसके द्वारा नियुक्त मंत्रीगण ही इस्तीफा देने को बाध्य रहते हैं। जो अन्य मंत्री कार्यकारिणी सभा में बैठते हैं और उसमें अपना मत देते हैं, वे बगैर किसी खास बुराई के अपनी अवधि से पहले नहीं हटाए जा सकते। यह द्वैध मंत्री-उत्तरदायित्व आयर्लैंड-स्वतंत्र-राष्ट्र का निराला ही है। कार्यकारिणी सभा सभापति को परामर्श देती है और सभापति गवर्नर-

जनरल को। सालाना आयव्यय का मसविदा भी यही सभा तैयार करती है और वह प्रतिनिधि सभा के सामने विचारने को रखा जाता है। प्रत्येक मंत्री के हाथ एक एक शासन विभाग रहता है और वह उसके लिये अकेला ही उत्तरदायी होता है।

यहाँ की जनता को भी बिल पेश करने का अधिकार प्राप्त है और विशेष बातों में जन-सम्मति भी ली जाती है।

राजा का प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल होता है। यह आयरिश पार्लिमेंट की ही सिफारिश से ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है।

(ख) रक्षित राज्य

ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत निम्नलिखित रक्षित राज्य हैं—

(१) मलाया, (२) सारवाक, (३) बोर्नियो, (४) सूडान और (५) जंजीबार।

ये अपने क्षेत्र में ब्रिटिश सरकार को छोड़कर और किसी को राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं करने देते। इनमें यह हस्तक्षेप भिन्न भिन्न मात्रा में है। मलाया मे ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त रेजिडेंट है जो वहाँ के सुलतान को शासन-कार्य में सहायता देता है। सारवाक और बोर्नियो में ब्रिटिश सरकार को आंतरिक विषयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। सूडान इँगलैंड और मिस्र दोनों की रक्षा में है। गवर्नर-जनरल ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति से नियुक्त होता

है। जंजीबार का शासन सुलतान के नाम से ब्रिटिश रेजीडेंट द्वारा होता है।

(ग) अधीन राज्य

भारतवर्ष

भारतवर्ष इँगलैंड का अधीन राज्य है। इँगलैंड का राजा भारतवर्ष का सम्राट् कहलाता है। यहाँ के शासन का सब प्रबंध करने के लिये इँगलैंड में एक सेक्रेटरी आफ स्टेट रहता है जिसकी एक कौंसिल भी है। कौंसिल से स्वीकृत स्टेट सेक्रेटरी की प्रत्येक आज्ञा भारत सरकार के लिये मान्य होती है। भारत में जो कानून पास होता है, वह उसकी स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। वह सम्राट् को उसे स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने की सम्मति दे सकता है। भारत का सब व्यय आदि भी उसी के अधिकार में है। उसकी कौंसिल में आठ से बारह तक सदस्य होते हैं। उसे भारत के आय-व्यय का लेखा प्रति वर्ष पार्लिमेंट में उपस्थित करना पड़ता है। पार्लिमेंट के सदस्य उससे भारत के संबंध में प्रश्न भी कर सकते हैं।

सम्राट् की ओर से भारत में शासन करने के लिये जो प्रधान अधिकारी नियुक्त किया जाता है, उसे गवर्नर-जनरल और वाइसराय कहते हैं। इसकी अवधि प्रायः पाँच वर्ष की होती है। वह प्रधान मंत्री की सिफारिश से सम्राट् द्वारा नियुक्त किया जाता है। उसकी एक कार्यकारिणी सभा है जिसके सदस्य सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की सिफारिश से सम्राट्

द्वारा ही नियुक्त किए जाते हैं। यह सभा भारत-सरकार भी कहलाती है। गवर्नर-जनरल और कमांडर-इन-चीफ (जंगी लाट) के अतिरिक्त इसके छः सभ्य होते हैं, जिनमें अब प्रायः आधे हिन्दुस्तानी होते हैं। इसका सभापति गवर्नर-जनरल ही होता है। उसे प्रायः सभा का निर्णय मान्य होता है; परंतु भारतवर्ष की भलाई के खयाल से वह अपने मत के अनुसार इसके विरुद्ध भी काम कर सकता है। सुभीते के लिये गवर्नर-जनरल अपने राज्य के भिन्न भिन्न विभागों का भार कार्यकारिणी के सदस्यों में बाँट देता है। इस समय भारत सरकार के निम्न लिखित आठ विभाग हैं--

१—पर राष्ट्र विभाग (Foreign)।

२—सेना विभाग (Army)।

३—अर्थ विभाग (Finance)।

४—स्वदेश विभाग (Home)।

५—रेल और वाणिज्य (Railways and Commerce)

६—शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि विभाग (Education, Health and Lands)।

७—उद्योग धंधे और मजदूर विभाग (Industries and Labour)।

८—कानून विभाग (Legislature)।

इनमें से पहला और दूसरा विभाग तो क्रम से गवर्नर-

जनरल और कमांडर-इन-चीफ के अधीन है; शेष छः पृथक् पृथक् अन्य छः सभ्यों के अधीन हैं।

२० अगस्त सन् १९१७ की घोषणा में सेक्रेटरी-ऑफ-स्टेट ने भारत के प्रति ब्रिटिश पार्लिमेंट की नीति का स्पष्टीकरण किया है और उसमें बताया है कि ब्रिटिश सरकार का यह उद्देश्य है कि भारत को धीरे धीरे उत्तरदायी शासन प्रदान किया जाय। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सन् १९१९ में ब्रिटिश पार्लिमेंट ने भारत के लिये सुधार-कानून पास किया। इससे अन्य कई सुधारों के अतिरिक्त भारत के केंद्रीय शासन के लिये सभा-द्वय-प्रणाली का व्यवस्थापक मंडल स्थापित किया गया। गवर्नर-जनरल के अतिरिक्त इस मंडल के निम्नलिखित दो विभाग हैं—

(१) राज्य परिषद् (Council of State)। यह प्रति पाँच वर्ष बाद संघटित की जाती है।

(२) व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly)। इसका नया संघटन प्रति तीन वर्ष बाद होता है।

राज्य-परिषद् के कुल ६० सभ्य होते हैं जिनमें ३३ निर्वाचित और २७ नामजद होते हैं। व्यवस्थापिका सभा के सभ्यों की संख्या कम से कम १४० निश्चित की गई है, परंतु यह बढ़ाई भी जा सकती है। आजकल इस सभा में कुल १४४ सभ्य हैं जिनमें १०३ निर्वाचित और ४१ नामजद हैं। कार्यकारिणी सभा के सभ्य उपर्युक्त दो सभाओं में से एक न एक के नामजद सदस्य अवश्य होते हैं, परंतु दोनों के नहीं हो

सकते। इनका अधिवेशन प्रति वर्ष प्रायः दो बार होता है--एक ग्रीष्म-अधिवेशन जो शिमले में होता है और दूसरा शरद्-अधिवेशन जो दिल्ली में होता है।

व्यवस्थापिका सभा का सभापति सभा द्वारा ही चुना जाता है और गवर्नर-जनरल की अनुमति मिलने पर उस पद को ग्रहण करता है। बहुधा किसी कानूनी प्रस्ताव को पास करने के लिये दोनों सभाओं की मूल रूप से और कुछ संशोधन के साथ स्वीकृति होना आवश्यक है। इन सभाओं द्वारा पास किए हुए प्रस्ताव सिफारिश के तौर पर होते हैं और वे कानून तभी माने जाते हैं जब गवर्नर-जनरल की भी स्वीकृति हो। गवर्नर-जनरल को पूर्ण अधिकार है कि वह इन प्रस्तावों को न माने। इससे स्पष्ट है कि भारत में उत्तरदायी शासन नहीं है।

ब्रिटिश भारत पंद्रह प्रांतों में विभक्त है। इनमें बंगाल, मद्रास, बंबई, आगरा-अवध के संयुक्त प्रदेश, पंजाब, बिहार और उड़ीसा, मध्यप्रदेश, आसाम और बरमा ये नौ प्रांत गवर्नरों के अधीन हैं, जो सन् १९१९ के सुधार द्वारा नियुक्त मंत्रियों के साथ उनका शासन करते हैं। ये गवर्नर सेक्रेटरी-ऑफ-स्टेट की सिफारिश से सम्राट् द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और ये प्रायः पाँच वर्ष के लिये ही अपने पद पर रहते हैं। शेष छः तथा पश्चिमोत्तर-सीमा प्रांत, ब्रिटिश बलूचिस्तान, दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग और अंदमान निकोबार द्वीप चीफ कमिश्नर के अधीन हैं। चीफ कमिश्नर गवर्नर-जनरल

द्वारा ही नियुक्त किए जाते हैं, पर इसके लिये सम्राट् की अनुमति भी लेनी पड़ती है।

प्रत्येक गवर्नर के प्रांत में एक प्रबंधकारिणी सभा और एक प्रांतीय व्यवस्थापिका सभा होती है। प्रबंधकारिणी सभा के सभ्य चार से अधिक नहीं होते। ये भी गवर्नर के सदृश सम्राट् द्वारा ही नियुक्त किए जाते हैं। ये व्यवस्थापिका सभा के भी सभ्य होते हैं। व्यवस्थापिका सभा में और भी नामजद और निर्वाचित सभ्य होते हैं; किंतु किसी प्रांतीय-व्यवस्थापिका सभा में २० प्रति शत से अधिक सरकारी और ७० प्रति शत से कम निर्वाचित सभ्य नहीं होते। प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं का वर्त्तमान संघटन इस प्रकार है—

प्रांत	सरकारी सदस्य	निर्वाचित	कुल
मदरास	२९	९८	१२७
बंबई	२५	८६	१११
बंगाल	२६	११३	१३९
युक्तप्रांत	२३	१००	१२३
बिहार और उड़ीसा	२७	७६	१०३
पंजाब	२२	७१	९३
मध्य प्रदेश प्रांत और बरार	१६	५४	७०
आसाम	१४	३९	५३
बरमा	२३	७८	१०१

गवर्नर के प्रांतों के शासन संबंधी विषय दो भागों में विभक्त हैं —(१) रक्षित, (Reserved Subjects) और (२) हस्तांतरित (Transferred)। रक्षित विषयों का प्रबंध गवर्नर अपनी प्रबंधकारिणी सभा के साथ करता है। हस्तांतरित विषयों में उसे मंत्रियों के परामर्श से कार्य करना पड़ता है। परंतु गवर्नर को अधिकार रहता है कि वह आवश्यक समझकर प्रबंधकारिणी सभा और मंत्रियों के निर्णय के विरुद्ध भी काम कर सके। मंत्री गवर्नर द्वारा व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचित सभ्यों में से चुने जाते हैं और उनका मासिक वेतन व्यवस्थापिका सभा द्वारा निश्चित किया जाता है। सभा किसी मंत्री को, अविश्वास-सूचक प्रस्ताव पास करके, या उसका वेतन कम करके, मंत्री-पद से अलग कर सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि हस्तांतरित विषयों में प्रांतों में उत्तरदायी शासन की कुछ झलक विद्यमान है; परंतु इसकी मात्रा कितनी है, यह पाठक स्वयं निर्णय कर सकेंगे, यदि वे ध्यान रखेंगे वि गवर्नर को मंत्रियों के निर्णय के विरुद्ध भी काम करने का अधिकार है और वह मंत्रियों को अपनी इच्छा के अनुसार उनवे पद से अलग भी कर सकता है। मंत्रियों को अपना पद सुरक्षित रखने के लिये एक ओर तो व्यवस्थापिका सभा को प्रसन्न रखना पड़ता है और दूसरी ओर गवर्नर को। इससे उनकी कैसी स्थिति है, यह भी सहज ही समझा जा सकता है केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदृश प्रांतीय व्यवस्थापिव

सभाओं की भी आयु तीन वर्ष की ही होती है। चीफ कमिश्नर के प्रांतों में शासन संबंधी सारे विषय चीफ कमिश्नर और उसकी प्रबंधकारिणी सभा के ही अधीन हैं। यहाँ मंत्रि-पद की स्थापना अभी तक नहीं की गई है।

भारत में कई बड़े बड़े स्वतंत्र देशी राज्य भी हैं जो एक प्रकार से भारत-सरकार के रक्षित राज्य हैं। इन राज्यों को कुछ निश्चित संख्या से अधिक सेना, अथवा भारत-सरकार की विशेष स्वीकृति के बिना अपने यहाँ किसी युरोपियन कर्म्मचारी को रखने का अधिकार नहीं है। भारत-सरकार यदि किसी राजा को कोई अनुचित कार्य करते हुए देखे तो वह उसे अधिकारच्युत भी कर सकती है। कुछ राज्य भारत-सरकार को कर भी देते हैं, पर अधिकांश नहीं देते। प्रायः रियासतों का प्रबंध वहाँ के राजाओं, मंत्रियों और कौंसिलों के द्वारा ही होता है; पर प्रत्येक बड़ी रियासत में एक पोलिटिकल अफसर या रेजिडेंट भी रहता है जो भारत-सरकार की ओर से नियुक्त होता है। कई छोटी छोटी रियासतों के समूह के लिये कहीं कहीं एक ही पोलिटिकल अफसर या रेजिडेंट रहता है। सब राज्यों को अपना अपना कानून बनाने का अधिकार है। हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, काश-मीर, कलात और राजपूताने तथा मध्य भारत की रियासतें, जिनकी संख्या १७५ है, गवर्नर-जनरल इन-कौंसिल के अधि-कार में हैं। इसके अतिरिक्त बहुत सी छोटी छोटी रियासतें

प्रांतीय सरकारों की अधीनता में भी हैं। चीनी सीमा तथा पश्चिमोत्तर सीमा में बहुत सी छोटी छोटी रियासतें और पहाड़ी जातियाँ और छोटा नागपुर, ओड़ीसा और मध्य प्रदेश में सरकार के अधीन छोटी छोटी जंगली जातियाँ भी हैं।

हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा और काश्मीर भारत के प्रधान देशी राज्य हैं। नेपाल की गणना भी इन्हीं में होती है; पर कई बातों में वह बिलकुल स्वतंत्र है। इसके उपरांत मध्य भारत, राजपूताने और बलूचिस्तान की एजेंसियाँ हैं। इनमें ये रियासतें हैं—

मध्य भारत	गवालियर, इंदौर, भोपाल, रीवाँ, ओड़छा, दतिया, धार, जावरा, पन्ना, बिजावर, अजयगढ़, छत्रपुर, चरखारी आदि।
राजपूताना	उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, भरतपुर, बीकानेर, कोटा, बूँदी, अलवर, धौलपुर आदि।
बलूचिस्तान	कलात और लास बेला।

प्रांतीय सरकारों से संबंध रखनेवाले राज्य इस प्रकार हैं—

मद्रास	ट्रावंकोर, कोचीन, पडूकोटा तथा अन्य छोटी रियासतें।

बंबई	कोल्हापुर, कच्छ, खैरपुर, ईडर, भावनगर, जूनागढ़, गोंडल, पालनपुर आदि।
बंगाल	कूचबिहार, भूटान, मोरभंज, कालाहाँडी, बामड़ा आदि।
संयुक्त प्रांत	बनारस, रामपुर और टेहरी।
पंजाब	पटियाला, नाभा, झींद, कपूरथला, मंडी, चंबा, फरीदकोट आदि।
बरमा	उत्तरी और दक्षिणी स्याम राज्य।
मध्य प्रांत	बस्तर, रायगढ़, सरगुजा आदि।

जब संसार भर में स्वतंत्रता की आवाज गूँज रही है, तब भारत इससे कैसे दूर रह सकता है! भारतवर्ष भी अपनी स्वतंत्रता के लिये पूर्ण प्रयत्न कर रहा है। सन् १९२१ में महात्मा गांधी के नेतृत्व में शांतिमय असहयोग का एक विराट् आंदोलन चला था। परंतु भारत के कई नेता और राजनीतिज्ञ इससे सहमत न थे, इसलिये यथेष्ट परिणाम प्राप्त न हो सका। भारत के स्वराज्य का रूप क्या होगा, इसमें अब तक बहुत

मत-भेद था; परंतु ता० २८ अगस्त १६२८ को लखनऊ में डा० अनसारी की अध्यक्षता में जो एक ऐतिहासिक सर्वदल-सम्मेलन हुआ था और जिसमें भारत के सब राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि आए थे, उसमें करीब करीब सर्वसम्मति से यह निश्चय हो चुका है कि भारत का राजनीतिक ध्येय कम से कम साम्राज्यांतर्गत औपनिवेशिक (जैसा कनाडा, आस्ट्रेलिया इत्यादि उपनिवेशों में है) स्वराज्य होना चाहिए। किंतु फिर भी भारतवासी अपने ध्येय को कहाँ तक प्राप्त कर पावेंगे और भविष्य में भारत की क्या गति होगी, यह अभी ठीक नहीं कहा जा सकता।

(घ) आदेशित राज्य

ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत निम्नलिखित मुख्य आदेशित राज्य हैं—

(१) न्यू गिनी—आस्ट्रेलिया सरकार के अधीन।
(२) सोमोआ—न्यू जीलैंड ,, ,,
(३) दक्षिण अफ्रिका—यूनियन आफ साउथ अफ्रिका के अधीन।
(४) नौरू—इँग्लैंड, न्यू जीलैंड और आस्ट्रेलिया के अधीन।
(५) टांगानिका—ब्रिटिश सरकार के अधीन
(६) पेलेस्टाइन ,, ,, ,,
(७) इराक ,, ,, ,,
(८) टोगोलैंड } ब्रिटिश सरकार और फ्रेंच सरकार
कमरून } के अधीन।

(२) फ्रेंच उपनिवेश, रक्षित राज्य तथा आदेशित राज्य

(क) अफ्रिका में

यद्यपि यह प्रदेश अफ्रिका में है, तो भी फ्रांस के अंतर्गत ही माना जाता है। यहाँ एक गवर्नर जनरल रहता है जो फ्रांस के प्रधान द्वारा अंतरीय मंत्री की सिफारिश से नियुक्त किया जाता है। गवर्नर-जनरल सेना तथा पुलिस की देखरेख रखता है और अलजीरिया के लिये साल भर का बजट तैयार करता है जो फ्रांस की पार्लिमेंट में रखा जाता है। गवर्नर-जनरल की सहायता के लिये दो सभाएँ भी हैं। एक सभा में सारे सभ्य गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होते हैं और इसका कार्य केवल सलाह देना है। दूसरी में कुछ तो मुख्य मुख्य अधिकारी और कुछ फ्रांस-निवासियों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि रहते हैं। इसका कार्य बजट पर विचार करना (फ्रांस की पार्लिमेंट में भेजे जाने के पहले) और सार्वजनिक कार्य तथा स्थानीय शासन की निगरानी करना है।

अलजीरिया

यह एक बे (बेग) का राज्य है। परंतु बे केवल नाम का ही राजा है। यह फ्रांस के अधीन है। यहाँ एक फ्रेंच रेजीडेंट-जनरल रहता है जिसके हाथ में सारा शासन है। यह फ्रांस के प्रधान द्वारा, विदेशीय मंत्री की सलाह से, नियुक्त किया जाता

ट्यूनिस

है। यहाँ ११ मंत्रियों की एक मंत्रिसभा भी है। ये मंत्री वैसे तो बे के नाम से नियुक्त होते हैं, परंतु वास्तव में ये रेजीडेंट-जनरल द्वारा ही फ्रांस के विदेशीय मंत्री के परामर्श से नियुक्त किए जाते हैं। इन मंत्रियों के अधीन एक एक शासन-विभाग है। सन् १९२२ में यहाँ एक महासभा (Grand Council) भी स्थापित कर दी गई है जो दो सभाओं में विभक्त है। एक तो फरांसीसियों के प्रतिनिधियों की है और दूसरी यहाँ के निवासियों के प्रतिनिधियों की। कुछ विशेष बातों को छोड़-कर इस महासभा का बजट पर पूरा अधिकार है।

मोरक्को

मोरक्को तीन विभागों में विभक्त है। एक हिस्सा सार्व-राष्ट्रीय कमीशन द्वारा शासित होता है; दूसरा स्पेन के अधीन है और बाकी सब हिस्सा फ्रांस के अधीन है। इसका मुख्य अधिकारी अब भी सुल्तान ही माना जाता है और यह मोरक्को-निवा-सियों का राजनीतिक और धार्मिक शासक कहलाता है। किंतु उसकी सेना संबंधी सारी शक्ति फ्रांस के प्रधान द्वारा नियुक्त रेजिडेंट-जनरल के हाथ में है। ट्यूनिस के सदृश यहाँ भी एक मंत्रिसभा है, परंतु प्रतिनिधि सभा कोई नहीं है। मोरक्को में फ्रांसीसियों की संख्या अभी तक अल्प ही है।

इसके अंतर्गत निम्न-लिखित उपनिवेश हैं—(१) सेने-गाल, लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा शासित। (२) मारीटेनिया, कमिश्नरी। (३) अपर-सेनेगल-नाइगर, लेफ्टिनेंट गवर्नर

द्वारा शासित। (४) फ्रेंच-गिनी, लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा शासित। (५) आइवरी कोस्ट, लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा शासित। (६) दहोमी, लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा शासित। ये सब उपनिवेश एक गवर्नर-जनरल के अधिकार में हैं जिसकी सहायता के लिये एक कौंसिल है।

फ्रेंच वेस्ट अफ्रिका (उपनिवेश)

इसका शासन एक गवर्नर-जनरल के अधिकार में है। इसमें गबन, मिडिल कांगो और उबंधीशरी-चड नामक तीन प्रांत हैं जिनमें से प्रत्येक में एक लेफ्टिनेंट गवर्नर रहता है। महासमर के बाद वार्सेल्ज की संधि के अनुसार फ्रांस को जर्मनी के अधीन-उपनिवेश टोगोलैंड और कैमरून के बहुत कुछ हिस्से मिल गए हैं जो फ्रेंच ईक्वेटोरिकल अफ्रिका में ही शामिल हैं। बाकी हिस्से अँगरेजों के आदेशित राज्य हैं।

फ्रेंच ईक्वेटोरिकल अफ्रिका

फ्रेंच ईस्ट अफ्रिका — यह अफ्रिका का सोमाली कोस्ट प्रदेश है, जो फ्रांस का रक्षित राज्य है। यहाँ एक गवर्नर रहता है।

मेडागास्कर — गवर्नर-जनरल द्वारा शासित।

यहाँ एक गवर्नर रहता है जिसकी सहायता के लिये एक प्रीवी कौंसिल है। एक जनरल कौंसिल भी है जिसमें प्रजा द्वारा चुने हुए सदस्य रहते हैं।

रीयूनियन उपनिवेश

(ख) अमेरिका में

ग्वाडेलप — यहाँ एक गवर्नर रहता है। इसके अंतर्गत पाँच छोटे छोटे टापू भी हैं जो रक्षित राज्य हैं।

गायना उपनिवेश — यहाँ एक गवर्नर रहता है जो ५ सदस्यों की प्रीवी कौंसिल की सहायता से शासन करता है। १६ सदस्यों की एक जनरल कौंसिल भी है जिसके सदस्यों का चुनाव प्रजा करती है।

मारटिनीक उपनिवेश — एक गवर्नर और एक जनरल-कौंसिल के अधिकार में है। यहाँ म्युनिसिपल कौंसिलें भी हैं जिनके सदस्यों का चुनाव प्रजा द्वारा होता है।

सेंटपीरी और मिकलेन — ये छोटे छोटे टापुओं के समूह हैं। यहाँ एक एडमिनिस्ट्रेटर रहता है जो एक कौंसिल के परामर्श से शासन करता है।

(ग) एशिया में

फ्रेंच इंडिया — भारत के पांडीचरी, चंद्रनगर, कारीकल, माही और यनावँ प्रांत फ्रांस के अधिकार में हैं। इनके शासन के लिये पांडीचरी में एक गवर्नर रहता है; शेष स्थानों में उसके अधीन एडमिनिस्ट्रेटर रहते हैं। एक जनरल कौंसिल भी है जिसमें प्रजा के चुने हुए सदस्य होते हैं।

इसके अंतर्गत कोचीन-चाइना है। यहाँ एक गवर्नर रहता है जो १८ सदस्यों की कौंसिल की सहायता से शासन करता है। इसके अतिरिक्त कंबोडिया, अनाम, टांकिन और लाओस ये चार रक्षित राज्य भी इसके अंतर्गत हैं। अनाम और कंबोडिया में राजा है। टांकिन में पहले अनाम के राजा का वाइसराय रहता था, पर अब फ्रेंच रेजिडेंट रहता है। लाओस में एक राजा है जो फ्रेंच एडमिनिस्ट्रेटर की सहायता से शासन करता है।

फ्रेंच इंडो-चाइना

(घ) ओशेनिया में

ओशेनिया में न्यू कैलेडोनिया, सोसाइटी टापू, टहीटी, भूरिया, मारक्वेसार और गैंबियर आदि बहुत से टापू हैं जो सब एक गवर्नर के अधिकार में हैं। गवर्नर की एक प्रीवी कौंसिल और एक एडमिनिस्ट्रेटिव कौंसिल है।

एलजीरिया और ट्यूनिस को छोड़कर शेष सब उपनिवेशों के लिये फ्रांस में एक उपनिवेश मंत्री है और औपनिवेशिक सेनाएँ फ्रांस के युद्ध-सचिव के अधीन हैं। प्रत्येक उपनिवेश अथवा उपनिवेशों के समूह का अलग बजट तैयार होता है जो औपनिवेशिक मंत्री की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। उपनिवेशों को स्वराज्य के बहुत से अधिकार प्राप्त हैं। उनका खर्च प्रायः अपनी ही आय से चलता है; और यदि कुछ कमी होती है तो उसकी पूर्त्ति फ्रेंच सरकार करती है।

फ्रांस की जातीय सभा में निम्नलिखित उपनिवेशों से इस प्रकार प्रतिनिधि जाते हैं—

अलजीरिया	तीन सिनेटर और छः डिप्टी।
मारटिनिक, ग्वा-डेलप और रीयूनियन	प्रत्येक से एक सिनेटर और दो डिप्टी।
फ्रेंच इंडिया	एक सिनेटर और एक डिप्टी।
गायना, सेनेगाल, कोचीन-चाइना	एक एक डिप्टी।

फ्रांस के आदेशित राज्यों में सीरिया ही मुख्य है। यहाँ का शासन फ्रांस के विदेशीय मंत्री द्वारा नियुक्त अधिकारियों के अधीन है। यहाँ के राज्य का ब्योरा फ्रांस को प्रति वर्ष सार्वराष्ट्रीय सम्मेलन (League of Nations) के समक्ष रखना पड़ता है।

(३) अमेरिका के अधीन राज्य

इसके बहुत से टापू अमेरिका के अधीन हैं जो सब एक गवर्नर-जनरल के शासन में हैं। गवर्नर-जनरल की सहायता

फिलिपाइन

के लिये चार सरकारी अफसरों और चार देशी प्रतिनिधियों का एक कमीशन तथा चार वर्ष के लिये प्रजा द्वारा चुने हुए ८१ सदस्यों की एक सभा है। अमेरिका का उद्देश्य यहाँ क्रमशः स्वराज्य

स्थापित करना है और वह धीरे धीरे ऐसा कर भी रहा है। इसके अतिरिक्त गुड्डम, परटोटिको, स्यूटिला, वेक और जाँसन टापू, तथा एल्यूशियन टापुओं पर भी अमेरिका के संयुक्त राज्यों का अधिकार है। इन सब स्थानों पर अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक एक गवर्नर रहता है।

जर्मनी के समस्त उपनिवेश महासमर के उपरांत छीन लिए गए थे। कुछ उपनिवेश फ्रांस और इँग्लैंड को सार्वराष्ट्रीय सम्मेलन के आदेशानुसार प्राप्त हैं। सार्वराष्ट्रीय सम्मेलन को अधिकार है कि वह जब चाहे, वे सब उपनिवेश जर्मनी को लौटा सकता है।

शब्दावली



भाषा शब्द	अँगरेजी शब्द
राष्ट्र	State
शासन-पद्धति, शासन-प्रणाली	Constitution
एकात्मक	Unitary
राष्ट्र-संघटनात्मक	Federal
नियामक, व्यवस्थापिका	Legislative
शासक, कार्य्यकारिणी	Executive
न्याय संबंधी	Judicial
द्वितीय सभा	Second Chamber
स्वापन्न	Sovereign
अस्वापन्न	Non-Sovereign
शिथिल	Flexible
अशिथिल	Rigid
मुख्य राज्य, मध्य राज्य	Central Government
राष्ट्र-संघटन	Constitution
स्थानीय स्वराज्य	Local Self-Government
जन-सम्मति	Referendum
अवाध्य जन-सम्मति	Optional Referendum
बाध्य जन-सम्मति	Obligatory Referendum
नियामक जन-सम्मति	Initiative
जाति	Nation

भाषा शब्द	अँगरेजी शब्द
जातीयता	Nationality
स्विस् प्रतिनिधि सभा	National Council
स्विस् राष्ट्रीय उपसमिति	Federal Council
स्विस् राष्ट्र सभा	Standerath
स्विस् जातीय सभा	Federal Assembly
अमेरिकन ,,	Congress
फ्रेंच या अमेरिकन राष्ट्र सभा	Senate
,, अंतरंग सभा	Senate
फ्रेंच जातीय सभा	National Assembly
मंत्रिसभा	Ministry
मंत्रिसभा की उपसमिति	Cabinet
प्रधान	President
प्रशियन आयव्यय समिति	The Supreme Chamber of Accounts.
,, आर्थिक उपसमिति	The Economic Council
प्रशियन जातीय सभा	Landtag
प्रशियन लार्ड सभा	House of Lords
प्रशियन प्रतिनिधि सभा	House of Representatives.
जर्मन प्रतिनिधि सभा	Reichstag
जर्मन राष्ट्र सभा	Bandesrath
सार्वजातीय	International
राइन का संघटन	Confederation of the Rhine.

हिन्दी शब्द	अँगरेजी शब्द
प्रजासत्तात्मक राज्य	Democratic Government.
प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य	Representative Government.
एकसत्तात्मक राज्य	Monarchy
शक्ति संविभाग	Demarcation of Powers
एक राजा का परिमित शक्तियुक्त राज्य	Limited Monarchy
प्रवक्ता, प्रतिनिधि सभा का प्रधान	Speaker
दल	Party